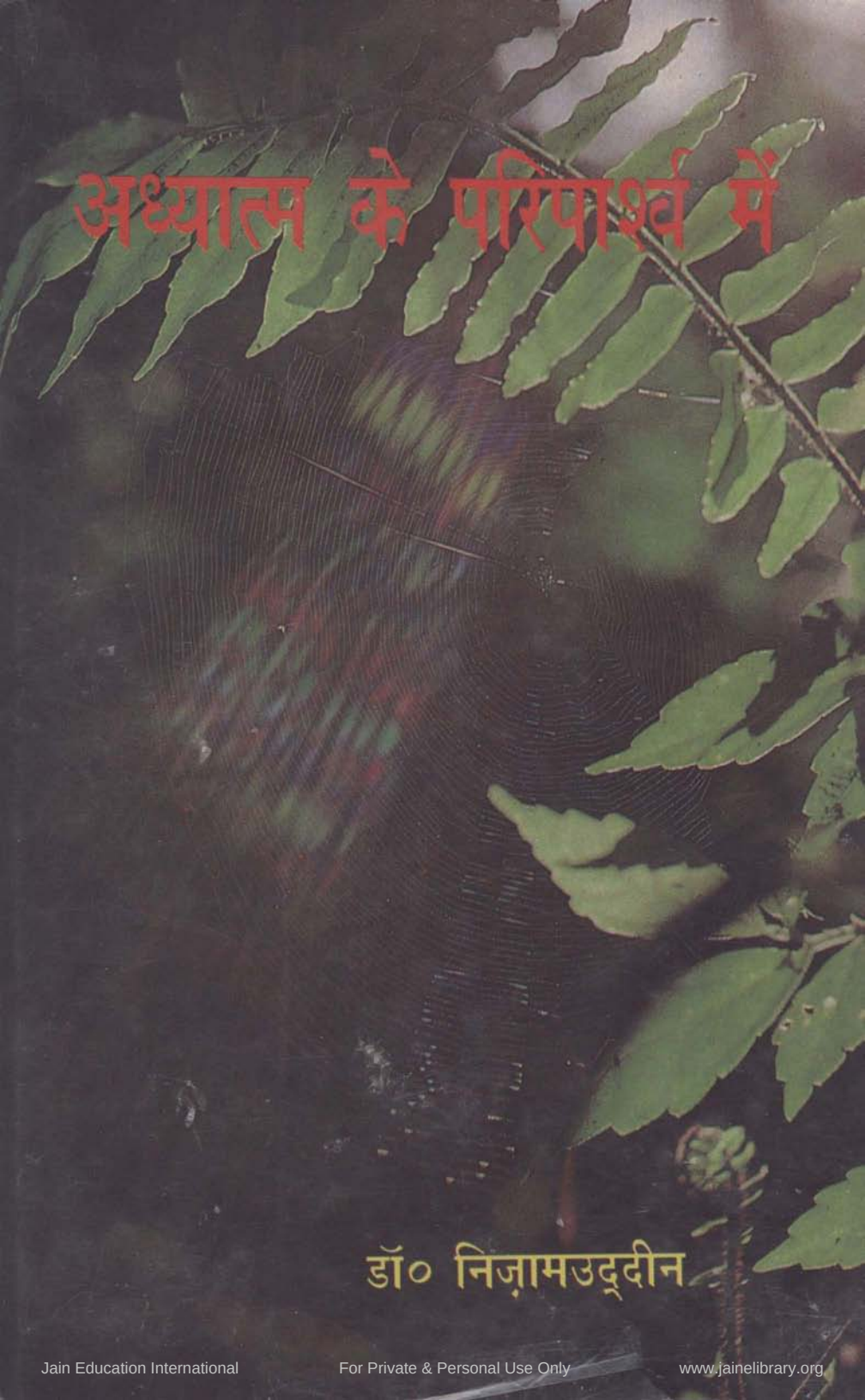

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय विद्या के मूलतत्व हैं अहिंसा, अनुशासन, संयम, विनय। इनके पल्लवन से अध्यात्म का मार्ग प्रशस्त होता है। विनय और अनुशासन से साम्प्रदायिक सहिष्णुता के भाव भी संपुष्ट होते हैं, जिनसे लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। अहिंसा-भाव सकल प्राणियों के लिए कल्याणकारी है--'सव्वयभूय खेमंकरी'। मानवीय मूल्यों को संरक्षण तभी प्राप्त होगा जव हमारा जीवन अहिंसामय, संयममय हो। आध्यात्मिक विभा भी यहीं से फूटेगी। आज वैज्ञानिक संपदा और उपलब्धि के साथ जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों के समुन्नयन की अपेक्षा है। यदि विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय हो, तो अहिंसक समाज की संरचना की जा सकती है, हिंसा, द्वेष, अहंकार, वैर भरे वातावरण को साम्प्रदायिक सौहार्द में परिवर्तित किया जा सकता है। ...

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म के परिपार्श्व में

डॉ० निजामउद्दीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

© जैन विश्व भारती
लाडनूं-३४१३०६

प्रथम संस्करण : अगस्त; १९९३

मूल्य : पचास रुपये/प्रकाशक : जैन विश्व भारती, लाडनूं, नागौर (राज०)/
मुद्रक : मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित जैन विश्व भारती
प्रेस, लाडनूं-३४१ ३०६ ।

ADHYATMA KE PARIPARSHVA MAIN
Dr. Nizamuddin
Rs. 50.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वचन

व्यक्ति सामाजिक परम्परा से प्रतिबद्ध होकर भी अपनी वैयक्तिक निधि को अप्रतिबद्ध रखता है, चिन्तन की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखता है। डॉ० निजामउद्दीन जन्मना इस्लाम के अनुयायी हैं किंतु कर्मणा उन्होंने अपना चिंतन क्षेत्र व्यापक बनाया है, विचार सृष्टि को नए आयाम दिए हैं। अपने सम्प्रदाय की स्वीकृति का अर्थ दूसरों के द्वारा दृष्ट सत्यों की अस्वीकृति नहीं होना चाहिए, यह आज के वैज्ञानिक युग की अपेक्षा है। अनेकांत ने इस अपेक्षा को सदा प्रस्तुत किया है। अपने सत्यांश को देखने के साथ-साथ हम दूसरों के सत्यांशों को देखने की क्षमता विकसित कर सकें तभी सामाजिक सामंजस्य की स्थिति का निर्माण हो सकता है। अनेकांत का यह दृष्टिकोण आज व्यापक बनता जा रहा है, उदार चिंतन के लोगों का एक विशाल परिवार बन रहा है।

डॉ० निजामउद्दीन ने इस्लाम और जैन धर्म के सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, फलतः पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। 'महावीर और कबीर की शाकाहारी दृष्टि', 'महावीर और मोहम्मद', 'रमजान : जैन दर्शन के आलोक में,' 'नमाज : आस्था और ध्यान,' 'इस्लाम की रोशनी में अणुव्रत आन्दोलन'---ये शीर्षक पाठक को सहज ही आकर्षित कर लेते हैं। विशुद्ध दृष्टिकोण और विशुद्ध भावना से किया हुआ लेखक का प्रयत्न अपने आप में सफल है। विश्वास है कि पाठक इस सफलता का सही-सही मूल्यांकन करेगा। इस उदार दृष्टिकोण और व्यापक चिन्तन की भूमिका पर आरोहण के लिए डॉ० निजामउद्दीन को साधुवाद देना कोई अतियोग नहीं है।

११ जुलाई ९३
नाहर भवन
राजलदेसर

आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वकथ्य

स्याद्वादो विद्यते यत्र पक्षपातो न विद्यते ।
अहिंसायाः प्रधानत्वं जैनधर्मः स उच्यते ।।

जहां मताग्रह नहीं होता, वहां पक्षपात और भेदभाव भी नहीं होता । यही अहिंसक दृष्टि है । यही संयम है, संयम जीवन है—"संयमः खलु जीवनम्" । अहिंसा, संयम, तप— ये धर्म के लक्षण हैं । अहिंसा का अर्थ है राग-द्वेष मुक्त होना । इसे हम धर्म की आध्यात्मिक भूमि कह सकते हैं । अणुव्रतों का अनुपालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है, यह धर्म का नैतिक स्वरूप है । राग-द्वेष मुक्त होना धर्म का आत्मिक, आध्यात्मिक रूप है । अति भौतिक और प्रौद्योगिक विकास के कारण नैतिकता तथा आध्यात्मिकता के स्रोत सूखते जा रहे हैं, परिणामतः व्यक्ति दिग्भ्रमित है । हिंसा, वैर, द्वेष, अहंकार, स्वार्थ, क्रोध, परिग्रह के तिमिरावरण को विदीर्ण किए बिना उसे त्राण नहीं । शांति उसके लिए मृगमरीचिका बनी हुई है । 'अध्यात्म के परिपार्श्व में' ऐसे निबंधों का संकलन है, जिसका प्रतिपाद्य जैनधर्म-दर्शन है, स्वस्थ समाज की संरचना है; नैतिकता, विज्ञान और अध्यात्म की त्रिवेणी प्रवाहित करना है । आज देश साम्प्रदायिक अभिनिवेश, आतंकवाद, अलगाववाद, जातिवाद, पर्यावरण-प्रदूषण से आक्रांत है । इन निबन्धों की मूल चेतना है मानवीय सम्बन्धों का परिष्करण और जीवन-मूल्यों की परिस्थापना । आज संवेगों के सन्तुलन (Balance of emosions) की परम आवश्यकता है । बढ़ते वैचारिक प्रदूषण को रोकना भी जरूरी है जिसके लिए अनेकांतवादी दृष्टि श्रेयस्कर है । भारत धर्मपरायण देश है, यह अनेकानेक धर्मों-सम्प्रदायों, मतों-विश्वासों का सुन्दर नीड़ है । एतावत, तुलनात्मक धर्म (Comparative Relegion) हमारे अध्ययन-मनन का क्षेत्र हो, तभी सहिष्णुता तथा औदार्य के भावों का प्रादुर्भाव हो सकता है जिससे हमारी राष्ट्रीय भावनात्मक एकता सुदृढ़ हो सकेगी ।

उदारचेता संत, अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी जी सदैव मेरे लिए प्रेरणा-स्रोत रहे हैं । उनके भव्य, तेजस्वी, चुम्बकीय व्यक्तित्व ने मुझे अत्यधिक आकृष्ट एवं प्रभावित किया है । वे अहिंसक समाज की संरचना में अहर्निश लीन देश की पीड़ा-वेदना को समग्रता के साथ अनुभव करने वाले राष्ट्र संत हैं । जैन विश्व भारती, लाडनूं (डीम्ड यूनिवर्सिटी) उनके स्वप्नों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का मूर्तरूप है। जैन विश्वभारती का कण-कण, पादप-पल्लव आचार्य श्री के पदरज से पावन हो रहा है—

"चमन में बिखरी हुई है दास्ताँ मेरी"

उनका यह अप्रतिम योगदान सरसैयद अहमदखां, पं० मदन मोहन मालवीय और रवीन्द्रनाथ टैगोर के समान स्तुत्य व स्मरणीय रहेगा। आचार्य श्री तुलसी जी की प्रेरणा तथा शुभाशीष का यह फल है कि "अध्यात्म के परिपार्श्व में" आपके सामने है। युवाचार्य महाप्रज्ञजी उच्चकोटि के मनीषी हैं, बहुभाषाविद हैं, बहुज्ञ हैं। उनका प्रकाण्ड पांडित्य उन्हें अबू सीना, स्वामी विवेकानन्द और डॉ० राधाकृष्णन् के समान स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। युवाचार्य महाप्रज्ञ जी ने पुस्तक का अवलोकन कर इसे प्रकाशन के लिए पसंद किया और इसका नामकरण भी उन्होंने ही किया है।

अति व्यस्तता के बावजूद आदरणीय डॉ० विद्यानिवास मिश्र और डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने 'दो शब्द' और 'भूमिका' लिखकर मेरा उत्साहवर्धन किया है, एतदर्थ उनका आभारी हूं। श्री कन्हैयालाल फूलफगर (कलकत्ता) मेरे लिए सदैव आत्मीय रहे हैं। उन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में विशेष रुचि ली। जैन विश्वभारती, लाडनूं के अध्यक्ष श्री श्रीचन्द बैंगानी तथा मंत्री श्री भूमरमल बैंगानी के सहयोग से इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका है। श्री कुशलराज समदड़िया (उपमंत्री) एवं श्री ललित गर्ग का सहयोग भी स्मरणीय है। मैं इन सबके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूं। आशा है—धर्म-दर्शन में रुचि रखने वाले सुधी पाठक इस पुस्तक से लाभांवित होंगे।

गंगादशहरा
३० मई, १९९३

डॉ० निजामउद्दीन
(पूर्व) हिन्दी विभागाध्यक्ष,
इस्लामिया कॉलेज,
श्रीनगर (कश्मीर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

धर्म, दर्शन और अध्यात्म जैसे गूढ़ गम्भीर विषयों को लक्ष्य बनाकर लिखी गई पुस्तक 'अध्यात्म के परिपार्श्व में' एक ऐसी तत्त्व चिन्तन की पुस्तक है, जिसमें धार्मिक मतवाद से हटकर धर्म के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डालने का लेखक ने प्रयास किया है। चिन्तन-मनन शीर्षक से लेखक ने कुछ ऐसे विषयों का चयन किया है जो सामान्यतः हमारी दृष्टि परिधि में होते हुए भी दृष्टि से ओझल बने रहते हैं। अपरिग्रह, अहिंसा, शाकाहार, पर्यावरण, वृक्षों की उपादेयता आदि विषय ऐसे हैं जो मानव जीवन के साथ गहरे स्तर पर जुड़े हैं किन्तु उनका तात्विक रूप हम समग्रतः समझ नहीं पाते। अहिंसा और अपरिग्रह की बात सब करते हैं किंतु परिग्रह की माया में फंसे हुए अपरिग्रह को भूले रहते हैं। अहिंसा की चर्चा तो सभी देशों में होती रहती है किंतु जितनी हिंसा बीसवीं शती में हुई है शायद पहले कभी न हुई होगी। मानव जाति के विनाश के लिए तरह-तरह के अणु-आयुधों, हिंसक गैस विषाणुओं का निर्माण हो रहा है, पहले कभी नहीं हुआ था। लेखक ने अपने संक्षिप्त लेखों में इन बातों को बड़ी सजीव शैली में प्रस्तुत किया है। उन चुनौतियों पर भी प्रकाश डाला है जो आज वैश्विक चेतना को झकझोर रहा है। विश्व एकता और विश्व बन्धुत्व की वाचिक चर्चा तो सर्वत्र संगोष्ठियों, राष्ट्रसंघ की बैठकों और पारस्परिक सौहार्द संवेदन के प्रसंगों में होती है किन्तु विश्व में शत्रुता और वैमनस्य का जो विषैला वातावरण फैलता जा रहा है, उसे शांत करने का कहीं कोई सार्थक प्रयास लक्षित नहीं होता। लेखक ने इन समस्याओं को केन्द्र में रखकर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

धर्म-दर्शन शीर्षक दूसरे खंड में जैन धर्म विषयक कुछ प्रश्नों को विचार के स्तर पर प्रस्तुत किया है। पहला लेख 'मानव धर्म और असाम्प्रदायिक दृष्टि' एक ऐसे दर्द को उद्घाटित करता है जो सम्प्रदायों की संकीर्ण विचार धारा के कारण मानव को मानवता से काटकर हिंस्र पशु के बीच खड़ा कर देता है। यदि मानवता हमारा धर्म रहे तो सम्प्रदाय, पंथ या मत की विभेदक दीवारें हमारे बीच खड़ी ही नहीं होंगी। लेकिन हम आज मानवता को भुला बैठे हैं फलतः कलह, फूट, द्वेष और हिंसा का भयावह रूप प्रकट होता जा रहा है। इसी खंड में लेखक ने जैन धर्म के कतिपय शाश्वत सिद्धांतों की तटस्थ भाव से चर्चा की है। लेखक ने जैनधर्म के उन सिद्धांतों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के विषय में सारपूर्ण शब्दावली में यह प्रकट करने का प्रयास किया है कि जैन धर्म किसी संकीर्ण मत-पंथ की सीमा में बन्धा धर्म नहीं है। जैन धर्म मानव के अभ्युदय और निश्रेयस का मार्ग प्रशस्त करने वाला धर्म है। इस खण्ड में कुछ तुलनात्मक विचार भी मिलते हैं। जैन दर्शन और गीता, णमोकार मंत्र, सामायिक, रमज़ान, नमाज़ आदि लेखों में बड़ी तटस्थ चेतना से लेखक ने इन बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है।

पुस्तक का तीसरा खंड 'व्यक्ति : विचार' शीर्षक से संकलित किया गया है। इस खंड में महावीर और मोहम्मद के सामाजिक एकता, अपरिग्रह, अहिंसा, नारी जाति आदि विषयों पर साम्यमूलक दृष्टि से विचार किया गया है। यह ठीक है कि महावीर स्वामी और मोहम्मद साहब के काल में बारह सौ वर्षों का अन्तराल है। काल की दृष्टि को छोड़कर जीवन दर्शन में जो साम्यमूलक चेतना है उसी पर लेखक की दृष्टि रही है। 'तीर्थंकरों की परंपरा और महावीर' शीर्षक कुछ ऐतिहासिक सम्पन्न लेख है। तीर्थंकरों के विषय जैन धर्मावलम्बियों को तो ज्ञात हो भी किन्तु जैनेतर समाज में तीर्थंकरों की जानकारी नहीं है। प्रायः साधारण जनता महावीर स्वामी को ही जैन धर्म का प्रवर्तक-प्रचारक समझते हैं। इस लेख से ऐसी भ्रांतियों का निराकरण होगा। 'महावीर की लोकतांत्रिक दृष्टि' भी एक प्रासंगिक लेख है जो आधुनिक युग के लोकतंत्र के साथ महावीर स्वामी के वैचारिक चिन्तन को जोड़ने वाला है। महावीर की नारी विषयक दृष्टि पर प्रकाश डालने वाला लेख भी पठनीय है।

इस पुस्तक के लेखक डॉ० निज़ामउद्दीन से मैं व्यक्तिगत रूप से विगत पच्चीस-तीस वर्षों से परिचित रहा हूं। उनके धार्मिक विश्वास बहुत ही स्वच्छ और निर्दोष हैं। किसी धर्म की अवमानना या किसी की पक्षपात पूर्ण प्रशंसा वे नहीं करते। सर्व धर्म समभाव का जय घोष करने वालों से वे कहीं अधिक उदार, सहिष्णु, चिन्तक और मनस्वी हैं। उनके छोटे-छोटे लेख भी उनके निष्कपट भावों को सामने लाने में समर्थ हैं। मैं इस पुस्तक की रचना को प्रासंगिक और उपयोगी मानता हूं। मैं उन्हें ऐसे स्वस्थ और सुन्दर लेखन के लिए साधुवाद देता हूं। आशा करता हूं कि उनका पुरुषार्थ इसी दिशा में आगे बढ़ता रहेगा।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक
भूतपूर्व अध्यक्ष
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो शब्द

स्व० आनन्द कुमार स्वामी ने जीवनभर विश्वमान की आध्यात्मिक अनुभूतियों के बीच तालमेल बैठाने की नहीं, देखने की कोशिश की। वस्तुत: अध्यात्म पदार्थ का भीतरी स्वभाव है जैसे जल का स्वभाव है नीचे की ओर ढलना, फैलना, आग का स्वभाव हैं ऊपर की ओर जाना। नीचे जाना ऊपर जाना अपने आप में कुछ महत्त्व नहीं रखते। महत्त्व उनका एक दूसरे के स्वभाव का पूरक होने में है। दु:ख की बात यह है कि इधर प्रवृत्ति अलगाव की है, आध्यात्मिक अनुभव के स्तर पर भी अलगाव की है। यह सुखद आश्चर्य होता है कि डॉ० निज़ामुद्दीन ने 'अध्यात्म के परिपार्श्व में' नामक पुस्तक में इस्लामी साधना को वैष्णव और जैन साधनाओं से जोड़ने की कोशिश की है। जब व्यक्ति पूरी सृष्टि के कर्त्ता से या पूरी सृष्टि के लिए चिन्ता करने वाले के साथ जुड़ता है तो वह दायरे में रहता हुआ भी दायरे से ऊपर उठ जाता है। इसी अतिक्रमण की बात प्रो० निज़ामुद्दीन ने की है और वह बड़े परितोष का विषय है।

आज तुलनात्मक अध्ययन की बहुत बड़ी उपयोगिता है, क्योंकि अलग-अलग प्रस्थान बिन्दुओं से मनुष्य चल कर किसी अयव, अप्रमेय की ओर बढ़ता है, रास्ते अलग है भी रास्ते पर जिस मनोयोग से निष्ठा से संयम से चलते हैं, वह चलना लगभग एक-सा होता है। उसी को समझाने की कोशिश इस ग्रन्थ में की गयी है। इससे निश्चय ही इस्लाम की बुनियादी बातों को समझने में मदद मिलेगी। ऐसी समझ जितनी होगी, उतने ही हम एक दूसरे के प्रति केवल सहिष्णु नहीं होंगे, हम मन से बहुत उदार भी होंगे। हमें सब जगह एक-सी बेचैनी दिखायी पड़ेगी सृष्टि के रहस्य को समझने की, सृष्टि के रहस्य को समझने का प्रयत्न आदमी को ऊपर उठाता है उसके देशकाल से।

मैं डॉ० निजामुद्दीन का इस सुन्दर और सामयिक रचना के लिए साधुवाद देता हूं।

विद्यानिवास मिश्र
ईद, २५-३-९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

० चिन्तन : मन्थन

१. अनेकांत और लोकतंत्र : समान जीवन दृष्टि ३
२. अनेकांतवाद : आधुनिक संदर्भ में ८
३. अपरिग्रह : वर्तमान संदर्भ में १३
४. अहिंसा की भावभूमि १८
५. अहिंसा की गंगा : भारत की अस्मिता २२
६. महावीर और कबीर की अहिंसा दृष्टि २६
७. कबीर की शाकाहारी दृष्टि ३१
८. जैन धर्म में पर्यावरण की अवधारणा ३५
९. पर्यावरण-संतुलन और सह अस्तित्व ४०
१०. वृक्ष हमारे लिए पूज्य हैं ४५
११. विश्व एकता ५०
१२. अनुशासन : विविध आयाम ५४

० धर्म-दर्शन

१३. मानव-धर्म और असाम्प्रदायिक दृष्टि ६३
१४. जैन दर्शन और गीता ७१
१५. जैन धर्म और भावनात्मक एकता ७६
१६. जैन धर्म : एक सम्प्रदायातीत धर्म ८१
१७. जैन धर्म की प्रासंगिकता ८५
१८. 'णमोकार' : आत्म विकास का दर्शन ९१
१९. सामायिक : अर्थ और स्वरूप ९५
२०. महावीर का धर्म : व्यावहारिक रूप १०४
२१. रमजान : जैन दर्शन के आलोक में १०९
२२. नमाज : आस्था और ध्यान ११४

० व्यक्ति : विचार

२३. महावीर और मोहम्मद १२३
२४. तीर्थंकरों की परंपरा और महावीर १३२
२५. अहिंसा की परंपरा और महावीर १३८
२६. भगवान महावीर और विश्व-शांति १४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. महावीर की लोकतांत्रिक दृष्टि १४५
२८. नारी-उत्थान के प्रति महावीर की संवेदना १५०
२९. महावीर की चेतना-ज्योति १५३
३०. अध्यात्मवादी संत की सामाजिक चेतना १५८
३१. एक ज्योतिर्मय युगद्रष्टा १६२
३२. आचार्य तुलसी की धर्मशासना : आधुनिक संदर्भ में १६७
३३. इस्लाम की रोशनी में अणुव्रत आंदोलन १७५
३४. आधुनिक मानसिकता अणुव्रत और जीवन-मूल्य १८४
३५. अणुव्रत आंदोलन और विश्व-शांति १९०
३६. युवाचार्य महाप्रज्ञ की शिक्षा-विषयक दृष्टि १९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तन : मंथन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्तवाद और लोकतंत्र : समान जीवनदृष्टि

'प्रजातंत्र' से अधिक उपयुक्त और सारगर्भित शब्द 'लोकतंत्र' है, क्योंकि 'प्रजा' शब्द जुड़े रहने पर उससे किसी न किसी रूप में दासत्व की गंध आती है। तन्त्र तो है वहां, लेकिन उस तंत्र के जो कर्णधार हैं वे अपने आपको अधिशासक समझ बैठते हैं, उनमें अफसरशाही की तामसिक तथा राजसिक दुर्भावनाएं घर कर लेती हैं, सात्विक वृत्ति तथा सात्विकाचरण की ओर ध्यान कम ही जाता है। इसके विपरीत जब हम 'लोकतंत्र' का प्रयोग करते हैं—कहने और करने दोनों में ही, तो उससे स्पष्टः एक अवधारणा बन जाती है कि हम लोग लोगों के लिए—जनसमूह के लिए कुछ हित एवं कल्याण करने की भावना रखते हैं और अपने स्वार्थ पर ध्यान केन्द्रित नहीं रखते। जहां स्वार्थ-लिप्सा रहेगी वहां पर कल्याण नहीं होगा। लोकतंत्र में स्वार्थ-लिप्सा का तिरोभाव स्वतः हो जाता है। प्रजातंत्र मे दासत्व की गंध होने से शोषणवृत्ति सुरसा की तरह बढ़ने लगती है। लोकतंत्र में कल्याण-भावना का प्राचुर्य उसे जैनधर्म के निम्न सूत्र से जोड़ देता है, एकाकार कर देता है—

परस्परोपग्रहो जीवानाम् (तत्वार्थसूत्र, ५/२१)

आचार्य उमास्वाति ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा कि आपस में एक दूसरे की सहायता करना जीवन का उपकार है। जैसे, स्वामी धन वगैरह के द्वारा अपने सेवक का उपकार करता है और सेवक हित की बात कहकर और अहित से बचाकर स्वामी का उपकार करता है। इसी प्रकार गुरु उचित उपदेश देकर शिष्य का उपकार करता है और शिष्य गुरु की अनुज्ञानुसार आचरण करके गुरु का उपकार करता है। उपकार का प्रकरण होते हुए भी इस सूत्र में जो उपग्रह' पद दिया है वह यह बतलाने के लिए है कि पहले सूत्र में बतलाये गये सुख-दुःख आदि ('सुख-दुःख-जीवित-मरणोपग्रहाश्च'—२०) भी जीवकृत उपकार हैं अर्थात् एक जीव दूसरे जीव को सुख-दुःख भी देता है और जीवन-मरण में भी सहायक होता है (पृ० १२१-१२२)। यहां 'उपग्रह' पद अधिक सार्थक है, इससे जहां यह अभिप्रेत है कि हम दूसरे जीव की भलाई करें, वहां साथ ही यह भी संकेत मिलता है कि हम दूसरे जीव या प्राणी के कार्य में सहायक हों, यही तो उपकार है और यह भावना अनेकान्त दृष्टि से उत्पन्न होती है। जैनदर्शन का राजनीतिक पक्ष अनेकांत दृष्टि में सन्निहित है। इसे कहना चाहिए कि यह लोकतंत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्धति की आधारशिला है। महावीर चिन्तन की यह एक अभिनव देन है। यहां व्यक्ति की स्वतंत्रता को, उसके स्वतंत्र अस्तित्व को गरिमान्वित किया जाता है, उसकी उपेक्षा नहीं, अपेक्षा की जाती है। इसे हम अहिंसा और सत्य का निचोड़ भी कह सकते हैं। हिंसा में दूसरे के व्यक्तित्व को, उसकी स्वतंत्रता को अवमानित किया जाता है, नकारा जाता है। महावीर ने कहा—"प्रत्येक प्राणी एक स्वतंत्र आत्मा है।" जब तक हम व्यक्ति की स्वतंत्रता को मान न देंगे, उसके अस्तित्व को न स्वीकारेंगे तब तक लोकतंत्र को सफल नहीं बना सकेंगे।

महावीर का धर्म समग्रता और 'टोटेलिटी' का धर्म है, उसकी नींव सामंजस्य और समानता पर आधारित है। आज संसार के राजनीतिक मानचित्र पर दृष्टि डालिए—चारों ओर आर्थिक संकट नजर आयेगा, सांस्कृतिक विघटन देखने को मिलेगा, जीवन मूल्यों का ह्रास दिखलाई देगा और सबसे बढ़कर चारित्रिक पतन फैला मिलेगा। निःसंदेह आज का मानव एक संत्रासग्रस्त वातावरण में सांस ले रहा है, जीवन के प्रत्येक घटक में अविश्वास, घृणा, वैमनस्य, मानसिक तनाव, छल-कपट और अशांति है। विज्ञान और टेक्नोलॉजी ने मनुष्य को ज्ञान की व्यापकता प्रदान की, लेकिन ज्ञानभार से दबकर वह बेचारा भाव-शून्य ही हो बैठा। और अब तो स्थिति आ गई कि वह उपयोगिता का चश्मा चढ़ाकर ही प्रत्येक वस्तु को देखता है, उस पर नजर डालता है, यहां तक कि धर्म को भी उपयोगिता की कसौटी पर कसकर खरा-खोटा समझता है। मनुष्य को इस ज्ञान-उपयोगिता के कृत्रिम अंधकूप से निकालने का काम अनेकांतवाद कर सकता है। अनेकांतवाद मनुष्य के दुराग्रह को समूल काट डालता है और उसे विरोध-निषेध से ऊपर उठाकर धर्मसहिष्णु बनाता है, अनेक सापेक्ष धर्मों, मतों, विचारों, मान्यताओं की स्वीकृति की संभावना पैदा करता है। अनेकान्तवाद के विषय में कहा—**'सदसन्नित्यानित्यादि सर्वथैकान्तप्रतिक्षेपलक्षणोऽनेकान्तः'** (जैन न्याय, पृ० ३२६) अर्थात् अनेकान्तवाद वस्तु के अनन्तधर्मात्मक धर्मों की स्वीकृति है। हमें जानना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु अनेकधर्मा है, अनेक गुण सम्पन्न है, उसके एक रूप को ही सत्य नहीं समझना चाहिए उसके इतर गुण भी सत्य हो सकते हैं। अनेकान्तवाद वस्तु की सापेक्षता पर विचार करता है। सत्य की अभिव्यक्ति निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष होती है, जिसे 'सप्तभंगी न्याय' द्वारा सरलता से हृदयंगम किया जा सकता है।

(१) वस्तु किसी अपेक्षा से है।
(२) वह किसी अपेक्षा से नहीं है।
(३) किसी अपेक्षा से है भी और नहीं भी है।
(४) वह किसी अपेक्षा से अवक्तव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) किसी अपेक्षा से है और किसी अपेक्षा से अवक्तव्य है।

(६) किसी अपेक्षा से नहीं है और किसी अपेक्षा से अवक्तव्य है।

(७) किसी अपेक्षा से है तथा किसी अपेक्षा से नही है, किसी अपेक्षा से अवक्तव्य है।

सत्य उसी समय असत्य हो जाता है जब हम उस दृष्टिकोण या अपेक्षा को अपने विचार से ओझल कर देते हैं जिससे कि वह कहा गया है। अतः वस्तुतत्व के सम्यक् विचार के लिए दृष्टिकोणों की विवक्षा अपेक्षित है। विभिन्न दृष्टिकोणों पर सहिष्णुता से विचार करना तथा उनमें सामंजस्य स्थापित करना सर्वमान्य सत्य का अनुगमन करने के लिए आवश्यक है। यही अनेकान्त का राजनीतिक पहलू है जिसे हम लोकतंत्र के संदर्भ में तीन रूपों में व्यक्त कर सकते हैं—

१. वैचारिक संघर्ष का निराकरण।

२. वैचारिक सहिष्णुता।

३. वैचारिक समन्वय।

वैचारिक संघर्ष का निराकरण

लोकतंत्र में विरोधी पक्षों का होना भी स्वाभाविक है और उनकी वैचारिक भिन्नता का होना भी स्वाभाविक है। यही विरोधी पक्ष संसदीय लोकतंत्र की नदी को सीमित तटबंधों में बहने के लिए विवश करता है, सत्ताधारी पक्ष को मनमाना करने से सावधान करता है, उसके दुराग्रह की अवमानना करता है। दुराग्रही सरकार मदांध होकर डिक्टेटराना रुख अपना लेती है और फलस्वरूप न्याय-अन्याय में विवेक नहीं कर पाती। लोकतंत्र में वैचारिक संघर्षों तथा मतभेदों का अपाकरण अनिवार्य होता है, तभी सत्ताधारी सरकार सम्यक् रूप में कार्य कर सकती है। उसे विरोधी पक्ष की धारणा में भी सत्य देखना चाहिए। महावीर का अनेकान्तवाद यह बताता है कि तुम्हारे विरोधियों के पास जो भी सत्यांश है उसे समझो, पहचानो, ग्रहण करो। ऋग्वेद में प्रतिपादित है—"एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।' अर्थात् सत्य एक है, बुद्धिमान् उसका अनेक रूपों में वर्णन करते हैं। सत्य के अनेक रूप या अंश सम्पूर्ण सत्य से पृथक् नहीं, उसीके तो अंगभूत है फिर वे सभी सत्य हैं, स्वीकार्य हैं। अनेकांतवादी विचार-दृष्टि भी यही है। संसार में जो भी युद्ध या महायुद्ध हुए हैं वे सभी दुराग्रहावलम्बित थे और जब तृतीय महायुद्ध होगा, वह दुराग्रह के कारण ही होगा। लोकतंत्र इस प्रकार के दुराग्रह को स्वीकार नहीं करता, यहां किसी भी तरह के मताग्रह को स्थान नहीं। महावीर ने ठीक ही कहा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयं सयं पसंसंतं परं वयं जे उ तत्थ विउस्सन्ति संसारे ते विउस्सिया ।
(सूत्रकृतांग, १-१-२-२३)

जो अपने मत की प्रशंसा और दूसरों के मत की निन्दा करने में ही अपना पाण्डित्य दिखाते हैं, वे एकान्तवादी संसार चक्र में भटकते रहते हैं ।

वैचारिक सहिष्णुता

अनेकांत का दूसरा लोकतंत्रीय पक्ष है वैचारिक सहिष्णुता । भारत ने राजतंत्र से लेकर लोकतंत्र तक पहुंचने में कई मंजिलें तय की हैं । यहां का लोकमत भी बहुत बलवान् और प्रभावशाली है । चाहे कोई राजा कितना ही प्रतापी क्यों न हो वह लोकमत की अवहेलना नहीं कर सकता, यदि किसी ने की तो उसकी दुर्दशा नहुष तथा नृग जैसे राजाओं के समान हुई । रामचन्द्रजी जैसे लोकसंग्रही को लोकमत के सामने झुकना पड़ा था, सीता-परित्याग उसी का दृष्टान्त है । लोकतंत्र में दूसरों के विचारों, मतों, अवधारणाओं, रीति-रिवाजों, भाषा-साहित्य आदि के प्रति औदार्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना होता है । स्थानीय भाषाओं की मान-मर्यादा बढ़ानी होती है । महावीर ने अपना उपदेश जनभाषा अर्द्धमागधी में दिया था और लोकमानस को पूर्णतः प्रभावित किया था । यदि समाज में नूतन क्रान्ति लानी है तो जनभाषा या राष्ट्रभाषा द्वारा ही संभव है, इसी को हिन्दुस्तानी कह सकते हैं, जिसमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हमें सत्य-अहिंसा का उपदेश दिया, एक अमोघ अस्त्र प्रदान किया ।

जब हम दूसरे व्यक्ति या समाज अथवा जाति के विचारों, मान्यताओं का आदर करते हैं, उनके प्रति सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार करते हैं तो अपने ही देश और समाज को शांतिमय वातावरण प्रदान कर उसकी प्रगति-उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं । यहां पारस्परिक सौहार्द अंगड़ाई लेता है । हिंसा और द्वेष का दुर्दैत्य थककर बैठ जाता है । आज हम यदि लोकतंत्रीय पद्धति द्वारा समाजवाद लाना चाहते हैं तो वह भारतीय जीवन-दर्शन से ही संभव होगा, पाश्चात्य जीवन-दर्शन या परम्परा के अनुकरण से नहीं । यहां तक कि औद्योगिक क्रांति भी भारतीय परम्परा द्वारा सम्भव हो सकती है और उसके साथ राष्ट्रीय एकता को बल मिल सकता है और भावात्मकता की स्थापना भी शीघ्र हो सकती है ।

वैचारिक समन्वय

वैचारिक समन्वय को दूसरे मत का परिपूरक कहना अधिक उचित होगा । राजनीतिक धरातल पर यदि वैचारिक समन्वय हुआ तो लोकतंत्र की सफलता असंदिग्ध है । वैचारिक समन्वय को हम सत्यान्वेषण की व्यापक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि कह सकते हैं। काका कालेलकर ने अनेकान्तवाद को जैनियों की एक बहुत बड़ी देन माना है और कहा है—'अनेकान्तवाद के बल पर हम सर्वधर्म समभाव का प्रचार कर सकते हैं और इससे भी महत्त्व की बात यह है कि संघर्ष की जगह समन्वय और विविधता को भी स्थान हो और समन्वय के द्वारा एकता की भी स्थापना हो।' एक लोकतंत्र में अनेक धर्मों और सम्प्रदायों के माननेवाले रहते हैं, उन सभी की भावनाओं का समादर करते हुए एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता होती है, फिर पक्षपात की कोई गुंजाइश नहीं रहती। अनेकान्तवाद एक मनोवैज्ञानिक और समन्वयवादी जीवन दर्शन है। उसका समन्वयवादी पक्ष लोकतंत्र की सफलता के लिए अनिवार्य है क्योंकि समन्वयवादी दृष्टि अपना कर हम विरोधी पक्ष को भी अपने साथ लेकर चल सकते हैं।

अनेकान्त वैयक्तिकता और सामाजिकता के बीच एक सेतु है, जब तक दोनों का समन्वय न होगा, सामाजिक जीवन में सुख-शान्ति नहीं आ सकती। भारत में आज २००० जातियां उपजातियां रहती हैं। जब तक उनके मध्य एकता, प्रेम, सौहार्द की भावना नहीं होगी तब तक राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। १९ वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय ने देश में एकता की नयी चेतना को जन्म दिया। हमारी संकुचित भावनाओं, सामाजिक रूढ़ियों-कुरीतियों का उन्मूलन किया, साम्प्रदायिक भेदभाव को अपार्थ सिद्ध करके राष्ट्र को एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया, इसी प्रकार बीसवीं शताब्दी में महात्मा गांधी ने साम्प्रदायिकता का अन्त करने के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी। आज पुनः जातीय एवं साम्प्रदायिक भेदभाव सिर उठाने लगे हैं, जिनसे लोकतंत्र को खतरा उत्पन्न होने लगता है, सामाजिक जीवन आक्रान्त हो जाता है, देश की प्रगति में गतिरोध उत्पन्न होता है। क्यों नहीं हम भारत माता को मातृवत् समझते और अपने को पुत्र मानकर उसके प्रति प्रेम की वह उदात्त भावना व्यक्त कर पाते जिसका निर्देश अथर्ववेद में किया गया है—**माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।** (अथर्ववेद, १२-१-१२)

हम चाहते हैं कि हमारा समाज में आदर हो, फिर दूसरे को अस्पृश्य समझकर उसका अनादर क्यों करते हैं? लोकतंत्र में सभी की उन्नति प्रगति की संभावना रहती है, चाहे वह दलित वर्ग हो या सर्वहारा वर्ग हो। महर्षि अरविन्द ने तो यहां तक कहा था—'हमारा पहला और पवित्र कर्तव्य सर्वहारा का उत्थान और जागरण करना है।' अरविन्द की इस बात को साकारित करने के लिए अनेकान्तवादी लोकतंत्र को सुदृढ़ करना होगा क्योंकि उसका आधार वैचारिक समन्वय है। हमें अपनी आत्मा के द्वारा दूसरे की आत्मा को जीतना चाहिए, फिर कहीं भी शत्रु या वैर-भाव नहीं रह सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकांतवाद : आधुनिक संदर्भ में

'अनेके अन्ताः धर्माः यस्मिन् स अनेकांतः' अर्थात् अनेक धर्मों के कारण प्रत्येक वस्तु अनेकांत रूप में विद्यमान है। एक ही पदार्थ में पायी जाने वाली विशेषताएं (या धर्म) नानारूप होती हैं; लेकिन हैं सत्य और यथार्थ। पदार्थों की अनेकविध विशेषताओं के सम्यक् या तत्सम्बन्धी समन्वयात्मक प्रतिपादन का सिद्धांत अनेकांतवाद कहा जाता है। चाहे मटीरियल पदार्थ हों, चाहे नॉन-मटीरियल पदार्थ; सभी जड़-चेतन पदार्थों में अनन्त गुण, धर्म और शक्तियां मौजूद हैं। पदार्थ चाहे छोटा हो, चाहे बड़ा; है वह अनन्त शक्तिपुंज। क्या सूक्ष्म-लघु परमाणु (एटम) अनन्त शक्ति-पुंज नहीं? परमाणु-शक्ति के द्वारा अज्ञात रहस्यों का—अवनी-अंबर के गुप्त-गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया जा रहा है; चाहे बुधग्रह हो, चाहे भूगर्भ में छिपे अदृश्य परिवर्तन हों। एक एटम से क्षणभर में देश-के-देश विध्वस्त किए जा सकते हैं। आज परमाणु-शक्ति के द्वारा रडार, बिजलीघर आदि का सहजतः संचालन किया जा रहा है। गरज यह कि सभी पदार्थ अनन्त गुणों से आपूरित हैं और इन गुणों को सापेक्षता से परखा जा सकता है; विभिन्न दृष्टिकोणों से उन्हें हृदयंगम किया जा सकता है; जैसे बिजली से जहां आलोक प्राप्त कर तिमिरावरण को विदीर्ण किया जाता है, वहां उसी बिजली को करन्ट लगने पर प्राणों से हाथ भी धोना पड़ता है। अग्नि से नानाविध व्यंजन तैयार किए जाते हैं, शरद् ऋतु में उससे उष्णता प्राप्त होती है; लेकिन वही अग्नि घर को जलाकर राख भी कर देती है।

अनेकांतवाद अर्हद्दर्शन का निचोड़ है, यह एक ऐसी विचार-पद्धति है जो लोकाभिमुख है; तथा सत्यावलम्बित है। इसे महावीर की सत्य-शोधन-पद्धति या सत्य-प्रकाशन-शैली कहा जा सकता है। उन्होंने अनेकांतवाद के द्वारा ही व्यष्टिपरक, समष्टिपरक जीवन की भौतिक, व्यावहारिक और आध्यात्मिक—सभी प्रकार की समस्याओं का सम्यक् और अहिंसात्मक समाधान प्रस्तुत किया है। आज के इस बौद्धिक, तर्कप्रधान युग में दुराग्रह सत्यान्वेषण के मार्ग में भारी अड़चन पैदा करता है। दुराग्रह की कुहेलिका को विच्छिन्न कर सत्यालोक की प्राप्ति अनेकांतवाद द्वारा ही संभव है। दुराग्रह अहंकार-गर्भित होने के कारण उपेक्षणीय एवं अग्राह्य हो जाता है, जबकि अनेकांतवाद औदार्य-गर्भित और सहिष्णुता से परिपूर्ण होने के कारण ग्राह्य है। अनेकांत में तो वस्तुओं के, समस्याओं के अनेक अंत हो सकते हैं, एक ही अंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या निदान नहीं हो सकता, वह यही ध्वनित करता है। यह समदृष्टि का परिसूचक है; उस समदृष्टि, या समन्वयात्मक भावना का, जो भारतीय संस्कृति की एक विशिष्टता है। महावीर का अनेकांतवाद सभी प्रकार के अन्तर्विरोधों का उच्छेदन करने वाला है। उसमें लोकसंग्रह एवं समतावादी भावना का आधिक्य है, इसे हम सर्वधर्मसमभाव या धर्मनिरपेक्षता का साकारित रूप कह सकते हैं। आज देश में जब-तब सांम्प्रदायिकता, धर्मांधता स्वार्थान्धता से वातावरण विषाक्त हो जाता है, राजनैतिक मताग्रह एवं स्वार्थलिप्सा के कारण विश्व-वायुमण्डल द्वंद्व, संघर्ष, रक्तपात से परिदूषित कलंकित और होता है; वह इसी कारण कि मनुष्यों में अनेकांतवादी दृष्टि का लोप हो गया है; नहीं तो क्या विश्व-समस्याओं का कोई सर्व-सम्मत समाधान नहीं हो सकता था ? क्यों तोपों को निर्बाध रूप में आग उगलनी पड़ती, क्यों सुकुमार शिशुओं के नृशंस से रक्त से भूमि रंग जाती, दिशाएं लाल होतीं ? यदि हमें राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाना है, भावात्मक एकता को मजबूत बनाना है, सामाजिक, धार्मिक और भौतिक दृष्टि से समुन्नत होना है और विश्व की तृतीय महायुद्ध की विभीषिका से रक्षा करना है, उसे नाश से बचाना है तो श्लाकापुरुष महावीर के अनेकांतवाद को अंगीकार करना होगा। उनकी इस मौलिक वैचारिक क्रांति को, सूझ-बूझ को स्वीकार करना होगा, इस अभिनव सांस्कृतिक देन को समझना होगा, पल्ला पसार कर ग्रहण करना होगा। महात्मा गांधी ने अनेकांतवाद के विषय में ठीक ही कहा था—"मेरा अनुभव है कि अपनी दृष्टि से मैं सदा सत्य होता हूं, किन्तु मेरे ईमानदार आलोचक तब भी मुझमें गलती देखते हैं। पहले मैं अपने को ही सही और उन्हें अज्ञानी मान लेता था, किन्तु अब मैं मानता हूं कि अपनी-अपनी जगह हम दोनों ठीक हैं, कई अंधों ने हाथी को अलग-अलग टटोलकर उसका जो वर्णन किया था, वह दृष्टांत अनेकांतवाद का सबसे अच्छा उदाहरण है। इसी सिद्धांत ने मुझे यह बतलाया है कि मुसलमान की जांच मुस्लिम दृष्टिकोण से तथा ईसाई की परीक्षा ईसाई-दृष्टिकोण से की जानी चाहिए। पहले मैं मानता था कि मेरे विरोधी अज्ञानी हैं। आज मैं विरोधियों की दृष्टि से भी देख सकता हूं। मेरा अनेकांतवाद सत्य और अहिंसा इन युगल सिद्धांतों का परिणाम है।"

'धम्मो वत्थुसहावो' वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं, प्रत्येक वस्तु अनेक धर्म्य होती हैं, उसकी अनेक भूमिकाएं होती हैं। उपयोगिता की दृष्टि से उसमें भेद संलक्षित होते हैं, जबकि अस्तित्व की दृष्टि में उसमें साम्य और ऐक्य है। वस्तु की एकरूपता का दुराग्रह त्यागकर उसकी अनेकरूपता का प्रतिपादन करना ही अनेकांतवाद है। इस समय रात भी है और दिन भी है। देखने में विरोधाभास अवश्य लगता है, लेकिन समझने पर इसकी पूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्यता से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता; जैसे, लन्दन में यदि रात के दो बजकर दस मिनट हुए हों तो भारत में प्रातः के छह बजकर चालीस मिनट होते हैं। दिल्ली से यमुना पूरब में है, लेकिन वही यमुना गाजियाबाद से पश्चिम में है। सोना एक पदार्थ है; लेकिन अगूठी के रूप में, कर्णफूल के रूप में, कंगन के रूप में, नेक्लेस के रूप में उसके कई आकार हैं। कई रूपों में उसकी उपयोगिता स्पष्ट है। अंधे व्यक्तियों का हाथी के पैर, कान, सूंड, पेट पकड़कर उन्हीं अंगों को हाथी मानना भले ही पूर्ण सत्य न हो, लेकिन वे हैं सभी हाथी के अंग; हाथी से भिन्न उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। फलतः सभी अंधे व्यक्ति सत्यांश के सन्निकट हैं। श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री ही नहीं हैं, वह एक माता भी है, एक दादी भी हैं और पं० नेहरू की सुयोग्य बेटी भी हैं। उनके ये रूप भिन्न-भिन्न होकर भी सत्य हैं। अतः हमें चाहिए कि प्रत्येक वस्तु का सापेक्ष रूप में अवलोकन करें।

ठीक है कि अनेकांतवाद की कोई निरपेक्ष परिभाषा सहज नहीं, यहां पहुंच कर भाषा जैसे मूक हो जाती है, शब्द जैसे पंगु हो जाते हैं। अनेकांतवाद के द्वारा महावीर ने परस्पर विरोधी धर्मों, सन्तों के मध्य एक बुद्धिगम्य समन्वय स्थापित करने का श्रेयस्कर प्रयत्न किया। यह विचार-दर्शन आइन्स्टीन के सापेक्षवाद के अत्यधिक निकट है। अनेकांतवाद को 'स्याद्वाद' की शैली में अभिव्यंजित किया गया है। 'स्यात्' अर्थ की दृष्टि से सापेक्षता का द्योतक है। आइन्स्टीन के सत्य के दो पक्ष हैं (१) सापेक्ष सत्य (२) नित्य सत्य। उनके मतानुसार सापेक्ष सत्य ही बुद्धिगम्य है। महावीर का अनेकांतवाद भी पूर्णतः सापेक्ष सत्य पर आधारित है; अतः तर्कसंगत और सुगम है।

अनेकांतवाद को 'स्याद्वाद' की शैली में प्रस्तुत किया जाता है। 'स्यात्' शब्द 'शायद' का समानार्थी नहीं है; 'शायद' में तो वस्तु-स्थिति का बराबर अनिश्चय बना रहता है, वस्तु की स्थिति संदेहास्पद बनी रहती है, जबकि स्याद्वाद में वस्तु की स्थिति का निश्चय बना रहता है। हां, यह 'वस्तु-स्थिति-निश्चय सापेक्ष' होता है। इसके द्वारा हम सापेक्षता में सोचते हैं पक्षपात में नहीं—

'स्याद्वादो विद्यते यत्र, पक्षपातो न विद्यते।
अहिंसायाः प्रधानत्वं, जैनधर्मः स उच्यते ।।'

हम जितना जानते हैं उतना अभिव्यक्त नहीं कर पाते, कहने पर भी बहुत कुछ अनकहा रह जाता है। बस 'गूंगे के गुड़' जैसी बात है; गूंगा वस्तु के माधुर्य का अनुभव तो करता है परन्तु उसका वर्णन करने में असमर्थ है। वास्तव में अपूर्णता या अधूरेपन के अभाव को दूर करने के लिए ही 'स्यात्'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द प्रयुक्त किया जाता है। यदि एक व्यक्ति के भिन्न-भिन्न छवियों में 'स्नेप' उठाये जाएं तो ये तमाम फोटो भिन्न होकर भी 'स्यात् यह ठीक है', इस प्रकार देखने से रुचिकर, सन्तोषप्रद और ग्राह्य होंगे। विभिन्न अपेक्षाओं, दृष्टिकोणों या मनोवृत्तियों से जो एक ही तत्त्व के नाना दर्शन फलित होते हैं उन्हीं के आधार पर 'भंगवाद' की सृष्टि होती है। जिन दो दर्शनों के विषय ठीक एक-दूसरे से बिल्कुल विरोधी जान पड़ते हों, ऐसे दर्शनों का समन्वय बतलाने की दृष्टि से उनके विषयभूत भाव-अभावात्मक दोनों अंशों को लेकर उन पर जो संभावित वाक्यभंग बनाये जाते हैं वे ही सप्तभंग हैं, जिनका आधार नयवाद और ध्येय समन्वय है। 'भंग' का अर्थ है भाग, लहर, प्रकार आदि। 'भंग' से तात्पर्य वचन के उस आधार से है जो वस्तु का स्वरूप बताता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी पदार्थ के विषय में जो बात कही जा सकती है वह सात प्रकार से कही जा सकती है, यही सप्तभंगी है—

'स्यादस्ति स्वचतुष्टयादिरतः स्यान्नास्त्यपेक्षक्रमात्।
तत्स्यादस्ति च नास्ति चेति युगपत् सा स्यादवक्तव्यता॥
तद्वत् स्यात् पृथगस्ति नास्ति युगपत् स्यादस्तिना स्याहिते।
वक्तव्ये गुणमुख्यभावनियतः स्यात् सप्तभंगीविधिः॥

(श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्रम्, १०)

सप्तभंगी विधि इस रूप में है:—(१) स्यात् अस्ति, (२) स्यात् नास्ति, (३) स्यात् अस्ति-नास्ति (४) स्यात् अवक्तव्य (५) स्यात् अस्ति-अवक्तव्य (६) स्यात् नास्ति-अवक्तव्य (७) स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य। वास्तव में प्राचीनकाल में आत्मा आदि के विषय में नित्यत्व-अनित्यत्व, सत्व-असत्व, एकत्व-बहुत्व, व्यापकत्व-अव्यापकत्व आदि के आधार पर परस्पर विरोधी मतों को समन्वित करने के लिए 'सप्तभंग' की कल्पना की गयी। चूंकि सात से अधिक वाक्यभंगियां संभव नहीं हैं अतः सप्तभंग यानी सात की संख्या का ही निर्धारण किया गया। सप्तभंगित्व पारस्परिक मत वैभिन्य का परिहार कर एक सर्वग्राह्य बुद्धिगम्य सत्यानुगामिनी अभिव्यक्तिशैली है। सत्यान्वेषक के सत्य की खोज इसी सिद्धांत से होती है। दुराग्रहपूर्वक अपना मत दूसरे पर थोपने से काम नहीं बनेगा। प्रजातन्त्र हो या समाजवाद, इनका समुचित रूप प्राप्त करने के लिए हमें अनेकांतवाद के चिन्तन को अवलम्ब बनाना होगा। जब हम दूसरे के कथन को सुनते हैं और उसे न्यायोचित मानकर स्वीकृति देते हैं तो समझना चाहिए हम अनेकांतवाद के धरातल पर खड़े हैं। अनेकांतवाद में धर्म-निरपेक्षता की भावना भी विद्यमान है। जहां मतों में, धर्मों में, विचारों में कोई आग्रह नहीं होता, कोई संघर्ष नहीं होता, किन्तु सहिष्णुता का उदधि उद्वेलित है, वहीं अनेकांत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाद है। हम अपने प्रजातन्त्र को, समाजवादी समाज-रचना को धर्म-निरपेक्षता की भावना को यदि सुदृढ़ रूप देना चाहते हैं, उसे अधिकाधिक लोक हितकारिणी बनाना चाहते हैं, तो हमें महावीर के अनेकांतवाद के रास्ते पर ही चलना होगा। अलग-अलग मत मतांतरों और दुराग्रहों की दीवारों को तोड़ना होगा, तभी हम महावीर के अविभाज्य व्यक्तित्व को सम्यक् रूप में देख सकते हैं। महावीर के पास कौन-सा देवालय या चैत्य था ? आत्मधर्म के लिए, आत्मशोधन के लिए न किसी देवालय की जरूरत है और न किसी चैत्यालय की। जहां विचारों में, मतों में आग्रह होता है, वहां न केवल संघर्ष जन्म लेता है वरन् द्वेष, घृणा, क्रोध और हिंसा का उदय भी होता है। सत्य किसी एक धर्म, जाति या राष्ट्र की पूंजी नहीं। व्यक्ति संप्रदाय सत्य के नूतन गवाक्षों को खोलकर समाज और मानवता को गौरवन्वित कर सकता है। अनेकांतवाद भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राज्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी प्रासंगिकता से कौन मुंह मोड़ सकता है ? महावीर के इस बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक मूल्य को अपनाकर हम न केवल अपने प्रजातन्त्र को धर्मनिरपेक्षता की भावना को मजबूत बना सकते हैं, किन्तु मानव-कल्याण के लिए सह-अस्तित्व एवं विश्व-शांति के पथ को भी प्रशस्त बना सकते हैं। संघर्षों, दुराग्रहों, शोषणों, तनावों, मत-मतांतरों के सागर को हमें एक साथ मिलकर मथना होगा, तभी अनेकांतवाद का अमृत हाथ लग सकता है। व्यापक सहिष्णुता से अभिमंडित होने के कारण अनेकांत-वाद भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल वैशिष्ट्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपरिग्रह : वर्तमान संदर्भ में

भगवान् महावीर ने मानवता के उद्धार के लिए पांच सिद्धांतों या महाव्रतों का प्रतिपादन किया—(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य (५) अपरिग्रह। यह माना कि उनके युग में और हमारे युग में लगभग ढ़ाई हजार वर्षों का एक बहुत लम्बा अन्तराल है, परन्तु यदि हम आज देश की सामाजिक या आर्थिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करें, राष्ट्रीय समस्याओं का पर्यवेक्षण करें और विश्व की विनाशकगार पर खड़ी स्थिति का अवलोकन करें तो हम अपने आपको, समाज, देश और विश्व को महावीर-युगीन परिस्थितियों में पाते हैं। आज भी वैसी ही हिंसा है, घृणा-द्वेष है, जातीय भेदभाव है, आर्थिक विषमता है, वर्ग-संघर्ष है, कामुकता और वासना है, अशांति और तनाव है। मनुष्य अवश्य चांद पर कदम रख चुका है, परन्तु उसे धरती पर चलना नहीं आता। उसकी धर्मपरायणता स्वार्थ में भस्म हो गई है। उसकी मानवता 'स्व' के घेरे में बंधी रहती है। उनके चरित्र की आभा धूमिल पड़ गई है। उसके कर्मों से दूसरों का हित नहीं, अहित होता है। वह समाज में रहकर समाज से दूर है। उसके हृदय और बुद्धि में कोई तालमेल नहीं, उसके कहने और करने में कोई सामंजस्य नहीं, वह बुरी तरह विषमता के जाल में फंसता जा रहा है, इसीलिए दुःखी है, अशांत है।

इस संसार में न जाने कितने प्राणी हैं। हमारे चारों ओर अनेक मनुष्य हैं, पशु-पक्षी हैं। उनके प्रति भी हमारे कुछ कर्तव्य हैं, उन्हें साथ लेकर यदि हम चलें तो कितना अच्छा हों, उन्हें साथ लेकर यदि हम काम करें, खायें-पीयें, हंसें-खेलें तो यह धरती न जाने क्या बन जाए! बस हम मानव बन जायें तो संसार को बदल कर रख दें। आज जब चारों ओर हिंसात्मक घटनाएं देखते हैं तो यकीन नहीं होता कि हम महावीर-गौतम के देश में रहते हैं। क्या यह गांधी का देश है? महावीर के सिद्धांतों में अपरिग्रह का स्थान पांचवां है परन्तु इसे जीवन मनुष्य समाज के विकास और उन्नयन का हम प्रथम सोपान मानेंगे। इसी के द्वारा हम दूसरे सोपानों पर जमा-जमा कर पैर रखते हुए अहिंसा के उच्च शिखर पर पहुंच सकते हैं। अतः अहिंसा की समुपलब्धि के लिए आवश्यक है कि अपरिग्रह व्रत को धारण करें। महावीर ने अर्थजन्य विषमता को, जातीय या वर्ग-भेद को मिटाने के लिए अपरिग्रह का सूत्र दिया, अचौर्यव्रत की विचारधारा दी। उन्होंने लोभ-वृत्ति को रोकने के लिए अस्तेय व्रत का विधान सामने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखा और आदेश दिया—सद्गृहस्थ को चोरी का माल नहीं खरीदना चाहिए, चोरी के माल के लोभ से किसी की सहायता नहीं करनी चाहिए, चोर की भी सहायता नहीं करनी चाहिए, नाप-तोल में बेईमानी न करें, राज्य द्वारा निषिद्ध (जैसे शराब, तस्करी आदि) व्यवसाय न करें और न ही असली में नकली वस्तु मिलाकर उसे कम मूल्य पर बेचकर पाप के भागी बनें। महावीर ने स्पष्ट कहा—**असंविभागी न हु तस्स मोक्खो** अर्थात् जो असंविभागशील है, अपनी अर्जित वस्तुओं को दूसरों में संविभाजित नहीं करता, उसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। अतः अपरिग्रह ही मोक्ष-मार्ग है।

दक्षिण के महान् सत कवि तिरुवल्लुवर ने एक स्थान पर कहा है—"धोखा देकर, दगाबाजी से धन जमा करना बस ऐसा है जैसा कि मिट्टी के कच्चे घड़े में पानी भर कर रखना। जो धन निष्कलंक रूप से प्राप्त किया जाता है उससे धर्म और आनन्द का स्रोत बह निकलता है।" महावीर ने धन कमाने को बुरा नहीं कहा। धनार्जित किये बिना हमारा काम नहीं चलेगा, समाज का उत्थान नहीं होगा, देश की प्रगति नहीं होगी लेकिन लूट-खसोट करना, खाने-पीने की वस्तुओं में मिलावट करना निन्दनीय है, समाज, देश और मानवता के हित में नहीं है। महावीर का धर्म मानव-धर्म है इसलिए उन सब वस्तुओं के परिग्रह का यहां निषेध है, जिनसे मानवजाति का अहित हो। मनुष्य के लिए, गृहस्थी के लिए उन्होंने 'परिग्रह परिमाण' की घोषणा की, अर्थात् सीमित मात्रा में आवश्यकतानुसार वस्तुओं का संग्रह करना मनुष्य और समाज के लिए हितकर है परन्तु लोभवृत्ति की उन्होंने निन्दा की, क्योंकि लोभ पाप का मूल है, यह अहिंसा की जननी है, अस्तेय की मां है। महावीर ने कहा—

वियाणिया दुक्खविवड्ढणं धणं, ममत्तबन्धं च महब्भयावहं।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेज्जे निव्वाणगुणावहं महं।

अर्थात् धन को दुख बढ़ाने वाला, ममत्व बन्धन का कारण और महाभयावह जानकर उस सुखावह, अनुपम और महान् धर्मधुरा को धारण करो, जो निर्वाण-गुणों को वहन करने वाली है।

कबीर के शब्दों में महावीर के अपरिग्रह की यह परिभाषा हो सकती है। कबीर भगवान् से प्रार्थना-याचना करते हैं—

साईं इतना दीजिए जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय।

क्या हम कभी सोचते हैं कि हमारे पड़ोसी कितने सुखी-दुःखी हैं? क्या हम उनके अभावग्रस्त जीवन में सहारा बन सकते हैं? क्या हमारा धन-संग्रह उनकी दरिद्रता का कारण नहीं? मनुष्य धनार्जन से महान् नहीं बनता, त्याग व बलिदान से महान् बनता है। हमें हमारे देशवासियों को, धनार्जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अंधे लोगों को सोचना चाहिए कि यह भौतिकता हमारा कितना अनर्थ कर रही है। हमें धर्म और अध्यात्म के मार्ग से विचलित करने वाली यही भौतिकता है, परिग्रहवृत्ति है। हमें पशु-वृत्ति की ओर ले जाने वाली यही परिग्रह वृत्ति है। हमें घोर हिंसक, क्रूर मनुष्य बनाने वाली यही परिग्रह वृत्ति है। कहीं बोनस के लिए सरकारी कर्मचारी, मिल-मजदूर हड़ताल करते हैं तो कहीं दिनदहाड़े बसों को लूटा जाता है महिलाओं के आभूषण छीने जाते हैं, करों की चोरी की जाती है, तस्करी की जाती है, वस्तुओं में मिलावट की जाती है, अनुचित तरीके अपनाकर अथवा घूंस लेकर धन एकत्रित किया जाता है। लोगों की त्यागवृत्ति संग्रहवृत्ति में, प्रेमभावना घृणा में और मानवता दानवता में बदल गई है। हम आत्मिक सम्पदा से खाली हैं। महावीर ने मनुष्य की मुक्ति के लिए **'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'** का मूलमंत्र दिया। दर्शन, ज्ञान और चारित्र की त्रिवेणी प्रवाहित कर मानवता के लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया। मुक्ति का यह मार्ग सभी व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के लिए उपयोगी है, अनुकरणीय है। इन तीन रत्नों की प्राप्ति के लिए हमें मनसागर का मंथन करना होगा, अहिंसा और अपरिग्रह के दोनों नेत्रों से समान रूप में प्रत्येक वस्तु का पुनराविष्करण करना होगा।

महाभारत में आया है कि व्यक्ति तप से ब्राह्मण बनता है, जाति निर्मूल और अकारण है। जयघोष मुनि ने कहा था—'कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य और शूद्र होता है, जन्म से नहीं।' यही बात हजारों वर्ष पूर्व महावीर ने कही—

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

उत्तराध्ययन, २५/३१

भगवान् महावीर ने मात्र बाह्य-वेश धारण करने वालों पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुये कहा था—केवल सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता, 'ओम्' का जप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, केवल अरण्य में रहने और कुश का चीवर पहनने मात्र से कोई तापस नहीं होता, अपितु समभाव की साधना करने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण होता है, ज्ञान की आराधना—मनन करने से मुनि होता है, तप का आचरण करने से तापस होता है—

न वि मुंडिएण समणो न ओंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्णवासेणं कुसचीरेण न तावसो॥
समयाए समणो होइ बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण य मुणी होइ तवेण होइ तावसो॥

—उत्तराध्ययन, २५/२९-३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने को ब्राह्मण मानकर दूसरे को शूद्र समझकर मनुष्य का अनादर करना कितना घिनौना और पापमय है ! अपनी जाति को, धर्म को दूसरी जाति या धर्म से श्रेष्ठतर समझना, दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखना भी परिग्रह है । इसे हम **'जाति का परिग्रह'** कहेंगे, **'धर्म का परिग्रह'** कहेंगे । जाति और धर्म के परिग्रह से कितना अनिष्ट हो रहा है, यह किसी से छिपा नहीं । हरिजनों, गड़रियों आदि के घरों में आग लगाई जाती है, उन्हें जीवित आग में फेंका जाता है । हिन्दू मुसलमानों के साम्प्रदायिक दंगे अलीगढ़, मुजफ्फर नगर, संभल, जमशेदपुर आदि में जो गतवर्षों में हुए, वे सभी धर्म और जाति के आधार पर हुए । उस समय मालूम नहीं वह पाशविक और राक्षसीवृत्ति हमारे अन्दर कहां से आ जाती है ? हम क्यों भूल जाते हैं कि हम पैगम्बर मोहम्मद, गौतम, महावीर, नानक के अनुयायी हैं, जिन्होंने अहिंसा, शान्ति, प्रेम और भाईचारे का संदेश सकल विश्व को—संपूर्ण मानवता को दिया । महावीर ने अपने युग में जातीय एवं वर्ग एकता पर बल दिया, उनके 'समवशरण' में विभिन्न वर्गों, जातियों, धर्मों और सम्प्रदायों के लोग एक साथ बैठ कर प्रवचन-लाभ प्राप्त करते थे । उनके युग में भी शूद्र और चाण्डाल थे । उन्होंने हरिकेशी जैसे चाण्डाल को सहर्ष गले लगाया । समाज में दास-प्रथा का उच्छेदन उन्होंने किया । चन्दनबाला को श्रमण धर्म में दीक्षित कर नारी जाति का सम्मान बढ़ाया, उसे एक परिग्रह की वस्तु नहीं समझने दिया । आज तक हमारे यहां बन्धक मजदूरों की प्रथा रही, नारी को तो आज भी परिग्रह की वस्तु, भोग-विलास की सामग्री माना जाता है । महावीर ने उपदेश दिया था—"मनुष्य के द्वारा मनुष्य को दास बनाया जाना बन्द होना चाहिए । कितनी बर्बर और असभ्य बात है कि मनुष्य मनुष्य को दास बनाये ! संसार के सभी प्राणी स्वतंत्र हैं, कहीं भी कोई प्राणी किसी को दास नहीं बना सकता । यह दासता या दास-प्रथा प्राणों की मूल सत्ता के प्रति चुनौती है और उसके मूल में व्यक्तित्व का हनन है ।'

उमास्वाति ने मूर्च्छा को परिग्रह कहा है; अर्थात् वस्तु के प्रति मनुष्य का ममत्व ही परिग्रह है । ममत्व में मनुष्य की दृष्टि 'स्व' पर ही केन्द्रित रहती है । अतः परिग्रह में दृष्टि की संकीर्णता है, उदारता नहीं । हम अपने लिए ही सब कुछ करते हैं, दूसरों के लिए कुछ नहीं कर पाते, एक प्रकार से परिग्रहांध होकर हम उस सांप के समान हो जाते हैं, जो अपनी केंचुली में लिपटा अंधा और अशक्त बना रहता है । हमें परिग्रह की केंचुली को उतारना होगा, अपनी दृष्टि, विचार और ज्ञान को सम्यक् बनाना होगा । परिग्रहांध होकर हम आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त नहीं कर सकते, जिसके द्वारा हम अपने व्यक्तित्व का, आत्मा का विकास करते हैं । महावीर एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजकुमार थे, वैशाली राज्य का रास्ता अपनाया। हमारे युग में गांधीजी एक सम्पन्न परिवार से आये थे, बैरिस्टर थे परन्तु जब स्वतंत्रता के पथिक बने तो अपरिग्रहव्रत धारण कर महावीर की परम्परा का, उनके आदर्शों का अनुकरण किया। नेहरूजी ने समाजवादी शासन व्यवस्था या समाजवादी समाज-व्यवस्था को अपना कर महावीर की ही अपरिग्रहवादी विचारधारा को आगे बढ़ाया। आज हम महावीर के इस अपरिग्रहवाद को जीवन में उतार कर राष्ट्रीय चरित्र का विकास कर सकते हैं। हमारे देश में साधारण मनुष्य से लेकर नेता लोगों तक में राष्ट्रीय चरित्र का अभाव पाया जाता है और यह एक खटकने वाली बात है। देशोत्थान के लिए हमें व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़ना है, शोषण की कुवृत्ति को त्यागना होगा। 'इच्छा-परिमाणव्रत', जिसका उपदेश महावीर ने दिया था, वह हमारे अन्दर कहां है ? क्या हमारे समाज में दहेज की कुप्रथा परिग्रह का उदाहरण नहीं ? क्या इसकी भेंट अनेक नव विवाहिता युवतियां नहीं चढ़ाई जातीं, उन्हें मिट्टी का तेल छिड़कर नहीं जलाया जाता ? हमें पुनः महावीर के उपदेशों को पकड़ना होगा, उनकी शरण में जाना होगा, उन्हें जीवन में उतारना होगा। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने एक बार कहा था—'लगभग सभी लड़ाइयां जमीन, सोना, अन्न अथवा खनिज हथियाने के लिए लड़ी गईं। आज दुनिया को मालूम पड़ रहा है कि शांति के साथ-साथ मानसिक शान्ति तभी आ सकती है जब हम स्वार्थपरता से छुटकारा पायें। आत्मिक विकास के बिना हम आर्थिक विकास के झगड़ों को नहीं सुलझा सकते। आधुनिकता और विज्ञान का मतलब यह नहीं होता कि हम प्राचीन मूल्यों को छोड़ दें, बल्कि हमारा प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि विज्ञान के साथ हम उनका मेल बिठाएं। अहिंसा और अपरिग्रह से ही सभ्यता बचाई जा सकती है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा की भावभूमि

जब हम अहिंसा की बात करते हैं तब यह भूल जाते हैं कि इस शब्द का अस्तित्व हिंसा के कारण है। हिंसा न होती तो 'अहिंसा' की व्युत्पत्ति सम्भव नहीं थी। देखने में तो यह आया कि सृष्टि का यह सारा बखेड़ा हिंसा का मूल है। मनु द्वारा सृष्टि की पुनर्रचना से पूर्व देवजाति का संहार हिंसा पर आधृत था। कहते हैं—आदिकाल में अनेक बार देव-दानवों के युद्ध होते रहे, पुराणादि इसके साक्ष्य हैं। यों देव-दानव-परम्परा तो अपने परिवर्तित रूप में आज भी विद्यमान है—उसके रूप में, मात्रा में, कार्य-कारण में, विधि-विधानों में काफी अन्तर पड़ गया है। कुरान के पवित्र पृष्ठों से विदित है कि खुदा ने आदम का पुतला बनाकर सभी फरिश्तों से उसके सामने सिजदा कराया। सभी ने खुदा के हुक्म की तामील की—एकदम सिजदे में झुके। मगर इब्लीस (शैतान) ने सिजदा नहीं किया, और तर्कसंगत कारण प्रस्तुत किया कि यह आदम मिट्टी से बना है, खाक का पुतला है जबकि मैं नार (आग) से बना हूं। खुदा के हुक्म की तामील न करने की सजा शैतान को दी गयी कि खुदा ने उसे अपने दरबार से निकाल दिया; लेकिन उसी क्षण उसने प्रण किया कि जिस आदम के कारण मैं इतना अपमानित और तिरस्कृत हुआ, उसे और उसकी भावी पीढ़ियों को कभी चैन से नहीं बैठने दूंगा, उसे हमेशा सन्मार्ग से विचलित करता रहूंगा—पापों और गुनाहों में फंसाता रहूंगा। इब्लीस ने अपने परम शक्तिमान अस्त्र का सबसे पहले उसी आदम पर प्रयोग किया और जन्नत (स्वर्ग) में अल्लाह द्वारा निषिद्ध फल उसे खिलाया। फिर क्या था, आदम भला अल्लाह के प्रकोप से कैसे बच सकता था, उसने तुरन्त उसे स्वर्ग से पृथ्वी पर पटक दिया। शैतान के मन की मुराद पूरी हुई; किन्तु अभी तक वह चैन से नहीं बैठा। न आदम अभी तक मरा, न शैतान। दोनों अपने अपने रास्ते अग्रसर हैं। कह नहीं सकते—बाजी किसके हाथ में रहेगी। इतनी लम्बी-चौड़ी भूमिका से यह बात स्पष्ट होती है कि हिंसा और अहिंसा की लड़ाई जारी है और जारी रहेगी; क्योंकि लक्षण और परम्परागत अनुभव यही कहते हैं।

यदि 'जीवो जीवस्य भोजनम्' के सिद्धांत पर विचार करें, या ऐसे दार्शनिकों-विचारकों के मत पर दृष्टिपात करें, जो युद्ध की संभावना को संसार के लिए अनिवार्य मानते हैं, तो हमें हिंसा का पलड़ा ही भारी दिखायी देगा; परन्तु स्वयं जीवन के या आदम के स्वरूप पर दृष्टिपात करें तो अहिंसा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायल होना पड़ेगा, उसकी अन्तर्निहित शक्ति को स्वीकारना होगा। एक स्थान पर फारसी के प्रसिद्ध शायर शेखसादी फरमाते हैं—

तरीकत बजुज खिदमते खल्क नेस्त ।
बतस्बीह व सजादह व दल्क नेस्त ।।

अर्थात् खुदा का सामीप्य खुदा की बनायी सृष्टि-प्राणियों की सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह मार्ग न माला फेरने से मिलता है, न सज्जाद-नशीं होने से मिलता है और न गुदड़ी-कंथा पहनने से मिलता या तय होता है। यहां महत्त्वपूर्ण बात जीवों के प्रति सेवा-भाव है, प्रेम-भाव है। जो ईश्वर की बनायी सृष्टि से प्रेम नहीं कर सकता, वह ईश्वर से कैसे प्रेम करेगा? ईश्वर से प्रेम करने का सीधा रास्ता सेवा-मार्ग है, सेवा-धर्म है। जब प्रेम-सेवा-भाव नहीं तो 'तेरा-मेरा मनुवा कैसे एक होय रे?' (कबीर)। स्पष्ट है तेरे-मेरे मन को एकता में बांधने का काम सेवा-प्रेम के धागे ही कर सकते हैं और ये धागे कच्चे सूत के नहीं होते, पक्के-रेशमी होते हैं; अतः अहिंसा की भाव-भूमि सेवा और प्रेम के मार्ग पर चलने से प्राप्त होती है। यही प्रेम और सेवा-भाव है, जिसके बदले में इकबाल 'शाने खुदाबन्दी' भी लेने को तैयार नहीं। कहते हैं—

मकामे बन्दगी देकर न लूं शाने खुदावंदी।

जब मनुष्य में प्रेम या सेवा के भाव उत्पन्न होते हैं तो उसका सारा 'अहं' नष्ट हो जाता है। अहंभाव पतन की, संघर्ष और हिंसा की आधार-भूमि है। देखते हैं कि जो पर-सेवा-निरत रहते है, दूसरों पर प्रेम-दृष्टि रखते हैं उनका स्वभाव नम्र से नम्रतर और बाद में नम्रतम हो जाता है। मनुष्य खुदा के प्रेम में डूबा हुआ है, रात-दिन उसकी सेवा में अभिरत रहता है। शैतान उसकी इस अपार नम्रता को देखकर आश्चर्यान्वित हो जाता है; क्योंकि उसकी हिंसा का जादू उस पर कारगर नहीं होता। अब क्या करे शैतान? खुदा से कहता है—"ए खुदा! मैं तो आदम की संगति में रहकर खराब हो गया, उसने एक दिन भी मेरा मुकाबला न किया। हर कदम पर मेरे आगे अस्त्र डाल दिये। ए खुदा! मैं अपनी पूर्व-बंदगी का वास्ता देता हूं तू मुझे उसकी संगति से मुक्त कर दे।" यही नहीं, शैतान आदम के सामने भी गिड़गिड़ाता है—"ए आदम (मानव)! तू मुझे इस आग से भी छुटकारा दे, जिससे मैं जल रहा हूं—पथ-भ्रष्ट करने की अग्नि से। शिकारी उसी समय तक जाल फैलाता है, जब उसे विश्वास हो कि शिकार फंस सकता है। यदि शिकार सावधान हो जाए, मनुष्य सचेत हो जाए, आत्मज्ञानी बन जाए तो कोई उसे अपने जाल में कैसे फंसा सकता है? प्रेम या मैत्री में जो आकण्ठ डूबा हो, उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमृतत्वं विषं याति सदैवामृतवेदनात् ।
शत्रुमित्रत्वमायाति मित्रसंवित्ति वेदनात् ।।

अर्थात् सदा अमृतरूप में चिन्तन करने से विष भी अमृत बन जाता है। मित्र-दृष्टि से देखने पर शत्रु भी मित्ररूप में बदल जाता है। महावीर स्वामी की अहिंसक एवं मैत्रीपूर्ण दृष्टि चण्डकौशिक जैसे भयंकर विषधर को पराजित कर देती है। अहिंसा और मानवता में कोई भेद नहीं; दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं। भला जो चीज हम दे नहीं सकते, उसे लेने का हमें क्या अधिकार है ? क्या कोई किसी मनुष्य या प्राणी की जान लेकर पुनः उसे लौटा सकता है ? कभी नहीं। जब हम किसी के प्राण लौटा नहीं सकते तो उन प्राणों को छीनने का अधिकार हम कैसे ले सकते हैं ? अहिंसा हमें लेना नहीं, देना सिखाती है और जीवन का माहात्म्य लेने में नहीं देने में है, त्याग और बलिदान में है। अहिंसा मनुष्य को आत्मौपम्य दृष्टि प्रदान करती है। गीता में कहा गया है कि आत्मौपम्य दृष्टि से जो सबको एक-सी दृष्टि से देखता और सोचता है कि जिस वस्तु में मुझे सुख मिलता है उसमें दूसरे को सुख मिलेगा और जिससे मुझे दुःख होगा उससे दूसरे को भी दुःख होगा, वही परम योगी है; फिर हम आत्मा के प्रतिकूल आचरण क्यों करें ? आत्मौपम्य दृष्टि भी अहिंसा है। यह हमें सभी प्राणियों के प्रति समान-आत्मवत् आचरण करने की अभिप्रेरणा देती है। आत्मा का विस्तार मानवता का विस्तार है, अहिंसा का विस्तार है, मैत्री का विस्तार है—'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सह-अस्तित्व' का विस्तार है। इस विस्तार में संकीर्णता आयी तो हिंसा, संघर्ष, द्वन्द्व, रक्तपात का ताण्डव-नृत्य होने लगता है। अहिंसा मानवता का अभ्युत्थान कर उसे उस स्थान पर ले जाती है, जहां वह दूसरों को अपने समान महत्त्वपूर्ण समझने लगता है—यही आत्मा का विस्तार है। फारूक आजम एक राजा से मिलने जा रहे थे। उनके साथ उनका सेवक था। फारूक आजम स्वयं राजा (खलीफा) थे और कभी नौकर, कभी स्वयं ऊंट पर बैठे चले जा रहे थे। बारी-बारी बैठते थे। जब गन्तव्य के निकट पहुंचे और वहां राजा अपने सभासदों मंत्रियों के साथ उनके स्वागतार्थ खड़े थे, तब ऊंट पर चढ़ने की बारी सेवक की आ गयी। सेवक ने सम्मानार्थ स्वामी फारूक आजम से कहा कि उधर सामने राजा-मंत्री खड़े हैं, मेरा ऊंट पर बैठना ठीक नहीं—शिष्टाचार के विरुद्ध है; लेकिन फारूक आजम ने सेवक की एक न सुनी और उसे ऊंट पर बैठाया, स्वयं रस्सी पकड़कर आगे-आगे चलते रहे। यही आत्मौपम्य-दृष्टि है, अहिंसा-दृष्टि है।

अहिंसा का सम्बन्ध मूलतः भावना से है, यही भावना बाद में कर्म में परिणत होती है। इसमें सभी की, सब प्रकार से कल्याण-कामना सन्निहित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहती है। यहां 'अपने' के स्थान पर 'दूसरे' को तरजीह दी जाती है; अतः स्वार्थ का, विषय वासना या तृष्णा का, लोभ या मोह का कोई स्थान यहां नहीं रहता। फिर अहिंसा मोक्ष का द्वार बन जाती है। आत्मा का संस्कार-परिष्कार इसी के द्वारा संभव है। इस तरह व्यक्ति और समाज को, इहलोक और परलोक को सुख-आनन्दमय बनाने की शक्ति अहिंसा में विद्यमान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा की गंगा : भारत की अस्मिता

भारतीय संस्कृति में गंगा का जो महत्त्व है वही महत्त्व हमारे जीवन में अहिंसा का है। गंगा मोक्षदायिनी है, पीयूषवर्षिणी है, सकल मल-कलुष हारिणी है। अहिंसा भी मोक्षदायिनी है, जगन्माता है, सर्व प्राणियों को सुख-शांति प्रदान करनेवाली है। 'सूत्रकृतांग' में अहिंसा को जगत्-माता कहा गया है। 'योगशास्त्र' में कामधेनु के रूप में व्याख्यायित किया गया है। अहिंसा जगत-माता है, आनन्द का मार्ग है, उत्तम गति है, शाश्वत लक्ष्मी है—

अहिंसैव जगन्माताऽहिंसैवानन्दपद्धतिः।
अहिंसैव गतिः साध्वी, श्री अहिंसैव शाश्वती॥

प्रश्न यह है कि जब अहिंसा में ऐसी अद्भुत शक्ति है, ऊर्जा है, गुण-सम्पन्नता है तो हमारे जीवन की खेती क्यों सूखती जा रही है? जहां देखो हिंसा का बोल बाला है। राजीव गांधी की नृशंस हत्या इसका ज्वलंत प्रमाण है। इसके साथ आप निर्वाचन के दिनों पर ध्यान दीजिए। कितने ही विधानसभा के, संसद के उम्मीदवारों को निशाना बनाकर उनकी हत्याएं की गयीं। दुकानें जलायी गयीं, मकानों को जलाकर राख कर डाला गया। जीवित व्यक्तियों को जलाकर मार डाला गया। जिधर देखो उधर ही भय, आतंक का वातावरण व्याप्त है। समझ में नहीं आता देश किधर जा रहा है? समाज में जीवन-मूल्य क्यों स्खलित हो रहे हैं? क्यों आतंकवाद का दमघोटू पंजा सबकी ओर बढ़ता जा रहा है? भारत की यह पहचान नहीं। भारत की अस्मिता अहिंसा में निहित है, अपरिग्रह की भावना में परिव्याप्त है। धर्म की श्रेष्ठता इसमें है कि हमारी वाणी से, विचार और कर्म से किसी को कष्ट न हो। लेकिन हम श्रेष्ठ धर्म का स्वरूप भूल बैठें हैं। स्वार्थ, मोह, अहंकार, अर्थसंग्रह में इतने अंधे हो गये हैं कि सद्मार्ग दिखायी ही नहीं पड़ता। विवेकशील तथा ज्ञानी होने का सार यही है कि हम किसी प्राणी की हत्या न करें, किसी का अहित न करें, न अहित करने का भाव मन में रखें।

कुछ वर्ष पूर्व रूस के राष्ट्रपति गोर्बाच्येव भारत आये थे। उस समय दस सूत्री "दिल्ली घोषणा पत्र" तैयार किया गया, जिसमें दो सूत्र मुख्यतः अहिंसा पर केन्द्रित थे। वे थे —(१) अहिंसा को सामाजिक जीवन का आधार बनाना (२) अहिंसक विश्व का निर्माण करना। सिद्धांतों का बखान करना, उनका घोष-पत्र तैयार करना बुरा नहीं, अच्छा है और आसान भी है। कठिन है उनको जीवन में उतारना, उनको व्यावहारिक रूप प्रदान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना। महावीर ने अहिंसा की स्थूल नहीं, सूक्ष्म व्याख्या की है। प्राणिमात्र का हनन न करना ही उनकी दृष्टि में अहिंसा नहीं, वरन् किसी को हाथ, पैर, जबान, आंख से कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है। मन में किसी के प्रति वैर-भाव, ईर्ष्या, क्रोध का भाव न आने देना अहिंसा है। इस प्रकार तीर्थंकर महावीर की अहिंसा की भूमि अत्यधिक विशाल तथा विशद है, विस्तृत है। आज हमें उसी भूमि का संस्पर्श कर अपने जीवन को शुद्ध बनाना है, मोक्षोन्मुखी करना है।

हिंसात्मक वृत्ति के विस्तार ने जन-मानस को भयाकुल बना रखा है। किराए के हत्यारों द्वारा सुनियोजित रूप से लोगों की हत्याएं करायी जाती हैं। जुलूस पर पत्थर बरसाए जाते हैं, लोगों को हिंसा करने पर उकसाया जाता है। धर्म का, मंदिर-मस्जिद का नाम लेकर लोगों को लड़ाया जाता है। राजनीति में धर्म को दाखिल करना खतरनाक होता है, इसके दुष्परिणाम हम देख चुके हैं। यदि अब भी पहले की गयी गलती से सबक नहीं सीख लें तो यह बुद्धिमानी नहीं होगी। धर्म का राजनीति से क्या लेना-देना? हमें राजनीति को धर्म सम्मत न बनाकर नीति सम्मत, नैतिकतापूर्ण बनाना चाहिए। हमारा जीवन नैतिकता की सुगंध से खाली है इसलिए उसमें प्रेम, स्नेह, करुणा, सौहार्द, सहिष्णुता, समानता की खुशबू नहीं आती। आज आदमी की हत्या करना जितना सरल है शायद उतना सरल और कोई काम नहीं। धन-लोलुप हत्यारे जब चाहें, और जिसे चाहें मार सकते हैं, दिन दहाड़े मारते भी हैं। राजनीति से प्रेरित हत्याएं हमारे समाज तथा देश के भविष्य को अंधकार की ओर ले जाने वाली हैं, इस समस्या पर अभी तक सरकार ने, प्रशासन ने, विधिवेत्ताओं तथा समाजसुधारकों ने गम्भीरता से नहीं सोचा। सोचना पड़ेगा, गहरे जाकर चिंतन करना पड़ेगा। अहिंसा का वर्चस्व खत्म हो गया तो समझ लीजिए गंगा भारत से लुप्त हो जायेगी। हमें अपने देश की एकता, अखण्डता तथा स्वतंत्रता को बनाए रखना होगा जिस कारण आज हिंसा का लावा उमड़ रहा है, उसे हर स्तर पर रोकना पड़ेगा, सख्ती से कदम उठाने पड़ेंगे। समाज में रहने से कलह, संघर्ष का होना स्वाभाविक है लेकिन आदमी का स्वभाव शान्ति और प्रेम का होता है, हत्या करने का नहीं होता। यदि ईर्ष्या-द्वेष के कारण कुछ थोड़ा-बहुत मन-मुटाव भी हो जाए तो कोई बात नहीं, इतना अधिक न हो कि खून-खराबे की नौबत आ जाए बस इस हद तक हो कि हमारी आगे भी बोल-चाल बनी रहे—

दुश्मनी जमकर करो मगर इतनी गुंजाइश रहे,
जब कभी हम दोस्त हों, मिलकर शर्मिन्दा न हो।

हमारा पर्यावरण प्रदूषित है। पृथ्वी, जल, हवा, वनस्पति सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदूषण से आक्रान्त हैं। प्रदूषण का प्रकोप भी हिंसाजनित है। जहां मनुष्य अपने अस्तित्व के साथ वनस्पति का, पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं का, पक्षियों का अस्तित्व भी स्वीकारता है, उनके साथ सद्व्यवहार करता है, उनका संरक्षण करता है वहां मनुष्य तथा प्रकृति में सन्तुलन बना रहता है। प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन बिगड़ने का अर्थ है प्रदूषण। जहां प्रकृति तथा मनुष्य में संतुलन बिगड़ता है वहां हिंसा का रूप देखा जा सकता है। वृक्षों—वनों के संरक्षण का दावा सरकार खूब करती है, लेकिन उनकी कटाई बन्द नहीं हुई। जब वृक्ष-वन काटे जाते हैं तो उससे हमारा पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित होता है। क्या जीव-जन्तुओं के विश्रामस्थलों को नष्ट करना हिंसा नहीं? पक्षियों के, पशु-शावकों को कष्ट पहुंचाना हिंसा नहीं तो और क्या है? हम जब धर्माचरण की बात करते हैं तो बाह्याडम्बरों में उलझे रहते हैं, कितने लोग हैं जो धर्म के आन्तरिक रूप को त्याग, तप को, सेवा-भाव को अंगीकार करते हैं। हम दूसरों से लेने में, छीनने-झपटने में सुख-आनन्द महसूस करते हैं, आत्मतृप्ति महसूस करते हैं। मानवेतर जीव-धारियों की सेवा करने का व्रत लेकर अहिंसा-धर्म का अनुपालन करना हम भूल गये हैं। अब तो मनुष्यों को रिश्वत देकर सेवा की जाती है, करायी जाती है। भ्रष्टाचार ने समाज को पतित कर डाला है। नौकरियों की प्राप्ति रिश्वत के बूते पर सहज हो गई है। एक स्कूल में ट्रेंड ग्रेजुएट के पद के लिए चालीस हजार रु० दान दिया जाता है। ऐसा एक नहीं, कई संस्थाओं में देखा जा सकता है। यह भ्रष्टाचार आर्थिक हिंसा है, यही परिग्रह कहा जायेगा। अर्थतंत्र का साम्राज्य है सर्वत्र और अर्थ के पीछे सभी परिक्रमा करते हैं; हम हमारे जीवन-मूल्य अर्थ के पीछे मूक बने चलते रहते हैं। अहिंसा जीवन में उतारने का, व्यवहार में लाने का सिद्धान्त है, इसे शास्त्रों-आगमों या वाणी का विलास नहीं माना जा सकता। हमारे जीवन को शान्तिमय बनाने के लिए, विश्वशान्ति की प्राप्ति के लिए अहिंसा के अलावा दूसरा मार्ग नहीं। खाड़ी-युद्ध ने जो विनाश-लीला की है वह सुविदित है। ऐसा विध्वंस तो द्वितीय विश्वयुद्ध में भी नहीं हुआ होगा जहां एक दिन में सैंकड़ों वायुयान हजारों बम गिराएं तो वहां के विनाश की सहज ही कल्पना की जा सकती है। हिंसात्मक प्रवृत्ति का ही परिणाम था यह युद्ध। अनेकान्त दृष्टि या वैचारिक अहिंसा से काम लिया जाता तो युद्ध से जरूर बचा जा सकता था।

भारतीय धर्मों में अहिंसा की महत्ता का सर्वत्र प्रतिपादन किया गया है। अधर्म को, अन्याय को, अत्याचार को नष्ट करने के लिए हिंसा का सहारा भी लिया गया है। रामायण, महाभारत में राक्षसों को, अत्याचारियों को, अन्याय करने वालों को मारने को उचित ठहराया गया है। ऋग्वेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०/१५२/३) में भी यही स्वर अनुगुंजित है। भारतीय संस्कृति में युद्धों का एक लम्बा इतिहास है। ये युद्ध शत्रु पर विजय पाने के उद्देश्य से लड़े जाते थे उनमें घोर नरसंहार होता था। युद्ध परम्परा मानव-इतिहास का अविभाज्य अंग है। ये युद्ध सभी बाह्ययुद्ध हैं। दूसरों को पराजित करने के उद्देश्य से लड़े गये। महावीर, गौतम, गांधी के युद्ध आन्तरिक युद्ध थे, अपने पर विजय पाने के उद्देश्य से लड़े गये थे। वर्धमान 'महावीर इसी कारण बने कि उन्होंने अपना आन्तरिक वीरत्व प्रकट किया। वे वीर थे, लेकिन स्व पर विजय पाकर महावीर बने। भारत की अस्मिता इसी वीरत्व में है, आंतरिक वीरत्व में है। अपने राग-द्वेष पर, काम-क्रोध पर, ईर्ष्या, मोह पर विजय पाना ही सच्ची विजय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर और कबीर की अहिंसादृष्टि

महावीर और कबीर—दोनों का व्यक्तित्व बड़ा ही क्रान्तिकारी था। दोनों रूढ़ियों, आडम्बरों और कर्मकाण्ड के विरुद्ध थे, जाति-भेदभाव के विरोधी थे और मानवता की एकता में विश्वास करते थे। महावीर अहिंसा के महान् उपदेष्टा थे। उनकी अहिंसा दृष्टि बहुत व्यापक है। उसमें मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी सम्मिलित हैं। महावीर प्राणीमात्र के प्रति अहिंसाभाव, दयाभाव तथा करुणा भाव रखते थे। अपने ऊपर उन्होंने अनेक परीषह और उपसर्ग सहन किये, परन्तु कभी किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया। महावीर समता-पथ के पथिक थे, वहां सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाता था। आत्मौपम्य दृष्टि सम्पन्न थे महावीर। फिर वहां चाहे चण्डकौशिक विषधर हो या कोई दुर्दैत्य हो या कोई ग्वाला। उनके हृदय में कभी किसी के प्रति कोई द्वेष, घृणा नहीं थी। वह तो राग-द्वेष, घृणा-क्रोध, मोह-माया सबसे ऊपर उठ चुके थे। वे पूर्णतः जितेन्द्रिय थे, जिनेन्द्र थे, वीतरागी और स्थितप्रज्ञ कर्मवीर थे। उन्होंने अहिंसा को केन्द्र में रखकर अपने उपदेश दिये हैं।

जीवन में अहिंसा के फूल खिलें, अहिंसा की सुगन्ध से कोना-कोना महके तो यह संसार, यह धरती स्वर्ग बन सकती है। सभी धर्म-ग्रन्थों में अहिंसा की महिमा का आलोक पन्ने-पन्ने पर बिखरा है। सन्तों की वाणी अहिंसा की वाणी होती है, उनका लोकाचार अहिंसामय होता है। महाभारत में कहा गया है[1]—

'अहिंसा परम धर्म है, परम दान है, परम दम है, परम यज्ञ है, परम सुख है, परम तीर्थ है। वास्तव में प्राणीमात्र पर दया-भाव रखने वाला और मांस न खाने वाला व्यक्ति ही दीर्घायु को प्राप्त होता है, वही निरोग तथा सुखी रहता है।' महावीर ने अपने पांच अणुव्रतों-महाव्रतों में अहिंसा को सर्वोपरि स्थान दिया है। अहिंसा में जैनधर्म की सकल अर्थवत्ता तथा मूल्यवत्ता समाहित है। महावीर-धर्म की आधारशिला अहिंसा है। यही मनुष्य का स्वधर्म है, आत्मा की यही अनुत्तरावस्था है। महावीर ने अहिंसा को धर्म का प्रथम लक्षण कहा है और तितिक्षा या सहिष्णुता को दूसरा लक्षण बताया है। यथा—

---

१. महाभारत, अनुशासन पर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा लक्षणोधर्मस्तितिक्षालक्षणस्तथा ।
यस्य कष्टे धृतिर्नास्ति, नाऽहिंसा तत्र सम्भवेत् ।।

जो व्यक्ति अहिंसा को जानता है वह दूसरों को कष्ट न पहुंचा कर स्वयं अनेकों कष्टों, परीषहों को सहन करता है। वह सदा अप्रिय तथा कटु वचनों को सहन करता है, प्रिय तथा अप्रिय दोनों उसके लिए समान होते हैं। अहिंसक व्यक्ति की दृष्टि समदृष्टि होती है। यथा—

अप्रिया सहते वाणीं, सहते कर्म चाप्रियम् ।
प्रियाप्रिये निर्विशेषः समदृष्टिरहिंसकः ।।

भगवान् महावीर कहते हैं कि मनुष्य के ज्ञानी होने का सार यह है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। अहिंसामूलक समता ही धर्म है।

एयं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचण ।
अहिंसासमयं चेव, एयावंतं वियाणिया ।।

कबीर एक वैष्णव सन्त थे। वह अहिंसा के प्रचारक और मांसाहार के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने हिन्दु-मुसलमान दोनों की हिंसा-भाव की खुल-कर निन्दा की है। एक स्थान पर वे कहते हैं—

मांस मांस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय ।
आंख देखि जे खात हैं, ते नरकहिं जाय ।।
बकरी पाती खात है ताकी काढी खाल ।
जो नर बकरी खात है ताको कौन हवाल ।।
दिन भर रोजा रहत हैं, राति हनत है गाय ।
यह तो खून वह बंदगी कैसे खुशी खुदाय ।।

कबीर ने बुराइयों, पाखण्डों, हिंसा-भाव एवं मिथ्याडम्बरों का डट कर विरोध किया। हिन्दू समाज में प्रचलित कर्मकाण्ड तथा बलिप्रथा उन्हें प्रिय नहीं थी। अस्पृश्यता के वे विरोधी थे। वे जात-पात को नहीं मानते थे।

महावीर और कबीर ने आत्मजागृति पर बल दिया है। वे आत्म-शुद्धि तथा आत्म-प्रकाश द्वारा मनुष्य को अज्ञानांधकार से, कुवृत्तियों से, लोभ तृष्णा से, आसक्ति से ऊपर उठाना चाहते थे। 'पापी पूजा बैसि करि भखै मांस मद दोई' जैसी बात कबीर के अहिंसामय हृदय से ही निकल सकती थी। वह वैष्णव धर्म-मार्ग के पथिक थे, किसी प्राणी को कष्ट देना उन्हें प्रिय नहीं था। वे तो सदा दूसरों के मार्ग को फूलों से भर देना चाहते थे। वे बुराई का बदला भी भलाई से देते थे यथा—

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल ।
तोहि फूल के फूल हैं, वाको है तिरसूल ।।

उन्होंने किसी को कष्ट देने की बात नहीं सोची, सदैव प्रिय वचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोलने का आदेश दिया। प्रिय वचन बोलना भी अहिंसा है, प्रियवचन औषधि का काम करते हैं, जबकि कटु वचन तीर, शल्य के समान घाव करने वाले होते हैं—

मधुर वचन है औषधी, कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल शरीर॥

कबीर जब 'प्रेम के ढाई आखर' पढ़ने की बात कहते हैं तो भी अहिंसा भाव को प्रकट करते हैं। वे किसी भी रूप में तन-मन-वचन से किसी को कष्ट देना नहीं चाहते। महावीर की अहिंसा की भावना को कबीर ने पूर्णतः आत्मसात् किया था। कबीर जब कहते हैं—

१. सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
२. दोष पराये देखि कै, चले हंसत-हंसत।
३. अपने याद न आवई जिनका आदि न अन्त।
४. लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।

यहां सर्वत्र महावीर की अहिंसा-दृष्टि से लेकर अपरिग्रह दृष्टि की स्पष्ट छाप नजर आती है।

महावीर ने कहा कि जीव का वध करना अपना ही वध करना है, जीवों पर दया करना अपने पर दया करना है। जैसे दुःख तुम्हें प्रिय नहीं वैसे ही किसी प्राणी को दुख प्रिय नहीं, अतः सब पर आत्मौपम्य दृष्टि रखकर दयाभाव रखना चाहिए। यथा—

जीव ही अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ।
ता सव्व-जीवहिंसा परिच्चत्ता अत्तकामेहिं॥
जह ते न पिअं दुक्खं जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं।
सव्वायरमुवउत्तो अत्तोवम्मेण कुणसु दयं॥

महावीर ने रागादि की अनुत्पत्ति को अहिंसा और रागादि की उत्पत्ति को हिंसा माना है। मैं समझता हूं यही अहिंसा की मूल भावना है, यानी राग हिंसा है, विराग अहिंसा है। राग या आसक्ति ही हिंसा है, यही परिग्रह है। परिग्रह में हिंसा है क्योंकि उसमें राग है, मूर्च्छा है।

ममत्वं रागसम्भूतं वस्तुमात्रेषु यद् भवेत्।
सा हिंसाऽऽसक्तिरेषैव जीवोऽसौ वध्यतेऽनया॥

हिंसा तीन प्रकार की माना गई है—आरम्भी, विरोधी और संकल्पी। कृषि, रक्षा, व्यापार शिल्प तथा जीविका के लिए की गई हिंसा कोआरम्भी हिंसा कहते हैं। गृहस्थ इस हिंसा से बच नहीं सकता। चूंकि कर्म से मुक्त होना मुश्किल है, इसलिए कर्म के साथ हिंसा तो रहेगी ही। लेकिन गृहस्थ को मांस, शराब अण्डे आदि से बचना चाहिए। 'विरोधी-हिंसा' में आक्रमणकारी का बल-पूर्वक विरोध किया जा सकता है। यह मान्य है कि मनुष्य को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आक्रमण नहीं करना चाहिए। आक्रान्ता होना क्षम्य नहीं, लेकिन यदि कोई आपके देश पर आक्रमण करता है, शत्रु देश-सीमा पर अतिक्रमण करता है, चोर-डाकू हमारे घर में बलपूर्वक घुसता है तो हमें उसको रोकना चाहिए। असल में हिंसा तो राग-द्वेष-जनित होती है, इसी को 'संकल्पी-हिंसा' कहा जाता है। महावीर ने इसी प्रकार की हिंसा को गृहस्थ या श्रावक के लिए पाप माना है। हिंसा से यथासम्भव बचना सभी के लिए आवश्यक है।

कबीर ने काम, क्रोध, लोभ से सावधान रहने का बार-बार आदेश दिया है—

१. काम, क्रोध, लोभ, मोह बिबरजित हरिपद चीन्है सोई।

२. काम, क्रोध, तिसनां के मारे बूडि मुएहु बिनु पानी।

वे आगे कहते हैं कि ऐसा साधु बनने का क्या लाभ, जो अपनी वाणी पर भी नियंत्रण न रख सके। वाणी द्वारा दूसरों की हिंसा करने वाला साधु-सज्जन नहीं कहा जा सकता—

साधु भया तो क्या भया, बोलै नांहि विचारि।
हतै पराई आत्मा, जीभ बांधि तरवारि॥

मनुष्य को समस्त प्राणियों के प्रति दयालु रहना चाहिए। किसी रूप में कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए। निरवैर, निरहंकारी रहना ही अहिंसक होना है, संत या सज्जन होना है। यथा—

निरबैरी निहकामता, सांई सेती नेह।
विखया सौ न्यारा रहे, संतनि का अंक एह॥

कबीर कहते हैं कि दूसरों की हिंसा करके अपने को पालना जीवन की निष्फलता है। मनुष्य से उसके द्वारा की गई जीव-हत्या का जब लेखा-जोखा मांगा जायेगा तब कौन उसकी रक्षा करेगा? कौन उसके पापों का भागी बनेगा? जीव-हत्या हिंसा है, अधर्म है, इसका लेखा-जोखा तो व्यक्ति को स्वयं देना होगा ही। यथा—

जीअ जू मारहि जोर करि कहते हैं जु हलाल।
जब दफ्तरि लेखा मांगि है तब होइगा कौन हवाल॥
जोर किया सो जुलुम है लेई जवाब खुदाई।
दफ्तरि लेखा नीकसै मारि मुहैमुहि खाई॥

कबीर ने मांस का क्रय-विक्रय करने, जीव-हत्या करने को महापाप माना है। उन्होंने चींटी से हाथी तक को ईश्वर का प्राणी मानकर सब पर दया करने का उपदेश दिया है। ईश्वर को तो अपने सभी प्राणी प्रिय हैं, जो इन प्राणियों को कष्ट देगा या उनकी हत्या करेगा, उसकी कभी मुक्ति नहीं होगी। यथा—

"सबै जीव सांई के प्यारे उबरहुगे किस बोलै।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर अहिंसा-धर्म के प्रवर्तक हैं और कबीर ने भी इसी अहिंसा धर्म को अपने जीवन में भली-भांति उतारा था। वह एक मुस्लिम परिवार में पालित-पोषित थे परन्तु जीव-हत्या को, हिंसा को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने काम, क्रोध, तृष्णा मोह आदि विकारों को नष्ट करने या इन्द्रिय-निग्रह करने की जो बात कही उसके पीछे भी उनकी अहिंसा भावना छिपी हुई है। आज के सन्दर्भ में महावीर और कबीर की अहिंसा भावना मानव जाति का कल्याण करने वाली है, इसमें कोई संदेह नहीं। क्योंकि सकल संसार आज हिंसा की लपटों में घिरा है। महावीर एवं कबीर जैसे संतों की अहिंसा उन लपटों को पल भर में शान्त कर सकती है। महावीर ने तो हमेशा यही उपदेश दिया है कि किसी जीव का हनन नहीं करना चाहिए। यह सब तीर्थंकरों का भी अमृतोपदेश है—

अतीतैर्भाविभिश्चापि वर्तमानैः समैर्जिनैः।
सर्वे जीवा न हन्तव्या, एष धर्मो निरूपितः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कबीर की शाकाहारी दृष्टि

कबीर (१३९८-१४९५) वैष्णव स्वभाव के कवि थे। अन्य संतात्माओं के समान वे भी पूर्ण अहिंसा में विश्वास रखते थे। जीवों पर दया करना, उन्हें किसी प्रकार को कष्ट न देना कबीर की प्रकृति में शामिल था। उन्होंने भले ही किसी पाठशाला में विधिवत् शिक्षा नहीं पायी; लेकिन उनके अनन्त ज्ञान का सागर बड़े-बड़े विद्वानों, पण्डितों को चुनौती देता है। किसमें इतनी सामर्थ्य है जो उसका संतरण कर सके? उनकी अपरिग्रही दृष्टि और अहिंसाप्यायित प्रकृति उन्हें महावीर का अनयायी सिद्ध करती है। वे जन्मना जैनी न सही, कर्मणा जैनी अवश्य थे। महावीर ने अपनी प्रथम देशना में कहा था कि जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है, वही सत् है—**'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्'** (तत्त्वार्थसूत्र ५-३०)। संसार की प्रत्येक वस्तु स्वभावतः परिवर्तनशील है, वह क्षण-प्रतिक्षण बदलती रहती है। सत् का पूर्णतः विनाश नहीं होता। परिवर्तन असत् का होता है, उसका उत्पाद नहीं होता। वस्तु के मूल-रूप में परिवर्तन नहीं होता। जड़ को चेतन का रूप नहीं दिया जा सकता। संसार नित्य परिवर्तनशील है—**'सम्यक् सरति इति संसार'**। जैनदर्शन में संसार की अनित्यता का विशद वर्णन किया गया है, इसी को 'अनित्याशरण संसार' कह कर अनुप्रेक्षा का एक रूप माना गया है। कबीर बार-बार संसार की, प्राणी की अनित्यता का बखान करते रहे हैं—

जे ऊग्या सो आंथवे, फूल्या सो कुम्हलाय।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाय॥
जो पहर्या सो फाटिसी, नांव धर्या सो जाइ।

जो इस नश्वर संसार में उदित होता है, उसका अस्त होना अनिवार्य है। जो फूल खिलता है वह अवश्य मुरझाता है। जिस भवन का निर्माण होता है एक दिन वह विध्वंस को प्राप्त होता है। जिस नवीन वस्त्र को आज धारण करते हैं, वह दूसरे दिन फट जाता है, यही संसार की अनित्यता है। कविवर पन्त ने भी इसी अनित्यता को निम्न पंक्तियों में शब्दायित किया है—

यही तो है असार संसार,
सृजन, सिचन, संहार!
आज सर्वोन्नत हर्म्य अपार,
रत्न दीपावली मंत्रोच्चार,
उलूकों के कल मग्नविहार,
झिल्लियों की झनकार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ ने कहा है—'मन पर मैल तब जमता है जब हम अनित्य को नित्य मान कर चलते हैं, संयोग को शाश्वत और विजातीय को सजातीय मान कर चलते हैं। हम इस बात को सिद्धांत से और व्यवहार से भी जानते हैं कि पदार्थ अनित्य है, संयोग अनित्य हैं। जो पदार्थ प्राप्त है वह अवश्य नष्ट होगा।' यह अनित्यता का बोध मनुष्य को नित्यता की ओर उन्मुख करता है। कबीर भी उसी अनश्वर परमात्मा की शरण में जाने का आह्वान करते हैं और सदैव शुद्धाचरण पर बल देते हैं, आत्मीयता का, नम्रता का, निष्परिग्रह का सदुपदेश देते हैं।

कबीर ने उस हिन्दू की, उस मुसलमान की खुल कर निन्दा की है, जो सात्त्विक आचरण नहीं करता, जिसमें अहंकार है, पाखण्ड है, निर्दयता है। वे वासना के परिष्कार पर बल देते हैं, इन्द्रिय-निग्रह का मार्ग दर्शाते हैं। हिन्दू व्रत रखता है, अन्न का त्याग करता है; लेकिन मन पर, रसना पर नियंत्रण वह नहीं रख पाता और एकादशी का व्रत फलाहार (दूध, सिंघाड़ा) से करता है। मुसलमान भी रोजा रखते हैं, लेकिन रोजा इफ्तार करते समय मुर्गे का मांस खाते हैं—

रोजा तुरुक नमाज गुजारे बिसमिल बांग पुकारै।
उनको भिस्त कहां ते होइहै सांझै मुरगी मारै॥

कबीर सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्दृष्टि की, निर्मल दृष्टि की बात करते हैं। मांसाहार की निन्दा कबीर बार-बार करते हैं। वे नहीं चाहते कि कोई किसी जीव की हत्या कर उसका मांस खाये। एक स्थान पर वे कहते हैं—

तुरकी धरम बहुत हम खोजो, बहु बजगार करै ए बोधा।
गाफिल गरब करै अधिकारी, स्वारथ अरथि बधै ए गाई॥

व्यक्ति एक ओर धर्म की बात करता है, दूसरी ओर मिथ्याचरण करता है। निज स्वार्थार्थ, स्वादार्थ गौ की हत्या करता है, गौ की हत्या करके बकरी का खारा दूध पीने वाला मूर्ख, मंदबुद्धि, अज्ञानी नहीं तो और क्या है? अहिंसा महाव्रत का पालन साधु-वर्ग करता है, अहिंसाणुव्रत का पालन श्रावकगण करते हैं। कबीर नहीं चाहते कि छोटे-से-छोटे जीव की भी कोई हत्या करे। पूजा-सामग्री में फूल चढ़ाते समय लोग जीव-हत्या करते हैं, मन्दिर के बनवाने में भी असंख्य जीवों की हत्या होती है। कबीर की अहिंसामय दृष्टि देखते ही बनती है—

अरु भूले षट्दरसन भाई, पाखंड भेस रहे लपटाई।
जैन बोध अरु साकत सैं ना, चारबाक चतुरंग बिहूना।
जैन जीव की सुधि न जानै, पाती तोरि देहुरै आनै।
दोना मवरा चंपक फूला, तामैं जीव बसैं कर तूला॥
अरु प्रिथमीं का रोम उपारै, देखत जीव कोटि संघारै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाय के विषय में कबीर कहते हैं कि गाय घास खा कर, जल पी कर, बछड़े के लिए दूध देती है। बछड़ा सिर मार कर गाय को कष्ट दे कर दूध पीता है। उधर मनुष्य बछड़े को दूध न दे कर खुद ही पी जाता है। इस प्रकार गाय को शक्तिहीन बना देता है। गाय के चमड़े का जूता, मशक तक बनाने से वह नहीं चूकता। मनुष्य के इस मिथ्याचार पर उन्होंने तीव्र व्यंग्य किया है।

कबीर के सामने सकल समाज था; हिन्दू, मुसलमान, जैन, ब्राह्मण सभी थे। वे जिसमें कुछ कदाचार/पापाचार देखते, खुल कर कहते। बड़े ही 'बलंट' थे कबीर। काजी और जैन साधु के विषय में उनकी यह 'रमैनी' देखने योग्य है—

काजी सो जो काया विचारै, तेल दीप मैं बाती जारै।
तेल दीप मैं बाती रहै, जोति चीन्हि जे काजी कहै॥
मुलनां बंग देइ सुर जानीं, आप मुसला बैठा तानीं।
आपुन मैं जे करै निवाजा, सौ मुसलमां सरबत्तरि गाजा॥
जोगी भसम करै मौ मारी, सहज गहै बिचार बिचारी।
अनभै घट परचा सूं बोलै, सो जोगी निहचल कदे न डोलै॥
जैन जीव का करहु उबारा, कौण जीव का करहु उधारा।

काजी वह कहलायेगा, जो शरीर-रूपी दीपक में परमात्मा की स्नेह-वर्तिका रख कर अलख ज्योति को पहचानने में ज्योतिर्मय परमात्मा को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। बिना अर्थ हृदयंगम किये कुरान का पाठ करने वाला मनुष्य काजी नहीं कहला सकता। जिसका रोम रोम परमात्मा के नाम से स्पंदित होता है, वही काजी है। जो निर्भय है, समता-भाव में रहता है, वही सच्चा योगी है। उस व्यक्ति को कबीर जैन साधु मानने को तैयार हैं, जो जीवों की रक्षा करता है, जीवों पर उपकार करता है। जीवों की रक्षा करना उन्हें, सुख-शांति पहुंचाना, उन्हें निर्भयता प्रदान करना जैन साधु का, सभी मनुष्यों का परम धर्म है। कबीर ने समता की बात कहकर यह दर्शाया है कि मनुष्य अपने प्राणों के समान दूसरों के प्राणों को भी समझे। संसार में कौन ऐसा प्राणी होगा, जो सुख प्राप्त करना नहीं चाहता? मरने से सब दुःखी होते हैं, इसलिए हम किसी जीव के प्राण क्यों हरें? भगवान् महावीर कहते हैं, 'कोई दुःख नहीं चाहता; इसलिए किसी को दुःख मत पहुंचाओ। इसी दयाभाव को अहिंसा कहते हैं। तुम्हें इतना समझ लेना ही काफी है। अहिंसा के लिए समता और समता के लिए अहिंसा का ज्ञान आवश्यक है; यही मानव-ज्ञान की अर्थवत्ता है।' समता जैनधर्म की रीढ़ है, उसका मेरुदण्ड है। आज यदि हम संसार की समस्याओं का निदान खोजना चाहें तो उसे समता में खोजना चाहिये। जो भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतंकवाद है, हिंसा-उपद्रव है, सांप्रदायिकता है, सबको समता की नदी बहा कर ले जा सकती है, उन्हें दूर फेंक सकती है। भगवान् महावीर तो जीवन-भर समतायुक्त आचरण करते रहे, समता की साकार प्रतिमा बने रहे।

भला अपना जीवन किसे प्रिय नहीं, सुख कौन नहीं चाहता? हमें फिर क्या अधिकार है दूसरे के प्राण लेने का? अब तो अनेक देश फांसी की, मृत्यु-दण्ड की सजा को अमानवीय कह कर उसका निषेध कर रहे हैं। दया, ममता, सहानुभूति मानवीय गुण हैं, इनमें हमारे जीवन-मूल्यों की सुगन्ध भरी पड़ी है। दोस्तोयवस्की ने कहा है कि दयाभाव सर्वोत्तम गुण है, मानव-जीवन का एकमात्र सिद्धांत, नियम है। हम इस एक नियम को भी अपने जीवन में नहीं उतार सके! आज संसार के सभी देश आतंकवाद, हिंसावाद के कैंसर से पीड़ित हैं। संसार विनाश की ओर उन्मुख है, आंखों पर पट्टी बांधे वह सरपट दौड़ रहा है। मालूम नहीं उसका क्या अंजाम होगा? हम विश्व-शांति की चाह करते हैं; लेकिन चाह करने से कुछ नहीं होता, कुछ अमल करना होगा, अपने आपको पहचानना होगा। महावीर ने इसी का उपदेश दिया। 'महामानव महावीर' में डॉ० गुणवंत शाह ने ठीक लिखा है कि अहिंसा परम धर्म बन जाए, ऐसी अनुकूलता बढ़ते हुए औद्योगीकरण, प्रदूषण की समस्याओं, संतुलन की जरूरतों, ऊर्जा के संकट, बढ़ते हुए तनाव और सर्वनाश की आशंका के कारण बन रही है। महावीर की अहिंसा का ऐसा संदर्भ स्वीकार न करें तो दोष हमारा है। कबीर ने अपने शाकाहार-दर्शन में जिस बात की ओर संकेत दिया है, वह अहिंसा का ही तो उपदेश है। उनकी अहिंसा महावीर की अहिंसा है, भले ही उन्होंने जैनधर्म की शिक्षा न पायी हो; लेकिन इसमें संदेह नहीं कि कबीर का सम्पर्क जैन साधुओं से रहा है और उनकी दिनचर्या से, महाव्रतों से, आचार-विचार से वे जरूर परिचित रहे हैं। स्वभाव से कबीर भी महावीर के समान एक-स्थान-से-दूसरे-स्थान भ्रमण करते रहते थे। यायावर-वृत्ति थी उनकी; अतः उन्होंने जो काम, क्रोध, लोभ, मोह की निन्दा की है, इन्द्रियनिग्रह तथा अपरिग्रह का, अहिंसा का उपदेश दिया है, वह महावीर के विचार-दर्शन का ही प्रति-बिम्ब है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म में पर्यावरण की अवधारणा

विश्व में पर्यावरण को लेकर सभी देशों में एक चेतना पैदा हो रही है। चेतना है जल, वायु, ध्वनि, पृथ्वी की शुद्धि की। जहां तक पर्यावरण की शुद्धि का प्रश्न है, प्राणिमात्र के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। आज न जल शुद्ध मिल रहा है, न वायु शुद्ध मिल रही है। जिधर देखो धुएं के अम्बार लगे हुए हैं, जहरीली गैस हवा में घुली है। औद्योगिकीकरण के बढ़ते चरणों ने पानी तक को प्रदूषित कर रखा है, जिससे जलचर मरते जा रहे हैं। यह विनाश-लीला नदी-नाले, तालाबों के अशुद्ध, गैसमिश्रित जल में देखी जा सकती है। विज्ञान में पर्यावरण के लिए 'इकोलॉजी' शब्द आया है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रकृति के सभी पदार्थ एक-दूसरे पर निर्भर हैं, एक-दूसरे के पूरक हैं। वे 'इंटरडिपेंडेंट' हैं। जहां कोई एक पदार्थ प्रकृति के या अपने स्वभाव के विपरीत जाता दिखाई पड़ा कि प्रकृति में असन्तुलन पैदा हो जाता है, जो अतिवृष्टि, बाढ़, भूचाल, प्रचण्ड गर्मी आदि के रूप में भयानक हानि लेकर आता है। सभी वस्तुएं अपने-अपने स्वभाव में रहकर सक्रिय रहें, उनमें सामंजस्य तथा संतुलन बना रहे तो हमारा पर्यावरण खराब नहीं होगा। पर्यावरण का अर्थ है सह-अस्तित्व। सभी वस्तुएं एक-दूसरे की सहयोगी बनी रहें, सभी एक-दूसरे की परिपूरक बनी रहें।

अहिंसा का विज्ञान यही है कि संसार में सभी प्राणी जीना चाहते हैं मरना कोई नहीं चाहता, सब सुख प्राप्त करना चाहते हैं दुःख कोई नहीं चाहता। यानी सभी को इस संसार में जीने का हक है। हमें क्या जरूरत है अपने सुखार्थ दूसरे प्राणी की जान लेने की? हम यह क्यों भूल जाते हैं कि हमारे कारखानों, मिलों से जो गंदा, प्रदूषित जल या जहरीली गैस निकली है वह पशु-पक्षियों, मनुष्यों के लिए हानिकारक है। नदियों में इतना सड़ा जल बहकर आता है कि मछलियां मरी हुई ऊपर तैरती दिखाई देती हैं। १९८२ में भोपाल में जहरीली गैस के रिसने से बीस हजार से अधिक लोगों के मारे जाने, प्रभावित होने के समाचार मिले। अनेक तो जीवन भर के लिए अपंग हो गए, नेत्रों की ज्योति खो बैठे, मस्तिष्क विकृत हो गए। प्रकृति में संतुलन बना रहे, यही पर्यावरण है, फिर कोई आपदा नहीं आयेगी। उमास्वाति ने विज्ञान युग से पहले ही एक सूत्र **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** में लोगों को पर्यावरण की चेतना प्रदान की थी और उसे व्यापक आयामों में प्रस्तुत किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्टाकहोम कान्फ्रेंस में सन् १९७२ में पर्यावरण की ओर संसार के देशों का ध्यान आकृष्ट किया गया। भारत में पर्यावरण-विषयक कानून १९७४ में पारित हुआ, जिसे जल-शुद्धि का कानून कहा गया (जल-प्रदूषण की रोकथाम का कानून-प्रीवेंशन एण्ड कन्ट्रोल ऑन पोल्यूशन एक्ट)। दूसरा कानून वायु-शुद्धि को लेकर १९८१ में पास किया गया और पर्यावरण-विषयक चेतना को जनमानस में जगाने का काम सर्वप्रथम श्रीमती इन्दिरा गांधी ने किया। १९८६ में पर्यावरण सम्बन्धी सभी मुद्दों को ध्यान में रखकर 'एनवायरन्मेंट प्रोटेक्शन एक्ट' बनाया गया। अब तो भारत में पर्यावरण एवं वन्यप्राणी रक्षा नाम से एक स्वतंत्र मंत्रालय स्थापित हो गया है।

जब हम जैन तीर्थंकरों के चिह्नों को देखते हैं तो वहां भी हमें पर्यावरण की अनुभूति होती है। २४ तीर्थंकरों में १७ तीर्थंकरों के चिह्न पशु-पक्षी से जुड़े हुए हैं। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का चिन्ह बैल है। यह भारतीय कृषि संस्कृति का आधार-स्तम्भ है। यहां बैल से जुड़े घास के मैदान, साफ-स्वच्छ जल से भरे नदी-नाले, तालाब, हरी-भरी खेती सभी साकार हो उठते हैं। गज (अजितनाथ), अश्व (संभवनाथ), वानर (अभिनन्दननाथ), चकवा (सुमितनाथ), मकर (पुष्पदनाथ), गैंडा (श्रेयांसप्रभु), महिष (वासुपूज्य), शूकर (विमलनाथ), सेही (अनन्तनाथ), हरिण (शांतिनाथ), छाग (कुंथुनाथ), कच्छप (मुनि सुव्रत), सर्प (पार्श्वनाथ), सिंह (महावीर)। ये सभी चिह्न पशु-पक्षी से सम्बन्धित हैं। इनके अतिरिक्त लाल कमल (पद्मनाथ), तगर कुसुम (अरहनाथ), नीलोत्पल (नमिनाथ), शंख (नेमिनाथ) प्रकृति विषयक हैं, जहां सौन्दर्य है, शुद्ध वायु है, सुगन्ध है। शंख, कच्छप, मकर जल की शुद्धता की ओर संकेत करते हैं। चन्द्रमा (चन्द्रप्रभ) भी शीतलता, स्वच्छता, प्रकाश का प्रतीक है। ये सभी चिह्न प्रतीकात्मक हैं और पर्यावरण की शुद्धता का भान कराते हैं। पर्यावरण की अनुभूति जैन तीर्थंकरों को हजारों वर्ष पूर्व थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। यह पर्यावरण की अनुभूति ही थी, जिससे वन्यपशु, वृक्ष, वन सभी की सुरक्षा का ध्यान जैनधर्म में रखा गया है।

शाकाहार के पीछे पर्यावरण की चेतना छिपी है। मांसाहार के लिए पशु-पक्षी का हनन करना पड़ता है और ये पशु-पक्षी हमारे वातावरण को शुद्ध, पवित्र रखते हैं। कुछ जल को शुद्ध रखते हैं, कुछ वृक्षों-वनों की रक्षा करने का सद्ज्ञान हमें देते हैं। वन्यपक्षी हरे-भरे मैदानों, वनों में रहते हैं और वे तभी रहेंगे जब वन होंगे, वृक्ष होंगे। वनों से, वृक्षों से वायु शुद्ध मिलती है, वर्षा होती है, भू-स्खलन नहीं होता। पृथ्वी की उर्वरता बनी रहती है। दया की भावना हमें हिंसा से रोकती है और हमारे अन्दर आत्मीयता का भाव पैदा करती है। जब हम शाकाहार की बात करते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो प्रकृति के संरक्षण की बात करते हैं। पौष्टिक भोजन शाकाहार से मिलता है। कहा जाता है—जो शाकाहार करते हैं वे कैंसर से पीड़ित अपेक्षाकृत कम होते हैं। शाकाहार सात्विक भोजन है, सुपाच्य और स्वास्थ्यवर्धक है। जब शाकाहार का प्रचार-प्रसार किया जाता है तो उसके पीछे प्रकृति की सुरक्षा की भावना रहती है, संयम की भावना रहती है। पर्यावरण में संयम-संतुलन का रहना जरूरी है। असंयम के बढ़ने से संतुलन बिगड़ता है और उससे वायु जल, ध्वनि सर्वत्र प्रदूषण बढ़ने लगता है। महावीर ने इसीलिए संयम को धर्म, जीवन कहा है—**संयमः खलु जीवनम्**।

विश्व स्वास्थ्य-संगठन ने स्वास्थ्य की परिभाषा में कहा है कि शरीर के सम्पूर्ण भौतिक, मानसिक तथा सामाजिक क्षेम-कुशल को स्वास्थ्य कहते हैं; यह केवल निरोग या बलवान् होने का नाम नहीं है। जाहिर है इस निरोगता के पीछे संयम की भावना है—संयम खाने-पीने में, सोच-विचार में, सामाजिक व्यवहार में रहेगा तो कोई प्रदूषण किसी स्तर पर नजर नहीं आएगा।

जब शाकाहार की बात करते हैं तो यह ध्यातव्य है कि मांस उन्हीं पशु-पक्षी का खाया जाता है, जो शाकाहारी हैं। सिंह, बिल्ली कुत्ता आदि का मांस कोई नहीं खाता। अतः शाकाहार स्वाभाविक भोजन है। कहते हैं मनुष्य का विकास बन्दर से हुआ है। बन्दर को ही डार्विन ने अपने विकास-वादी सिद्धान्त का केन्द्र माना है यानी बन्दर ही विकास प्राप्त करते-करते मनुष्य रूप में परिवर्तित हुआ है। बन्दर स्वयं शाकाहारी पशु है अतः प्रकृति से मनुष्य भी शाकाहारी है। यह कहना कि मांसाहार अधिक पौष्टिक, संतुलित, प्रोटीन-विटामिन-युक्त होता है, सरासर अज्ञानता का सूचक है। दालों में, सोयाबीन में, मूंगफली में, सेव-संतरा में क्या कम प्रोटीन एवं विटामिन होते हैं? कहने की आवश्यकता नहीं कि शाकाहार पर्यावरण की सुरक्षा का बोध कराने वाला है। इससे जीवन में अनुशासन आता है। भोजन में भी यदि अनुशासन, संयम न रखा तो निश्चित रूप से हमारा अनिष्ट होगा।

जैन मनीषियों की दृष्टि में सात्विक आहार वह है, जो जीवन तथा अनुशासन में सहायक हो, जो मादक न हो, जो कर्त्तव्य-विमुख न बनाए। सात्विक आहार यानी सात्विक जीवन और सात्विक जीवन यानी पर्यावरण का शुद्ध-स्वच्छ होना।

पर्यावरण का सम्बन्ध अध्यात्म से भी है। किसी नदी के किनारे, वृक्ष के नीचे, वन-कन्दरा में हमारे ऋषि-मुनि ध्यान करते थे, आध्यात्मिक साधना में लीन रहते थे। प्राचीनकाल में हमारे यहां वृक्ष की पूजा की जाती रही है। कुछ वृक्षों, पत्तों, फलों, को हम देवता पर चढ़ाते रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविकुलाधर कालीदास ने आम्रमंजरी तथा शिरीष के फूल का खूब वर्णन किया है। 'कुमारसम्भव' और 'रघुवंश' में प्रकृति के इन रूपों की मोहक, जीवन्त अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। मुनि-आश्रमों में पशु-पक्षियों की देखभाल तो होती ही थी, वृक्षों-लताओं को भी जलादि से सींचकर उन्हें हरा-भरा रखा जाता था। कहते हैं—कश्मीर के 'नसीम बाग' (चिनारवाटिका) को दूध से सींचा जाता था। कण्व आश्रम में शकुन्तला का आंचल हिरण-शावक पकड़ लेता है, लताओं-वृक्षों से लिपटकर शकुन्तला रोती है। वे मानो उनकी सहेलियां हों! यह है प्रकृति का मनुष्य से सम्बन्ध। आचारांग (११३, शस्त्रपरिज्ञा) में मनुष्य और प्रकृति को समान-गुणसम्पन्न माना है। दोनों जन्मते, बढ़ते हैं, दोनों चैतन्ययुक्त हैं, दोनों छिन्न होने पर म्लान हो जाते हैं, दोनों आहार लेते हैं, दोनों अनित्य, अशाश्वत हैं, दोनों नाना अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं, दोनों उपचित-अपचित हैं। इसलिए वनस्पतिकायिक जीव को, प्रकृति को न स्वयं नष्ट करें, न दूसरों से नष्ट करावें, न नष्ट करने वालों का अनुमोदन करें। (आचारांग, शस्त्रपरिज्ञा, ११६)

जैन धर्म अहिंसावादी है अतः इसमें इकोलॉजी या पर्यावरण पर विशेष बल दिया गया है। आज हमारा पर्यावरण कई रूपों में असंतुलित एवं प्रदूषित हो रहा है। फ्रेडरिक स्मेटेसेक ने हाल ही में यह रहस्य उद्घाटित किया है कि हिमालय का तापमान आधा डिग्री सेंटिग्रेड बढ़ने के कारण हिमालय की तितलियां वहां से भागना शुरू हो गई हैं। (दैनिक हिन्दुस्तान टाइम्स, १५ अक्टूबर, १९८०)

प्रदूषण से बचने के लिए हम सभी को विभिन्न स्तरों पर सक्रिय, सावधान रहना चाहिए। प्रदूषण विश्व मानवता के विरुद्ध एक हमला है, ऐसा नार्वे की भूतपूर्व प्रधानमंत्री ग्रो हार्लेम ने इन्दिरा गांधी शान्ति पुरस्कार लेते हुए सितम्बर १९९० को अपने भाषण में कहा था। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने उस अवसर पर कहा था—'पर्यावरण पर आए विश्व-व्यापी संकट से निपटने के लिए विश्व-स्तर पर प्रयासों की जरूरत है, ऐसा कोई भी प्रयास तभी सफल होगा जब औद्योगिक रूप से विकसित और विकासशील राष्ट्र मिलकर प्रभावशाली कदम उठाएं। हम सबका अस्तित्व खतरे में है। अमीर और गरीब सभी को मिलकर विश्व पर्यावरण को बचाने का प्रयास करना चाहिए।'

विश्व पर्यावरण को बचाने के लिए हमें जैन धर्म की अहिंसा तथा अपरिग्रह की दृष्टि को अपनाना होगा। हमें वन्य पशुओं की हत्या से हाथ रोकना होगा और वृक्षों, वनों की अन्धाधुन्ध कटाई बन्द करनी होगी। हमारे हृदय में वृक्षों-वन्य प्राणियों के प्रति प्रेम-करुणा का, वत्सलता का भाव पैदा होना चाहिए। अपने को सम्पन्न बनाने के लिए हम प्रकृति को निर्धन बना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे हैं यह परिग्रह हानिकारक है, इसे त्यागना पड़ेगा। जैनधर्म इच्छाओं को सीमित करने का उपदेश देता है और वस्तुओं के संग्रह या परिग्रह को परिमाण में रखने की दृष्टि प्रदान करता है इसलिए प्रकृति की सम्पदा को सुरक्षित रखना होगा। हमारे औद्योगिक संस्थान प्रगति के सोपान होकर भी प्रदूषण के जनक हैं। मिलों-कारखानों से जो निरन्तर उत्पादन हो रहा है, उससे हमारे लिए सुख-सुविधाएं जुटाई जाती हैं। उनसे हमारी सम्पन्नता में वृद्धि होती है, लेकिन किसे मालूम नहीं कि परिग्रह वृत्ति ने हमारे लिए, अन्य प्राणियों के लिए कितनी समस्याएं पैदा की हैं। नदी-नालों में गले-सड़े चमड़े का अति हानिकारक गंदा जल बहता है। पानी में हानिकारक रासायनिक तत्त्व मिले रहते हैं। हमारी परिग्रहवृत्ति इसके लिए जिम्मेदार है। वनों-वृक्षों को काटकर हम अपनी संपन्नता को बढ़ा सकते हैं, लेकिन अनेक पशु-पक्षियों को अनिकेतन बना देते हैं, बेघर बना देते हैं यह हिंसा नहीं तो और क्या है? प्रकृति के बिना प्राणी कैसे रहेगा? सभी जीवों, प्राणियों के साथ एकात्मकता पैदा करना, उनके अस्तित्व को स्वीकार करना अहिंसा को व्यावहारिक रूप देना है। जब संयम की बात जैनधर्म में कही जाती है तो प्रकृति के संतुलन की बात आ जाती है। प्रकृति में असन्तुलन आना, पदार्थों की स्थिति में गड़बड़ी या असन्तुलन आना पर्यावरण की समस्या पैदा कर देता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यावरण-संतुलन और सह अस्तित्व

भारत के ऋषि एवं संतों का जीवन बड़ा ही सात्विक था। वे शाकाहारी थे। पर्यावरण शब्द से भले ही वे अपरिचित रहे हों, लेकिन माहौल को साफ-सुथरा रखना उन्हें प्रिय था। वे वनों, वृक्षों के महत्व को समझते थे। प्राचीन भारत में वृक्षों-वनों की रक्षा का दायित्व शासक तथा जनता—सब जानते और समझते थे। हमारे ऋषि-मुनि नदियों के तट पर कुटी आश्रम बनाकर रहते थे। बड़े-बड़े ऋषि आश्रम वनों में होते थे। वहां वृक्षों को काटना, आखेट करना निषिद्ध था। ऋषि आज्ञा के बिना आखेट करना वर्जित था। कण्वाश्रम में दुष्यन्त को मुनि-शिष्य शिकार खेलने से रोकते हैं। वहां शिकार खेलना, पशु-पक्षी की हत्या करना आश्रम की मर्यादा के प्रतिकूल था। दुष्यन्त ने राजा होते हुए भी आश्रम की मर्यादा का पालन किया।

हम प्रति वर्ष २२ अप्रैल को "वसुंधरा दिवस" या "प्रकृतिमाता दिवस" मनाते है। ५ जून को "पर्यावरण दिवस" मनाया जाता है। जुलाई में शजरकारी वनमहोत्सव, अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में वन्यपशु संरक्षण सप्ताह मनाया जाता है, लेकिन हमारे अन्दर अपने माहौल को साफ स्वच्छ करने की वह चेतना पैदा नहीं हो पाती, जिसकी अपेक्षा है। जब तक हमारा पर्यावरण साफ-सुथरा न होगा तब तक हमारा जीवन सुखमय नहीं हो सकता।

पर्यावरण पर विचार करते हुए हमें कई बातों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए—

१. जनसंख्या:-बढ़ती जनसंख्या ६ अरब से अधिक हो जायेगी और भारत की जनसंख्या एक अरब से ऊपर पहुंच गई है।

२ प्रदूषण:—यह कई रूपों में अपनी विनाशलीला दर्शा रहा है। जल, वायु, ध्वनि, पृथ्वी सर्वत्र प्रदूषण का कुराज्य छाया है। ऐसा लगता है, जैसे सुन्दर चेहरे पर चेचक के दाग निकल आए हों। हमारे यहां महानगरों (मेगा सिटिज) के अतिरिक्त कानपुर, पाली, बड़ौदा, धनबाद, कोरबा सहित १५ नगरों की विकट स्थिति बनी हुई है। बम्बई का चेम्बूर क्षेत्र प्रदूषण का पर्याय बन गया है।

३. संसाधनों का अपव्यय—वन-वृक्ष हो या कोयला, लोहा, तेल गैस हो, सभी का दोहन कर हम असंतुलन पैदा कर रहे हैं। इसका मूल्य मानवजाति को विनाश, विपदाओं के रूप में चुकाना पड़ेगा और पड़ा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. वनस्पति का वन्य प्राणियों का विनाश—औद्योगिक क्रान्ति से प्रदूषण का हलाहल निकल रहा है।

५. भू-स्खलन—इसके कारण वृक्षों, हरियाली का सफाया होता जा है। जगह-जगह कूड़ाकरकट पड़ा रहता है औद्योगिक प्रगति ने अपशिष्टों के अम्बार लगाकर, पानी में बहाकर पर्यावरण को गंदा बना दिया है। प्रदूषण का फंदा गले में डालकर मानवजाति मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव कर रही है, यह सर्वविदित है।

जैनधर्म में पर्यावरण पर विशेष ध्यान दिया गया है। श्रमण-श्रावक दोनों के धर्मों का वहां सम्यक् उल्लेख है। जल को छानकर पीने की पृष्ठभूमि के पीछे शुद्ध जल का प्रयोग करने की भावना है, साथ में अहिंसा की भावना भी विद्यमान है। यह समझा जाता है कि छानकर पानी न पीने से जीव हत्या होती है या होने की संभावना है, जल द्वारा सूक्ष्म कीटाणु पेट में जा सकते हैं। छानकर पानी पीना नीरोगता, अच्छे स्वास्थ्य की ओर प्रेरित होना है। हमारे औद्योगिक संयंत्रों ने जल को इतना अधिक प्रदूषित कर दिया है कि नदी, नालों, झीलों, तालाबों में जलचर मर जाते हैं। वह जल पीने में हानिकारक है। जलप्रदूषण हिंसाजनक है। साथ में असंख्य न्यूक्लियर परीक्षण भी जल को, वायुमण्डल को प्रदूषित करते हैं और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इस भयंकर स्थिति को देखते हुए यह कहने में कोई संकोच नहीं कि जल को छानकर उपयोग में लाने से बहुत हद तक जल-प्रदूषण से मुक्ति पायी जा सकती है।

पर्यावरण की चर्चा के साथ अहिंसा और दया की भावना भी सामने आती है। महावीर आत्मतुलवाद के प्रवर्तक थे। उन्होंने संयम, आचरण, करुणा, दया पर विशेष बल दिया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी पुस्तक "जैनधर्म : अर्हत् और अर्हंताएं" में एक स्थान पर लिखा है कि सृष्टि-संतुलन-शास्त्र आधुनिक विज्ञान के लिए विज्ञान की एक नई शाखा हो सकती है लेकिन एक जैन के लिए यह सिद्धांत ढाई हजार वर्ष पुराना है। सृष्टि-संतुलन का जो सूत्र महावीर ने दिया, वह आज भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा—जो पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के अस्तित्व को स्वीकार करता है, वह अपने अस्तित्व को स्वीकार करता है। अपने अस्तित्व के समान उनका अस्तित्व मानता है। हम इस तुला से तोलें तो न केवल अहिंसा का सिद्धांत ही फलित होता है अपितु पर्यावरण विज्ञान की समस्या को भी महत्त्वपूर्ण समाधान प्राप्त होता है। यह आवश्यक है—हम अहिंसा को केवल धार्मिक रूप में प्रस्तुत न करें। यदि उसे वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाए तो मानव जाति को एक नया आलोक उपलब्ध हो सकता है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'भगवान् महावीर ने पांच स्थावर-काय की जो बात कही, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्थावर जगत् के साथ एकात्मता की अनुभूति होनी चाहिए। जैसा हमारा अस्तित्व है वैसे ही सृष्टि का अस्तित्व है, वनस्पति आदि का अस्तित्व है। जैसे-जैसे यह अनुभूति स्पष्ट और प्रखर होती चली जाएगी वैसे-वैसे हमारी जागरूकता बढ़ती चली जाएगी। जागरूक चर्या का आधार है—पूरे प्राणी जगत् के साथ एकात्मता। केवल प्राणी जगत् के साथ ही नहीं, पुद्गल जगत् के साथ भी एक विशेष प्रकार की अनुभूति होनी चाहिए। एक निर्जीव वस्तु को भी बिना मतलब इधर-उधर रखना असंयम है। जीव का असंयम होता है तो अजीव का भी असंयम होता है। भगवान् महावीर ने साधना का जीवन जिया, उसका आधार-सूत्र है—'दूसरे के अस्तित्व की स्वीकृति'। पर्यावरण की चेतना में भी दूसरे के अस्तित्व की स्वीकृति है।

जीवन एक-दूसरे के सहयोग पर, एक-दूसरे के उपकार-भाव पर निर्भर है। यही सह-अस्तित्व (Co-existence) है। हम जीवित रहना चाहते हैं तो संसार के अन्य जीव, पदार्थ भी जीवित तथा सुरक्षित रहना चाहते हैं। 'पंचशील' के सिद्धांत भी सह-अस्तित्व पर आधारित हैं। सभी सुखी रहना चाहते हैं, दुःखी होना कोई नहीं चाहता।

वास्तव में ज्ञानी होने का सार यह है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न करें, इतना जानना ही काफी है कि अहिंसा-मूलक समता ही धर्म है, यही अहिंसा-विज्ञान है।

गीता की मान्यता है कि जो किसी को अपने व्यवहार से दुःखी नहीं करता, वही श्रेष्ठ व्यक्ति है। यहां भी अहिंसा, करुणा तथा दया का उपदेश है। महावीर ने एक सूत्र दिया—एक्का मणुस्सजाई—मनुष्यजाति एक है, फिर क्यों किसी को पीड़ा पहुंचाई जाए, सताया जाए।

जब हम दया की बात करते हैं तो हमें सभी प्राणियों को आत्म-तुल्य समझना चाहिए। किसी के प्रति द्वेष-भाव न रहे, यही महानता का अभिसूचक है। इसमें सर्वत्र आत्मोपम्य दृष्टि रहती है। "समणसुत्त" (५०) में कहा गया है—

जह ते न पियं दुक्खं, जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं।
सव्वायरमुवउत्तो, अत्तोवम्मेण कुणसु दयं॥

यानी जैसे तुम्हें दुख प्रिय नहीं वैसे ही सब जीवों को दुख प्रिय नहीं हैं—ऐसा जानकर पूर्ण आदर और सावधानी पूर्वक आत्मोपम्य दृष्टि से सब पर दया करो। यहां सब पर दया करने का आशय है मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी पर दया करनी चाहिए।

गुरुनानक की दृष्टि समता भाव से संव्याप्त थी। वह किसी को भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीन-नीच नहीं समझते थे। उनकी दृष्टि में जो हीन—नीचे का सहायक होता है उस पर ईश्वर की कृपादृष्टि रहती है—

नीचां अंदर नीच जाति नीची छू अति नीचु,
नानक तिनकै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस।
जिथै नीच समालिअनि तिथे नदरि तेरी बखसीस॥

अर्थात् नीची जातियों में जो नीचा है और उन नीचों में जो भी नीचा है, हे नानक! मेरा उन्हीं से संग-साथ है। मुझे बड़े लोगों (जातियों) से कोई बराबरी नहीं करनी। जहां नीच को संभाला जाता है परमेश्वर की कृपादृष्टि भी वहीं होती है।

महावीर ने अहिंसा, दया पर जैसा बल दिया वैसा ही बल कबीर ने दिया। उनकी दया की भावना अनेक दोहों में मुखरित हुई है। उन्हें यह देखकर दुःख होता था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ने दया और रहम को अपने दिल से निकाल दिया है—उनको बिहिश्त कहां से होई सांझे मुरगी मारे, यह है उनकी जीवदया की अवधारणा। वह तन को नहीं मन को प्रेम, भक्ति, करुणा, दया, समता के रंग में रंगने का उपदेश देते थे।

सह-अस्तित्व की भावना से प्रेरित होकर कई जीव-रक्षक संस्थाएं कार्य कर रही हैं। दिल्ली में लाल जैन मंदिर में स्थित पक्षी-चिकित्सालय में पक्षियों की देखभाल की जाती है। 'द एनिमल फ्रैंड हास्पिटल-कम-शैल्टर' नामक संस्था दिल्ली में भामाशाह रोड पर स्थित ऐसा ही कार्य कर रही हैं। श्रीमती मेनका गांधी तो ऐसा महसूस करती हैं कि यदि किसी पशु को कशाघात किया जाता है तो मानो उन्हीं पर कशाघात हो रहा है। यह संवेदना, संपीड़ा की अनुभूति कम व्यक्तियों को होती है किन्तु ऐसी संवेदना के विकास से ही पर्यावरण-संतुलन को बल मिलेगा।

देश में जहां एक ओर शौकिया मांसाहार का प्रयोग देखा जाता है वहां विवेक सम्मत दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियों में शाकाहार का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। मांस, मछली, अण्डे में विटामिन या प्रोटीन नहीं, वरन् दालों, फलों आदि में इनकी मात्रा भी अत्यधिक है। सोयाबीन में प्रोटीन सर्वाधिक मिलता है। कश्मीर के प्रसिद्ध डाक्टर श्री गुलाम कादिर उलाकबन्द ने लोगों को सत्य परामर्श देते हुए कहा कि मांसाहार त्यागना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। अण्डा पेट में पत्थरी बनाता है। रोगी पशु का मांस खाने वाले में रोग पैदा करता है। भोजन संतुलित हो, सात्विक हो, सुपाच्य हो, पौष्टिक हो यही सबसे अच्छा है, स्वास्थ्यवर्धक है। अच्छा स्वास्थ्य खाने-पीने में संयम बरतने पर निर्भर है। विश्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वास्थ्य संगठन ने उस भोजन को लाभदायक माना जिससे मनुष्य सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक रूप में स्वस्थ रहे, जो उत्तेजक न हो। उत्तेजक भोजन विकार उत्पन्न करता है। शाकाहार अहिंसा का पथ है, प्रदूषण से मुक्त होने का रास्ता है। हमें सम्प्रदाय, जातिवाद से ऊपर उठकर काम करना चाहिए। शाकाहार सम्प्रदाय या धर्म से सम्बन्ध नहीं रखता, यह तो स्वास्थ्य से सम्बन्धित है। हमें धर्म, सम्प्रदाय को संकीर्णता से नहीं अपनाना चाहिए। शुद्ध मानवीय दृष्टि से काम लेना चाहिए और अपने को साम्प्रदायिकता के अंधकार से दूर रखना चाहिए, अहिंसा, दया, सद्भावना के दीपक जलाने चाहिये—

जिन चिरागों से जाआस्सुब का धुआं उठता है।
उन चिरागों को जला दो तो उजाले होंगे॥

जैनधर्म-दर्शन पर्यावरण की शुद्धि पर विशेष बल देता है और व्यावहारिक रूप में अहिंसावादी होने के कारण शाकाहारी है। जीवों पर दया-करुणा करना उसका प्रमुख विधान है। प्रश्न यह है कि इस औद्योगिक क्रांति के बढ़ते चरणों में विध्वंस से हम पर्यावरण को कैसे बचा सकते हैं?

जहां संयम-संतुलन नहीं, वहीं पर्यावरण की समस्या है, प्रदूषण है, हिंसा है, मोहातिरेक मूर्च्छा है, परिग्रह है, द्वेष और घृणा है। वनस्पति, पेड़-पौधे, वनराजि, नदी, पशु-पक्षी सभी के जीवन में संयम-सुरक्षा की भावना हो। सह-अस्तित्व पर विश्वास हो तो न हिंसा होगी, न घृणा, न प्रदूषण। लोभ-मोह हमारे पर्यावरण को दूषित करने के मूल कारण हैं और यही हिंसा की वृत्ति भी है। आज अपरिग्रह और अहिंसा का व्रत लेकर आगे बढ़ें तो इस धरती को अवश्य प्रदूषण-मुक्त किया जा सकता है। हमारा समाज सुखी और समृद्ध हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृक्ष हमारे लिए पूज्य हैं

जब यह कहा जाता है कि वृक्ष हमारे लिए पूज्य हैं तो इससे तात्पर्य यह है कि वृक्ष-सम्पदा की हमें रक्षा करनी चाहिए क्योंकि उनकी समृद्धि मानव-जीवन की समृद्धि है और एक महान् अहिंसा भी है। वनस्पति का हर तरह से संरक्षण करना चाहिए। हम वनस्पति का, पेड़-पौधों का संरक्षण कर कई प्रकार से पुण्य के भागी बनते हैं। 'आचारांग' में वनस्पति-संरक्षण का विशदता से रेखांकन किया गया है। जो व्यक्ति नाना प्रकार के शस्त्रों से वनस्पति-सम्बन्धी क्रिया में व्यापृत होकर वनस्पतिकायक जीवों की हिंसा करता है वह वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा ही नहीं करता, नाना प्रकार के अन्य जीवों की हत्या, हिंसा भी करता है—

जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइ-कम्म-समारंभेणं,
वणस्सइसत्थं समारंभमाणे अण्णे वणेगरूवे पाणे विहिंसति।

—आचारांग—शस्त्र-परिज्ञा, १०१

यदि एक वृक्ष को काटा जाता है तो उसके साथ पक्षियों के घरों को उजाड़ा जाता है, विहग-शावक अनीड हो जाते हैं. छोटे-बड़े कीट-पतंगों का आश्रय-स्थल नष्ट हो जाता है और फलदार वृक्षों को काटने पर लोग, अन्य पशु-पक्षी उनके फलाहार से वंचित हो जाते हैं। शाकाहार में कमी आ जाती है। जिन छायादार वृक्षों के नीचे बैठकर पथिक अपनी श्रांति मिटाते हैं, तपती धूप में राहत महसूस करते हैं, पशु-पक्षी भी वहां आराम करते हैं। ये सब सुख आराम देने वाला वृक्ष होता है और उसे ही हम काटकर अपने आपको भौतिक दृष्टि से परिसम्पन्न बनाते हैं। लेकिन यह भूलते हैं कि उतना ही दरिद्र तथा प्रदूषित अपने वातावरण को बनाते हैं। वृक्षों को आंख बन्द कर काटना पर्यावरण को प्रदूषित करना है। जब पर्यावरण प्रदूषित होता है तो मानव-जीवन तरह-तरह की आपदाओं में फंस जाता है।

हमारे अनेक धार्मिक तथा सामाजिक कृत्यों में वृक्षों, फूल-पत्तों तथा घास-फूस का अत्यधिक महत्त्व है। तुलसी पवित्र पौधा माना जाता है वह कई प्रकार के रोगों में औषधीय गुणों का काम करता है। बेल या बिल्व वृक्ष के पत्ते शिवलिंग पर चढ़ाए जाते त।[1] अशोक वृक्ष भी पवित्र माना जाता

१. सर्वाभावे बिल्वपत्रमर्पणीयं शिवाय च।
बिल्वपत्रार्पणेनैव सर्वपूजा प्रसिध्यति॥

(शिवपुराण)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। कुशाग्रास भी पवित्र है। हरी दूब को दूध में डुबोकर वर-वधू की आरती उतारी जाती है। नीम का वृक्ष कई रोगों को दूर करता है। यह शीतला माता का निवास माना जाता है। भगवान् बुद्ध को बोधि-वृक्ष के नीचे ज्ञान की प्राप्ति हुई है। भगवान् महावीर ने भी वृक्ष के नीचे बैठकर तप-ध्यान किया। आम के पत्तों से वंदनवार बनाया जाता है। केले के पत्तों से शोभाद्वार बनाते हैं। वट-वृक्ष भी पवित्र वृक्ष माना जाता है। इसकी सुदीर्घ लटकने वाली जड़ें शंकरजी की जटा-स्वरूप समझी जाती हैं और सुहागिन स्त्रियां अपने पति के सुदीर्घ जीवन की कामना करते हुए वट-वृक्ष की पूजा करती हैं। 'वृक्ष आयुर्वेद' के तरु महिमा अध्याय में कहा गया है—

दशकूपसमः वापी, दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदः समो पुत्रो, दशपुत्राः समो द्रुमः।

यानी एक बावड़ी दस कुओं के बराबर होती है। एक तालाब दस बावड़ियों के बराबर होता है, एक पुत्र दस तालाबों के बराबर होता है और एक वृक्ष दस पुत्रों के बराबर होता है। अब इससे अधिक वृक्ष की महिमा का क्या बखान हो सकता है! जब पांच वृक्ष-रोपण से १४ पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है तो फिर उनके काटने से मनुष्य को कितनी भयानक अधानल में जलना होगा, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

भगवान् कृष्ण ने 'गीता' में वनस्पति की, प्रकृति की महिमा निज स्वरूप में बार-बार की है। उन्होंने कहा है कि नदियों में मैं गंगा हूं (१०, ३१), ऋतुओं में मैं बसंत हूं (१०.३५), जलाशय में मैं समुद्र हूं (१०,२४), गौओं में मैं कामधेनु हूं (१०२८), उनचास वायु देवताओं का तेज और नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूं (१०,२१)। एक स्थान पर वृक्षों में पीपल वृक्ष अपने को कहा है—अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां (१०,२६)। सिन्धु घाटी सभ्यता में पीपल को पवित्र वृक्ष माना गया था। उस काल की मुहरों पर पीपल की तस्वीर है, उस पर एक देवी बैठी है। पीपल सभी गांव-नगरों में हम देखते हैं। इसे पवित्र तो माना जाता है ही—इसको त्रिमूर्ति माना जाता है यानी इसकी जड़ ब्रह्मा है, छाल विष्णु है, शाखाएं शिव हैं, साथ में यह स्वास्थ्यवर्धक है। पीपल ही एक ऐसा वृक्ष है जिसकी पत्तियों से रात्रि में भी ऑक्सीजन निकलती है जबकि अन्य वृक्षों से रात में कार्बन डाइ आक्साइड निकलती है। इसलिए रात में पीपल के पेड़ के नीचे सोया जा सकता है। पीपल को पानी देना शुभ माना जाता है और सैयद इब्राहीम रसखान (१५५८-१६१८) को तो वे करील की कुंजें इतनी प्यारी, मूल्यवान हैं कि उन पर वह लाखों स्वर्ण महल निछावर कर सकते हैं क्योंकि उनके नीचे कृष्णजी ने विहार किया था, केलि की थी—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोटिक हों कलधौत के धाम,
करील की कुंजन ऊपर वारों।

करील-कुंजों की पावन स्थली वृन्दावन में जाकर देखिए, अब वहां कितने करील के वृक्ष हैं! मनुष्य की लोभ-वृत्ति ने न जाने कैसे-कैसे वृक्षों को अपना ग्रास बनाया है। परिणाम कितना भयानक हुआ है, यह सर्वविदित है। मनुष्य जीवन की बका प्रकृति के अस्तित्व से जुड़ी है। प्रकृति नहीं, पेड़-पौधे नहीं तो मनुष्य नहीं। मनुष्य को अपने अस्तित्व के लिए पेड़-पौधों के अस्तित्व को बचाना होगा, पर्यावरण का संरक्षण करना ही पड़ेगा।

'रामचरितमानस' में वन-सम्पदा, वृक्ष-राशि सभी का अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है। 'उत्तरकांड' में काकभुशुण्डि जिस पर्वत पर बसता है वहाँ पीपल के वृक्ष हैं, वहां वह ध्यान, जप, तप करता है। आम की छाया में मानसिक पूजा करता है और वटवृक्ष के नीचे बैठकर हरिकथा के प्रसंग कहता है, अनेक पक्षी उस कथा का श्रवण करते हैं—

तिन्ह पर एक बिटप बिसाला,
बट पीपर पाकरी रसाला।
पीपर तरु तट ध्यान सो धरई,
जाप जग्य पाकरि तर करई।
आंब छांह कर मानस पूजा,
तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा।
बर बट कह हरिकथा प्रसंगा,
आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा।

—उत्तरकांड, ५७

'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरो हि किंचित्' द्वारा मनुष्य की श्रेष्ठता का बखान किया गया है और **'ऐतेरेयोपनिषद्'** (१।३।३) में कथा है कि गौ-अश्व आदि की रचना देखकर देवता असंतुष्ट हुए, उन्होंने जब मनुष्य का शरीर देखा तो सानन्द उछल पड़े। सभी देवताओं ने मनुष्य के शरीर को अपने आवास-योग्य मान लिया। हमारे धर्मग्रन्थों में मनुष्य की बड़ाई का खूब वर्णन किया गया है। श्री अरविन्द मनुष्य को आध्यात्मिक विकास का प्रतीक मानते थे। पंत को लगा कि संसार में मनुष्य के लिए कुछ कमी नहीं, यदि वह मानव बना रहे। इमर्सन को मनुष्य 'भग्न देवता' मालूम पड़ा। लेकिन मनुष्य में देवत्व देखने के साथ उसमें दानत्व भी देखा जा सकता है। रस्किन का कहना है कि आदमी एक हाथहीन जहरीला मकड़ा है, जो खून चूस सकता है, डंक मार सकता है, पर कभी कुछ बुन नहीं सकता। मार्क ट्वेन तो मनुष्य को सर्वाधिक घृणित जीव मानता है। मनुष्य में जो बुराई है वह है उसकी हिंसा-वृत्ति, लोभ-क्रोध की भावना, ईर्ष्या-द्वेष का भाव। यही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकार उसे हीनत्व की ओर ले जाते हैं, उसे दानव तथा राक्षस बनाते हैं। ब्रिटेन के कवि बर्न्स का तो यह भी कहना है—

आह ईश्वर आदमी क्या है;
वह कैसा सीधा-सा लगता है
लगातार हथकंडों के बल पर
बढ़ने की कोशिश करता है
गहराई और छिछलेपन के साथ देवता है।
पर वहां कल्मषता भी अकेली है
सब कुछ मिलाकर
वह शैतान के लिए भी भारी पहेली है।

जब हम मनुष्य को बेतहाशा वृक्षों को काटते देखते हैं तो उसका वह हिंसक रूप सामने आता है। वह दानव बन जाता है। प्रकृति तो मनुष्य को मानवता प्रदान करती है, उसके स्वाभाविक धर्म का मार्ग दर्शाती है, लेकिन भौतिकता की चकाचौंध से उसे सम्यक् रास्ता नहीं सूझता और अज्ञानता के गर्त में गिरता चला जाता है। प्रकृति हमारी मां है, उसमें ममता है, स्नेह है, वात्सल्य भाव है। हम जितना अधिक प्रकृति के—पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों सान्निध्य में रहेंगे उतना ही अधिक मानवीय गुणों से सम्पन्न होंगे। आज मनुष्य में मानवता की कमी है, मानव-मूल्यों का अभाव है। मानवतावाद (Humahatarianism) के उच्चादर्शों को जितना अधिक शीघ्र अंगीकार करेंगे उतना ही अधिक हमारा जीवन सुख-शांति से पूर्ण होगा। पश्चिमी सभ्यता की अंधी नकल श्रेयस्कर नहीं हो सकती, हमें विवेकशील और प्रज्ञावान बनकर कर्मक्षेत्र में पदार्पण करना चाहिए। हम अपनी जमीन पर खड़े हों, अपने चिन्तन से प्रेरणा अर्जित करें और अपने को पुनरुन्मेषित करने का क्रम जारी रखें। मात्र भौतिक पदार्थों की उपलब्धि जीवन का महद् उद्देश्य नहीं माना जा सकता। अर्थार्जन जीवन के लिए जरूरी है, मगर उसे ही सब कुछ नहीं समझना चाहिए। परिग्रह-जनित प्रगति कलह-संघर्ष, वैर, हिंसा उत्पन्न करती है।

'आचारांग' (विमोक्ष, १३) में एक सूत्र है—"हरिएसु ण णिवज्जेज्जा, थंडिलं मुणि आसए", अर्थात् मुनि हरियाली पर न सोए, स्थण्डिल (हरित और जीव जन्तु-रहित स्थान) को देखकर वहां सोए। हरियाली पर न सोने से अभिप्राय यही है कि वनस्पति की, पेड़-पौधों की शस्यश्यामला धरती की पूर्णतः सुरक्षा की जाए। वन-वृक्ष हमारी भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति के साधन हैं, साध्य नहीं। हमारा जीवन इनके अभाव में शुष्क हो जाएगा। आज मनुष्य ने भौतिक उन्नति के शिखरों का संस्पर्शन भले ही कर लिया हो, वह आंतरिक रूप से खोखला अनुभव करता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और इस आंतरिक शून्यता को भरने के लिए धर्म तथा अध्यात्म की शरणस्थली आवश्यक है। नैतिक आचरण, संयम और अहिंसा का पथ मनुष्य भूल गया है। जब तक अहिंसा के 'महापथ' की ओर उसके चरण आगे नहीं बढ़ेंगे वह संसार में सुखी नहीं हो सकता, समाज और राष्ट्र को सुखी नहीं बना सकता। अपनी सर्वांगीण उन्नति के लिए हमें भौतिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना होगा। अपने अस्तित्व के साथ वृक्षों के, वनों के अस्तित्व को महत्त्व देना अपेक्षित है। जितना अधिक वृक्षों के निकट जाएंगे प्रकृति की क्रोड़ में बैठेंगे, पशु-पक्षी के प्राणों की रक्षा करेंगे उतना ही अधिक हम प्राणवान्, शक्तिमान् तथा ऊर्जस्वित होंगे। हमारा चिर विकास प्रकृति के, वृक्षों के चिर साहचर्य से ही सम्भव होगा। वृक्ष-संरक्षण परिस्थिति [इकॉलोजी] का ही संरक्षण है, यही अहिंसा-धर्म का अनुपालन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व एकता

सुख और आनन्द की प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य के जीवन की बलवती इच्छा होती है। इस इच्छा—स्पृहा की संपूर्ति के लिए मनुष्य अधिकाधिक संग्रह परिग्रह करने में अंधाधुंध लगा रहता है। आज हमारे चारों ओर का वातावरण दूषित है, जल, वायु सभी पर्यावरण के शिकार हैं। बाजार में जो भी आवश्यक खाद्यसामग्री उपलब्ध है, उसे भी पूर्णतः शुद्ध हम नहीं कहेंगे, मिलावट का रोग उन्हें परिग्रह किये हैं। पहले, अभी २५-३० वर्ष पूर्व ऐसी बातें शाजोनादिर ही देखने में मिलती थीं परन्तु आज परिस्थितियां एकदम विपरीत हैं। सभी पर धनी होने का भूत सवार है, धनी होना बुरा नहीं, प्रत्येक को धनवान बनने का अधिकार है, प्रत्येक को बंगला, कार हासिल करने का अधिकार है। यही तो आर्थिक स्वतन्त्रता है लेकिन इस स्वतन्त्रता की संप्राप्ति के लिए हम उचित-अनुचित भूल बैठे हैं। राजनैतिक क्षेत्र में देखिए—वहां भी हिंसा का बोलबाला है, शस्त्रीकरण की होड़ ऐसी है कि आश्चर्य होता है, आदमी खुद अपनी सत्ता मिटाने का भयानक, हिंसात्मक कुचक्र चला रहा है। संसार विश्वयुद्ध के सबसे भयावह और विध्वंसकारी कगार पर आकर खड़ा हो गया है, तनिक-सा प्रसाद उसकी जीवन लीला समाप्त करने के लिए काफी है ऐसी विषम स्थिति में यदि हम जैनमत के सिद्धांतों को, भगवान महावीर के जीवनादर्शों को समझें, उन्हें जीवन में उतारें, तदनुकूल आचरण करें तो बहुत कुछ सीमा तक हम विनाश के दुःख के, निराशा के, हिंसा-अत्याचार के काले मेघों को छितरा सकते हैं। अभिमान, भय, घृणा, काम, क्रोध, शोक, मोह आदि एकता की भावना के विरोधी और हानिकारक तत्त्व हैं और इन्हें हम हिंसा का नानाविध रूप कह सकते हैं—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।
तेषामेवोत्पत्तिः हिंसा जिनागमस्य संक्षेपः ॥

(पुरुषार्थसिद्धयुपाव, ४४)

यदि हम विश्वमैत्री, विश्व-बन्धुत्व की भावना को साकारित करना चाहते हैं तो अहिंसा की शरण में जाना होगा, जैनमत के आलोक द्वारा संसार में व्याप्त हिंसा, बैर, शत्रुता के अन्धकार को नष्ट करना होगा। आचार्यवर श्री तुलसी ने कहा है—धर्म की मूल भित्ति हैं विश्व-बन्धुता, विश्वमैत्री। व्यक्ति अपने परिवार के प्रति, अपने अपने इष्ट मित्र के प्रति मैत्रीभाव रखता है, यह कोई खास बात नहीं, पशु-पक्षी भी अपनी संतान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रति मैत्रीभाव रखते हैं। धर्म की भित्ति इतने तक सीमित नहीं रह जाती। उसका दायरा तो व्यापक और विश्व भर में व्याप्त है उसकी भित्ति है समूचे संसार के प्रति मैत्रीभाव रखना प्रत्येक प्राणी को आत्म-तुल्य समझना। किसी को घृणा की दृष्टि से मत देखो, धर्मप्रचार के पन्थ चाहे अलग-अलग हो, पर सबकी आत्मा परमात्मा स्वरूप है, कोई किसी से कम नहीं। यदि इस कथन को गहनता से हृदयंगम किया जाए, उसे समझ-परख कर जीवन में उतारें तो न केवल एक वर्ग या सम्प्रदाय के भेदभावों का निराकरण हो सकता है बल्कि देशों के बढ़ते पारस्परिक मनमुटाव को, शीत युद्ध के वातावरण को मैत्री, सहिष्णुता और एकता में परिवर्तित कर सकते हैं।

भगवान महावीर कहते हैं—हे मनुष्य ! जिसे तू मारना चाहता है, वह भी तेरे ही जैसा है, तेरी तरह वह भी सुख दुःख का अनुभव करता है। जिसे तू अधीन बनाना चाहता है। जिसे दुःख देना या सताना चाहता है वह भी तो तेरे ही जैसा प्राणी है, यहां आकर विश्व एकता या मानव एकता के द्वार स्वतः खुल जाते हैं, परन्तु आज ये विकट रूप में बन्द हैं इन्हें खोलने की प्रेरणा जैनमत से मिलेगी, महावीर के निर्दिष्ट मार्ग पर चलने से हम अपने अभीष्ट को संप्राप्त कर सकते हैं, उन्होंने कहा है—दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं अर्थात् दोनों में सबसे श्रेष्ठ है अभयदान। हम अभय का, निर्भय का वातावरण विश्व में कायम करें। भय की मौजूदगी में कोई धर्म नहीं ठहर पायेगा, वह स्थायित्व प्राप्त नहीं कर सकता। भय हमें नीचे गिराता है, अधःपतन की ओर धकेलता है। जब हम स्वयं डरते हैं तभी दूसरों को डराने का उपक्रम करते हैं। निर्भय होने पर ही हम सत्य के, विवेक के मार्ग के राही बन सकते हैं। अहंकार भी विषमता और वैरभाव का अभिवर्द्धन करता है। अहंकार वश मनुष्य न जाने कितने अनर्थ करता है, जाति, समाज और राष्ट्र के हितों का हनन करता है, विश्व शांति के मार्ग का अवरोधक बनता है। आज सर्वत्र सामाजिक वषम्य, आर्थिक वैषम्य, वैचारिक वैषम्य, मानसिक वैषम्य से एकता का वातावरण परिदूषित हो रहा है। जैनमत आत्महित की सीमा का अतिक्रमण कर लोकहित की श्रेष्ठता और वरीयता का प्रतिपादन करता है। उपाध्याय अमर मुनि का कहना है "जैन दर्शन की निवृत्ति का मर्म यही है कि व्यक्तिगत जीवन में निवृत्ति और सामाजिक जीवन में प्रवृत्ति। लोकसेवक या जनसेवक अपने व्यक्तिगत स्वार्थों एवं द्वन्द्वों से दूर रहें, यह जैन दर्शन की आचारसंहिता का पहला पाठ है। अपने व्यक्तिगत जीवन में मर्यादाहीन भोग और आकांक्षाओं से निवृत्ति लेकर ही समाज कल्याण के लिए प्रवृत्त होना जैनदर्शन का पहला नीतिधर्म है। जैनमत में सर्वोदय की, सबके कल्याण की बात पर ज्यादा जोर दिया गया है, यही मानवतावाद है। जहां तक हो सके दूसरे के दुःख को कम किया जाए।" पाकिस्तान के प्रसिद्ध कवि फैज अहमद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'फैज' ने भी इसी प्रकार के शब्द दिल्ली में अपनी ७०वीं वर्षगांठ के समारोह में व्यक्त किये—"मैं चाहता हूं कि दुनिया में दुःख जितना कम हो सके उतना अच्छा है। हमें हमेशा इन्सान की खुशियों में इजाफा करने की कोशिश करनी चाहिए।" और जैनधर्म का भी यही संदेश है। इसी संदेश द्वारा हम विश्व एकता, मानव एकता की भावना को सुदृढ़ बना सकते हैं।

महावीर का संदेश है—किसी को मानकर मत चलो, सत्य की दिशा में अनेकान्त का उपयोग करो। अनेकान्त का आशय है—किसी वस्तु को एक दृष्टि से मत देखो। अपनी पूर्व धारणा के दृष्टिकोण से मत देखो। वस्तु में जो है उसे ही देखो और जितने वस्तु धर्म हैं उतने ही दृष्टिकोणों से देखो। यहां आकर राग-द्वेष के बन्धन टूट जाते हैं, समत्वभाव की कल्लोलिनी उन्मत्त होकर प्रवाहित होने लगती है। मताग्रह से सांप्रदायिकता के भक्कड़ चलते हैं, मतांधता की आंधी उठती है जिससे दृष्टि धूमिल हो जाती है। सम्यक्दृष्टि का लोप हो जाता है। अनेकांतवाद में न पूर्वधारणा है, न मताग्रह है यहां तो वस्तु का हम सापेक्ष दृष्टि से निरीक्षण-परीक्षण करते हैं। यही सर्वधर्मसभाव तथा वैचारिक सहिष्णुता की सुखद भावधारा प्रवाहित करने वाला सिद्धांत है। विरोधी सत्यों में सामंजस्य स्थापित करने वाला है, सह-अस्तित्व की संस्कृति का जनक है। अनेकान्त का प्रमुख प्रयोजन है परस्पर विरोधी दृष्टिगोचर होने वाले दो धर्मों, विचारों, मतों, सिद्धांतों का सापेक्षभाव सिद्ध करना। पाश्चात्य विचारकों—शिलर, व्हाइहैड, आइंस्टीन आदि अनेकान्तवाद या सापेक्षवाद के प्रशंसक हैं। जैनधर्म परस्परोपग्रहो जीवानाम् का प्रचार है, यहां हम एकता और सौहार्द की भूमि में प्रवेश करते हैं। सभी प्राणियों के साथ प्रेम व सद्भाव की प्रेरणा इसी मंत्र में छिपी है। जातीय भेदभाव रंगोनस्ल का इमतियाज यहां खुद ही समाप्त हो जाता है। सह-अस्तित्व बहुत बड़ी सचाई है। इस सचाई के आलोक में वर्तमान राजनीतिकवादों, सामाजिक पद्धतियों और संस्कृतियों की व्याख्या कर हम अनेक विरोधाभासों को समन्वय में बदल सकते हैं, संघर्षों को शांति और मैत्री के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। (युवाचार्य महाप्रज्ञ) जैनधर्म ने आत्मानुशासन प्रदान किया। उसकी भाषा अहिंसा और अपरिग्रह की भाषा है। आज उसी भाषा को पढ़ने, दोहराने की आवश्यकता है। जितनी अहिंसा बढ़ेगी, प्रेम बढ़ेगा, अपरिग्रह बढ़ेगा उतना ही मनुष्य की, देश और समाज की विषमता दूर होगी और एकता एवं समानता का नवीन राजमार्ग तैयार होगा, विश्व-बोध की भावना का नया सूर्य मिलेगा। परंतु जैनमत की इस समन्वय या एकता के सूत्र को शब्दों से नहीं अन्तरात्मा की अनुभूति से प्राप्त करना होगा, यही आंतरिक अनुभूति मानवता की खोज है, विश्व एकता का द्वार है। विश्व की संस्कृति मनुष्य मात्र की संस्कृति रही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व का आकाश एक है। उसके नीचे रहने वाले सभी मानव एक हैं। उनकी संस्कृति एक है। देश, काल एवं परिस्थितियों के प्रभाव से भिन्न देशों की संस्कृति में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य प्रतीत होता है परन्तु सुखद शांति के तत्त्व उसमें सुरक्षित हैं। 'वसुधैव कुटम्बकम्' यह संस्कृति का अत्यन्त उदार, सार्वभौम विकसित रूप है जहां उसमें एक ओर विश्व-मैत्री के भाव सुरक्षित हैं, वहां अहिंसा परम धर्म की प्रतिष्ठा भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुशासन : विविध आयाम

सापेक्ष दृष्टि से वस्तुओं और समस्याओं का अध्ययन और मनन किया जाय तो कोई स्थायी एवं सर्वग्राही समाधान खोजा जा सकता है; परन्तु आज हमारी दृष्टि में पक्षाग्रह अधिक रहता है; इसी से समस्याएं सुलझने के बजाय उलझती जाती हैं। सभी क्षेत्रों में अशांति है, अव्यवस्था है—संसद से लेकर सड़कों तक एक अजीब तरह की आपा-धापी है, भाग-दौड़ है, हलचल है, बेचैनी है। संसद हो या राज्यों की विधानसभाएं वहां की कार्यवाही को देखिये, मन्त्रियों, सदस्यों के व्यवहार का निरीक्षण कीजिए। वहां एक दूसरे पर कीचड़ ही नहीं उछाली जाती, उन पर दोषारोपण ही नहीं किया जाता, व्यक्तिगत आक्षेप के शर-संधान ही नहीं किये जाते बल्कि खूब जूतियां चलती हैं, हाथापाई और बोलधप्पा होता है। बड़ी ही निंदनीय और लज्जाजनक स्थिति होती है वहां, परन्तु हमारे ये माननीय सदस्य या मंत्रीगण मस्त हैं। फिर आप कैसे आशा करेंगे कि ये देश के कर्णधार बनकर देश को प्रगति-उन्नति के मार्ग पर ले जाने की क्षमता रखते हैं। यह माना कि कुछ मंत्रीगण या सदस्य मर्यादा एवं अनुशासन के प्रति अति सजग हैं, मगर अधिकतर तो अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीन रहते हैं। चीनी दार्शनिक लाओत्से ने कहा था कि राजा को अगर कंचन से घृणा हो जाय, तो समाज में चोरी कोई नहीं करेगा। राजा हवा है, जनता घास का पौधा। हवा जिधर को बहती है पौधा उधर झुक जाता है। और है भी यही स्थिति। हमारे मंत्रीगण या विधान सभा, संसद के सदस्यों के कंचन-मोह को देखिए। फिर जनता में यदि काले धन के प्रति, स्मगलिंग के प्रति मोह बढ़ता है तो इसमें आश्चर्य क्या? आखिर उस मोह को अंकुरित होने के लिए खाद-पानी कहां से मिलता है? कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे नेताओं में अनुशासन और मर्यादा की कमी है, जिसका कुप्रभाव समाज और जाति पर पड़े बिना नहीं रहता। कितना लज्जास्पद एवं घृणित बात है कि प्रधानमंत्री के जहाज के तार काट कर उसे दुर्घटनाग्रस्त करने का मंसूबा अप्रैल के अन्त में बनाया गया। इसे अनुशासनहीनता का कितना घिनौना कार्य कहा जायेगा। यदि सामाजिक स्तर पर अनुशासनहीनता देखनी हो तो कदम-कदम में उसका रक्तरंजित रूप हत्याकाण्ड, डकैती, बस-रेल लूटना, साम्प्रदायिक दंगे, हरिजनों पर ढाये जाने वाले अत्याचार, कितने ही रूपों में उसे देखा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुशासन और मर्यादा किसी प्रकार का बंधन नहीं, यह तो मुक्ति का उपक्रम है। हम यदि सभी कार्यों को संयम से, अनुशासन से, मर्यादा से, नियम से करें तो न केवल कार्य को सुगम और शीघ्रतापूर्वक पूरा कर सकते हैं, बल्कि दूसरों के लिए अनावश्यक पैदा की जाने वाली परेशानियों के दोष से बच सकते हैं। यह तो स्वभावगत होना चाहिए। प्रकृति के सभी पदार्थ अनुशासित हैं, मर्यादा अथवा संयम में बंधे हैं। सूर्य समय पर उदय और अस्त होता है. मौसमों में निश्चित समय पर परिवर्तन होता है, वृक्षों के पत्ते पीतवर्ण होकर समय पर गिर पड़ते हैं, समय पर उसमें पल्लव विकसित होते हैं, फूल और फल आते हैं। यह सकल प्रक्रिया एक अनुशासन में, नियमानुसार होती है। प्रकृति के पदार्थों में यदि किसी प्रकार का अनुशासन भंग हो जाय, वे अपनी मर्यादा या संयम का बहिष्कार कर दें तो फिर देखिये कितना अनिष्ट होगा, विनाश-लीला होगी। यही बात समाज पर, मनुष्य पर लागू होती है।

दिनकरजी ने कहा है, "प्रजातन्त्र का अनुशासन ढीला होता है, और कानून उनके उदार होते हैं इतने उदार कि उनका फायदा अपराधी भी उठाता है। शहरों और देहातों में जो बदअमनी बढ़ रही है, उसका कारण यही है कि कानून उदार है और उसकी प्रक्रिया अपराधियों की सहायता करती है। जनता सबसे पहले समाज में शान्ति और सुरक्षा चाहती है, मगर अपराधी जब दण्डित नहीं किये जा सकते अथवा वे ऊंची जगहों पर आदर और सत्कार पाते हैं, तब प्रजातन्त्र का मुकदमा कमजोर हो जाता है।" अतः अनुशासन की, शान्ति और सुरक्षा की स्थिति बनाने के लिए दण्ड-व्यवस्था अनिवार्य है। हमेशा अहिंसा और क्षमा से समाज का हित नहीं हो सकता। न्याय या कानून सबके लिए बराबर होना चाहिए, कोई इनसे बड़ा नहीं। "महाभारत" के शान्तिपर्व में राजा को दुष्टों व समाज के अनैतिक तत्त्वों का दमन करने के लिए दण्ड धारण करना आवश्यक माना गया है। दण्डहीन राजा के राज्य में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। दण्ड के द्वारा धर्म, अर्थ और कर्म की अनुप्राप्ति संभव है। तुलसी ने स्पष्टतः घोषणा की—'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी॥

राम ने मर्यादाहीन रावण को अनुशासित किया, उसे दण्डित कर सीता को विमुक्त किया। उनका राज्य-परित्याग भी अनुशासन एवं मर्यादा की रक्षार्थ था, सीता के परित्याग में भी लोकमर्यादा का सम्मान सन्निहित है।

अनुशासन को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

(क) बाह्य अनुशासन (ख) आन्तरिक अनुशासन

जहां तक बाह्य अनुशासन का सम्बन्ध है, उसे हम मनुष्यों में,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज में, देश में स्थापित करना चाहते हैं, या उसका रूप इन विभिन्न क्षेत्रों में विकसित और सवर्धित देखना चाहते हैं। मनुष्य का अनेक संस्थाओं से, कारोबारी केन्द्रों से, कार्यालयों से सम्बन्ध होता है, या उसका आये दिन इनसे काम पड़ता रहता है। यहां एक मनुष्य जब दूसरे मनुष्य के संपर्क में आता है, उसके साथ व्यवहार करता है तो बहुत बार उसका अनुशासन-हीन और अमर्यादित रूप देखने में आता है, और कभी-कभी तो उसे पशुवत् देखा जाता है। अतः अशान्ति और संघर्ष का सूत्रपात होता है, व्यक्ति व्यक्ति से टकराता है और फिर वह अनर्थ एक ज्वालामुखी के रूप में फूटकर समाज के विनाश का कारण बनता है। आज रिश्वतखोरी, वस्तुओं में मिलावट, जमाखोरी, कृत्रिम मंहगाई, स्मगलिंग आदि रूपों में धोखाधड़ी या बेईमानी का अभिशाप समाज में घुन की तरह लगा है। इसका कारण अनुशासन या कर्तव्यपरायणता की कमी है। वस्तुतः अनुशासन, मर्यादा और कर्तव्यनिष्ठा—ये तीनों पर्याय हैं. एक ही भागीरथी की तीन धाराएं हैं। इन क्रियाओं का सुखद सम्मिलन तीर्थराज प्रयाग की संरचना कर सकता है। परन्तु हम देखते हैं कि मनुष्य अपने को समृद्ध बनाने के लिए कुर्सी, शक्ति, चाटुकारिता की नई त्रिवेणी बहा रहा है, फिर संघर्ष के लिए रास्ता स्वतः खुल जाता है। हम देखते हैं कि लोग नेताओं की परिक्रमा करते रहते हैं, उनकी चापलूसी में जमीन-आसमान के कुलावे मिलाने की कोशिश करते हैं। न हम स्वार्थ त्याग पाते हैं, न हमारे पूज्य नेतागण। लाओत्से ने कुछ और ही बात कही है—सबसे अच्छे राजा वे हैं, जनता जिनका केवल नाम सुनती है। उनसे निम्न वे हैं जिनकी जनता को कदम-कदम पर जरूरत पड़ती है।" कैसी विडम्बना है कि हम किसी व्याख्यानमाला का उद्घाटन, किसी पुस्तक का विमोचन ऐसे नेता या मंत्री से कराते हैं जिसका पढ़ने-लिखने से कोई सम्बन्ध नहीं। उसने किसी भारतीय विद्वान की पुस्तक को कभी हाथ में नहीं लिया। फिर भला उससे हमें क्या ज्ञानलोक मिलेगा। हां, "अर्थलोक" अवश्य हाथ लग सकता है। ऐसी स्थिति में हमें अनुशासन या मर्यादा को दूर से सलाम करना पड़ेगा। यहां यह नहीं समझ लेना चाहिए कि हमें अपने लोगों का—ज्ञानी संतात्माओं का सम्मान नहीं करना चाहिए। हम भला ज्ञानी-महात्माओं, तपः-पूत ऋषियों को, ज्ञानचेता महापुरुषों को कैसे छोड़ सकते हैं! यदि उनका अपमान करेंगे तो हमें भी अपमानित होना पड़ेगा—

अपमान हते हवे ताहादेर सवार समान (टैगौर)

आज जाति-पांति, आचार-विचार, राजनैतिक मतवाद कितनी ही विरोधी भावनाओं का चतुर्दिक प्रसरण है। मनुष्य उलझन के निबिड़ निर्जन में फंसा है। सिद्धांतों और आदर्शों की धुंआधार बहस होती है, सभी अपना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पलड़ा भारी बनाना चाहते हैं और सिद्धांतों की इस अंधेरी कोठरी में आदमी खो गया है, उसका कहीं स्थान नहीं। देश की समस्याएं अलग पड़ी रहती हैं। आज हमें सभी भेदभाव भूलकर, मनुष्य को उसका सही स्थान देने का संकल्प लेना चाहिए। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी भारत-तीर्थ में गया है कि भारत के महामानव रूपी सागर के तीर पर नरदेवता के अभिषेक के लिए सभी भेदभाव भूलकर हे समस्त भारतवासी आर्य, अनार्य, हिन्दू-मुसलमान और क्रिश्चियन—तुम आओ! गुरुदेव ने ईश्वर को एक नैतिक पुरुष माना है। नैतिक पुरुष में ही संयम, मर्यादा और अनुशासन पाया जाता है। ये भी नैतिकता के लक्षण हैं। यहां हमारी अनुशासन की अवधारणा आन्तरिक रूप धारण कर लेती है।

आन्तरिक अनुशान में आत्मसंयम और आत्मनिग्रह के साथ दूसरे विकारों के निवारण की बात भी आ जाती है। 'महाभारत' में भीष्म महाराज युधिष्ठर को शिक्षा देते हैं—गणों में, कुलों तथा राजाओं में वैर की अग्नि प्रज्वलित करने वाले ये दो दोष हैं—(१) लोभ (२) अमर्ष। पहले एक मनुष्य के मन में लोभ उत्पन्न होता है, फिर दूसरे के मन में अमर्ष। और ये मनुष्य धन-जन की भारी क्षति उठाकर एक दूसरे के विनाश पर उतारू हो जाते हैं। आज यही लोभ और अमर्ष की कुवृत्तियां मनुष्य को एक दूसरे का जानी दुश्मन बनाए है। व्यक्तिगत झगड़ों में उलझे व्यक्ति न केवल अपना विनाश करते हैं, परन्तु वे समाज को भी रसातल की ओर ले जाते हैं। लिंकन ने कहा था—व्यक्तिगत झगड़ा बिलकुल न करो। जिस व्यक्ति को उन्नति या श्रेष्ठता प्राप्त करनी है, वह व्यक्तिगत झगड़े के लिए व्यर्थ समय बरबाद नहीं करेगा। कुत्ते से काटे जाने की अपेक्षा अच्छा है कि उसे रास्ता दे दिया जाय। आज हम रास्ता न देकर दूसरों का रास्ता रोकते हैं, और अपने ही लिए मुसीबतों को आमंत्रित करते हैं। हम दूसरों को हल्का बनाने की अपेक्षा खुद भारी होते जा रहे हैं, दुर्भावनाओं की गठरी के बोझ से दबे जा रहे हैं। विवेकहीनता ही यह परिणाम है। एक गधे के पानी में बैठने से नमक की बोरी हल्की हो जाती, दूसरा रुई वाला गधा अपने को हल्का करने के लिए जब पानी में बैठता है तो भारी हो जाता है। उसे इसका विवेक नहीं रहा कि मेरे ऊपर रुई है। मनुष्य का धर्म तो यह है कि वह स्वयं हल्का बने, दूसरों को हल्का बनने में सहायता करे। अपने मन को राग-द्वेष, लोभ-घृणा हिंसा-अत्याचार से मुक्त रखे, दूसरों को मुक्त होने में सहायता दे। बुरे संस्कारों को छोड़ना मर्यादा की, अनुशासन की ओर जाना है। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने कहा है—"क्रियमाण हिंसा उतनी हिंसा नहीं होती, जितनी कि स्मृति की हिंसा होती है। वर्तमान की जो घटना है वह हिंसा तो है ही, किन्तु वह हिंसा का मूल नहीं। हिंसा का मूल है स्मृति। यदि मन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में हिंसा का संस्कार न हो और हिंसा का संस्कार स्मृति के रूप में जागृत न हो तो वर्तमान की हिंसा कोई कर नहीं सकता।" अतः हमारी स्मृति धुंधली और हमारे संस्कार दूषित नहीं होने चाहिए। हमें उसे शुद्ध, पवित्र और शुभ कर्मों में लगाना चाहिए, परहित की ओर उन्मुख करना चाहिए, क्योंकि 'परहित सरिस धरम नहीं भाई, पर पीड़न सम नहीं अधमाई।' परपीड़न की बात असंयम के, मर्यादा के अनुशासनहीनता के कारण उत्पन्न होती है। भर्तृहरि कहते हैं—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयंतः
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्यनित्यं
निज हृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।

अर्थात् जिसका मन, वचन और काय पवित्रता रूप पीयूष से पूर्ण है, और जो रात-दिन उपकारपरायण रहकर तीन लोक को प्रसन्न रखते हैं। किसी में परमाणु प्रमाण गुण हो तो पर्वताकार वर्णन करने में जिन्हें सुख मिलता है, जिनका हृदय प्रफुल्ल होने के लिए दूसरे में गुण ही ढूंढता रहता है, संसार में ऐसे शिष्टाचार-परायण पुरुष कितने हैं। पैगम्बरे इस्लाम तो फरमाते हैं कि सबसे अच्छा मुसलमान वह है जिसका अखलाक सबसे अच्छा हो और जिसके हाथों उसका पड़ौसी संरक्षित हो, सुरक्षित हो। यही कर्त्तव्यनिष्ठा है, मर्यादा और अनुशासनप्रियता है। अनुशासन दूसरे के लिए नहीं, अपने लिए हो। हमें पहले स्व को अनुशासित करना चाहिए, तब हम दूसरों को अनुशासन की ओर ले जाने की बात कह सकते हैं। हम स्वयं जब अनुशासनहीन हैं तो दूसरों को कैसे अनुशासित बना सकते हैं? और यदि सब अपने-अपने स्थान पर अनुशासित, मर्यादित, संयमित हों तो फिर सुख-समृद्धि के बन्द द्वार स्वयमेव खुल जायेंगे। गांधीजी का व्यक्तित्व, उनका जीवन अनुशासन का प्रतीक है। उन्होंने पहले स्वयं को अनुशासन में बांधा, और बाद में जो भी उनके सम्पर्क में आया वह खुद-ब-खुद अनुशासन में बंधता चला गया।

अनुशासन चाहे बाह्य हो या आन्तरिक, वह व्यक्ति को शासन में, संयम में रखने का काम करता है। व्यक्ति देश, काल और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में नियम-निर्धारण करता है, नियम ही समाज को सुव्यवस्था प्रदान करते हैं, अतः सुव्यवस्था ही अनुशासन है। अनुशासन से समाज और देश की उन्नति-प्रगति प्रसूत दिखेगी। इससे विश्वास और योग्यता का अभिनिर्वर्तन होता है, विषमता का हनन और समता का संपोषण होता है। एलाचार्य मुनि विद्यानंद जी ने नियंत्रण को अनुशासन माना है। उनका विचार है—"मनुष्य पर समाज और संविधान का नियंत्रण है, ऋतुओं पर काल का नियंत्रण है और बढ़ती हुई नदियों पर तटों का नियंत्रण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। अनुशासन से जीवन दुर्घटनाओं से बचता है, गन्तव्यों को पा लेता है और ऊंचे उठने के अवसर प्राप्त करता है। अनुशासन की लगाम घोड़े के मुंह पर लगी हुई है, उसके सहारे वह ठीक चलता है। बिना अंकुश का हाथी और अनुशासनरहित समाज विनाश की ओर ले जाता है।" गांधी बार-बार राम-राज्य की बात करते थे, वह इसलिए कि रामराज्य कर्त्तव्य-निष्ठा और अनुशासन की भित्ति पर खड़ा है। 'मानस' में तुलसी ने जिस रामराज्य का चित्रांकन किया है वहां सर्वोदय और सर्वजनहित का आदर्श विद्यमान है। सभी नर-नारी, बाल वृद्ध, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा अपने-अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत हैं। कोई अधिकार की बात नहीं कहता, दूसरे के कर्तव्य की ओर भी कोई उंगली नहीं उठाता, सब अपने-अपने धर्म को, कर्त्तव्य को पूर्ण आस्था एवं निष्ठा से परिसम्पन्न करते हैं। अच्छी तरह किये गये दूसरे के काम से अपना साधारण-सा काम कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान् होता है—"श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्" (गीता)। जहां कर्त्तव्यनिष्ठा होती है वहां अधिकारों की संप्राप्ति में बाधा नहीं पड़ती। कर्त्तव्यपालन अधिकार प्राप्ति का द्वार खोलता है—"कर्मण्ये-वाधिकारस्ते।" आज हम कर्त्तव्यविमुख होकर अधिकारों का राग अधिक अलापते हैं। पश्चिमी देशों से हमने बहुत-सी बातें सीखीं, परन्तु जो नहीं सीखी, वह है अनुशासन। पश्चिमी देश हम से अधिक अनुशासन प्रिय हैं। वहां रेल या बस में चढ़ने की इतनी भागदौड़ नहीं होती जितनी यहां होती है। हम समय के मूल्य को नहीं समझते, पौरुष को भूल बैठे हैं। नियम, संयम या अनुशासन से दूर होते जा रहे हैं। यदि अनुशासन भारत में कहीं है तो सेना में, जिस पर हमारा गर्वोन्नत होना सहज है। काश! इस प्रकार की कर्त्तव्यनिष्ठा, अनुशासनप्रियता हमारे जीवन में उतर आये। फिर हम अचिरात् उन्नत देशों की श्रेणी में स्थान पा सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म-दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानव-धर्म और असाम्प्रदायिक दृष्टि

उर्दू के प्रसिद्ध कवि डॉ. मुहम्मद इकबाल (१८७७-१९३७) ने अपनी कविता 'तस्वीरे-दर्द' (बांगेदरा) में साम्प्रदायिक भावना की विषाक्तता से भारतवासियों को वर्षों पूर्व सचेत किया था। उस कविता की प्रासंगिकता आज भी विद्यमान है। वह सभी भारतवासियों को सावधान करते हुए कहते हैं—

रुलाता है तेरा नज्जारा ए हिन्दोस्तां मुझको,
कि इबरतख़ेज है तेरा फसाना सब फसानों में।
वतन की फिक्र कर नादां ! मुसीबत आने वाली है,
तेरी बरबादियों के मशवरे हैं आसमानों में।
न समझोगे तो मिट जाओगे ए हिन्दोस्तां वालों,
तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में।
तअस्सुब छोड़ नादां ! दहर के आईना खाने में,
यह तस्वीरें हैं तेरी जिनको, समझा है बुरा तूने।
शजर है फिरका आराई, तअस्सुब है समर उसका,
यह वो फल है कि जन्नत से निकलवाता है आदम को।

(बांगेदरा)

महाकवि की यह चेतावनी आज के साम्प्रदायिक दंगों में जलते-झुलसते भारत के लिए ध्यातव्य है। हम संकीर्ण साम्प्रदायिकता तथा धर्मांधता के प्रवाह में बहकर न केवल अपने आपको वरन समाज तथा देश को भी डुबो सकते हैं। उसकी एकता और अखण्डता का विखण्डन कर सकते हैं, उसकी प्रगति और विकास की गति में अवरोध पैदा कर सकते हैं, उसकी सामाजिक संस्कृति (कम्पोजिट कल्चर) को नेस्तनाबत कर सकते हैं, उसकी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पर बट्टा लगा सकते हैं, उसकी उदारशीलता तथा विशालहृदयता का गला घोट सकते हैं। हमारा वह रास्ता नहीं है जिस पर हिंसा, द्वेष, वैमनस्य का मुराडा लेकर चल रहे हैं, हमारा रास्ता विशाल तथा प्रशस्त है। वह राजमार्ग है प्रेम का, अहिंसा का, समता का, उदारशीलता का, भाईचारे का, बन्धुत्व का, स्नेह और सहानुभूति का। आज जिसे देखते हैं हाथ में ही नहीं जबान में भी छुरी दबाए है। यह मानवता वह नहीं जिसके लिए भारत की विश्व में ख्याति रही है। भारत ने तो दूसरों को भी गले से लगाया है और आज वह अपनों से ही घृणास्पद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार कर रहा है। हम हिंसा नहीं, अहिंसा के धर्म का पालन करने के पैदा हुए हैं। हां, इतना जरूर है कि हमारी अहिंसा हमारी दुर्बलता या कायरता नहीं, यह हमारे पौरुष का, बल का, धैर्य का, सहिष्णुता का, साहस का प्रतीक है। हमने अहिंसा को परम धर्म माना है। यही तो मानव-धर्म है। जब रामकिंकर तुलसीदासजी कहते हैं—

परहित सरिस धरम नहीं भाई।
परपीड़न सम नहीं अधमाई॥

तो वह मानव-धर्म की ही बात कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व रचे गये 'महाभारत' में अहिंसा का विशदता से प्रतिपादन किया है। हमने उसे धर्म माना है जो धारण करता है। मनुष्य को, समाज को अनुशासन, संयम में रखकर व्यवस्थित करता है। वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि जो बाह्य तथा आभ्यन्तरिक अभ्युदय तथा श्रेष्ठता का कल्याणकारी मार्ग है वह धर्म है। मनु ने समस्त प्राणियों में समत्व का धर्म माना है, प्रतीक को धर्म का कारण नहीं माना (समः सर्वेषु भूतेषु न लिंग धर्मकारणम्)। स्मृतिकार ने धर्म के दस लक्षण निर्धारित किये हैं—

धृतिः क्षमादमोस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधादशकं धर्म लक्षणम्॥

धैर्य, क्षम, संयम, अस्तेय, शुद्धता, इन्द्रियनिग्रह, विवेक, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दस धर्म के लक्षण हैं, शाश्वत धर्म-लक्षण भी इन्हें कह सकते हैं। जैन संस्कृति में क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच और संयम को मानव-धर्म कहा गया है। मनुष्य को पशुजाति से पृथक् करने वाला धर्म ही है। नहीं तो आहार, निन्द्रा, भय और मैथुन ये सब बातें मनुष्य और पशु में समान पाई जाती हैं। जिस मनुष्य में धर्म नहीं वह पशु के समान ही है—

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः॥

(हितोपदेश)

श्रीमद्भागवत पुराण में भक्त कहता है मुझे मोक्ष नहीं चाहिए। मुझे साम्राज्य भी नहीं चाहिए। जो दुखी जीव है उनके दुःख का निवारण कर सकूं, यही मानव-धर्म है। मनुष्य मनुष्य के सुख-दुःख में सहायक हो, उसमें दूसरों के प्रति करुणा, सहानुभूति की भावना हो और सभी के प्रति समता, भाईचारे का भाव हो। जो दूसरे का शोषण कर सुख-सुविधाओं का साम्राज्य जुटाता है वह मनुष्य कहे जाने का अधिकारी नहीं। दूसरे को अभावार्णव में धकेलकर स्वयं सुख चैन से रहना मानवीय व्यवहार नहीं कहा जा सकता। गुरुनानक शोषण के विरुद्ध थे। उन्होंने कहा है—"जो मनुष्य झूठ बोलकर दूसरों का हक मारता है तथा इसके विपरीत समझता है ऐसे उपदेशकर्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की कलई खुल जाती है। वह स्वयं तो ठगा ही जाता है अपने साथियों को भी लुटवाता है। यदि कपड़े पर खून लग जाए तो वह अपवित्र हो जाता है परन्तु जो मनुष्य का खुन पीते हैं—दूसरों का शोषण करते हैं उनका चित्त किस प्रकार निर्मल रह सकता है!" कहते हैं गुरुनानक ने धनी व्यक्ति के यहां उस समय भोजन करने से मना कर दिया था जब उसकी पूड़ियों को हाथ में लेकर दबाया तो उनसे खून टपकने लगा था। यह थी उस धनी व्यक्ति की शोषणार्जित कमाई। शोषण धर्म के, मानवता के प्रतिकूल है। अहिंसा, शान्ति, आन्तरिक पवित्रता, सह-अस्तित्व, मानवीय एकता साम्प्रदायिक सद्भावना, प्रेम, करुणा, संयम, मानवधर्म है। भाषा जाति, सम्प्रदाय, प्रान्त से ऊपर उठकर शोषण-विहीन समाज की संरचना करना मानव-धर्म है। मंदिर-मस्जिद या गुरुद्वारे में जाना धर्म का बाह्य रूप है, इसमें भेद हो सकता है, लेकिन धर्म के आन्तरिक स्वरूप में कोई भेदभाव नहीं, वहां समानता है। कुरान शरीफ में कहा गया है—

नेकी यह नहीं कि तुम अपने चेहरे को पूर्व की ओर करो या पश्चिम की ओर, बल्कि नेकी यह है कि आदमी अल्लाह को माने—सच्चे दिल से उसकी सत्ता में विश्वास करे, अन्तिम दिन (न्याय के दिन) को और फरिश्तों को, अल्लाह की भेजी हुई किताब (कुरान शरीफ) को तथा उसके संदेशवाहक (पैगम्बर साहब) को माने। और अल्लाह के प्रेम में अपना धन खर्च करे, उसे नातेदारों पर, अनाथों पर, निर्धनों पर, मुसाफिरों (भिखारियों) पर सहायतार्थ हाथ फैलाने वालों पर, गुलामों (दास) की रिहाई पर खर्च करे। नमाज पढ़े और दान दे, खैरात करे। और नेक वे लोग हैं जो वचन दें, उसे पूरा करें और तंगी-विपत्ति के समय में, सत्य और असत्य के युद्ध में धैर्य रखें।"

जब हम भारत की दिशा का अवलोकन करते हैं तो देखते हैं लोगों में अनास्था, अविवेक, अनैतिकता, द्वेष, ईर्ष्या, वैर, अश्रद्धा, अहिंसा, संकीर्ण साम्प्रदायिकता का ही विस्तार मिलता है। यह सच्चा भारत नहीं है। जो भारत नैतिकता-विहीन हो वह असल भारत नहीं। आज आस्था तथा नैतिकता का अभाव है। दूसरी ओर भारत में राजनीति भी अनैतिकता के सहारे खड़ी है। नैतिकता शून्य राजनीति, हितकर नहीं होती। आज जो आदमी धार्मिक दिखाई देता है, उसमें नैतिकता का अभाव है। हवा कुछ ऐसी चल रही है कि लोग धर्म और राजनीति को एक कर रहे हैं। राजनीति में नैतिकता हो, धर्म हो तो ठीक है, लेकिन धर्म को राजनीति में शामिल करना खतरनाक होता है। धर्म के नाम पर—'इस्लाम खतरे में है' या 'हिन्दू धर्म खतरे में है' ऐसे नारे लगाकर वोट की राजनीति चलाना देश के हित में नहीं कहा जा सकता। हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा बुरी बात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। जहां ८० प्रतिशत हिन्दू रहते हों उस देश को "हिन्दू राष्ट्र" का अभिधान देना अनुचित नहीं कहा जा सकता। लेकिन हमें हिन्दू को व्यापक अर्थ देना होगा। 'हिन्दू का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय के साथ नहीं है। उसका सम्बन्ध समाज, संस्कृति, राष्ट्रीयता अथवा भारतीयता के साथ है।'[1] युवाचार्य महाप्रज्ञ की यह उदार दृष्टि हिन्दुत्व को भारतीयता या राष्ट्रीयता का पर्याय मानती है। उनका यह कथन भी पूर्णतः सत्य है कि सम्प्रदाय का सम्बन्ध अपनी अपनी धार्मिक मान्यता से जुड़ा होता है। मातृभूमि या राष्ट्रीयता से उसका सम्बन्ध नहीं है—हर सम्प्रदाय अपने लिए स्वतन्त्र राष्ट्र या स्वायत्त शासन की कल्पना संजोए हुए है। यदि वह मानसिकता आकार ले ले तो किसी विशाल राष्ट्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती ?"[2] साम्प्रदायिकता ने भारत का जितना अहित, अनिष्ट किया उतना किसी देश का नहीं किया। हिन्दू-मुसलमान दोनों की कट्टर साम्प्रदायिक भावना का परिणाम देश के विभाजन के रूप में सामने आया और १९४७ के पश्चात् से आज तक भारत में असंख्य बार, अनेक नगरों-गांवों में साम्प्रदायिक दंगे होते रहे हैं आज भी हो रहे हैं। उन दंगों में दोनों सम्प्रदाय के लोगों की बहुमूल्य जानें गईं, उनके मकान, दूकान सब अग्निकाण्ड में जलकर राख हो गए। भारत में साम्प्रदायिकता का विष बड़ा भयानक है। वह 'AIDS' एड्स की भांति जानलेवा रोग बन चुका है। जाति, साम्प्रदाय एक फुटबाल की गेंद बने हुए हैं राजनीति के खेल में। भारत की राजनीति में उन लोगों का अभाव खटकता है जो चरित्र, ज्ञान, दृष्टि (Vision) और योग्यता (Calibre) से सम्पन्न होते हैं। राजनीति नैतिकताविहीन होने से संहारक, अनिष्टकारी बन जाता है। उसमें निरंकुशता होती है। धर्म को राजनीति में खींचतान लाने वाले स्वयं तो धर्म से दूर होते हैं और लोगों को धर्म के नाम पर लड़वाते हैं। रामजन्मभूमि का प्रश्न भी राजनीति ने उलझाकर रख दिया, वरना राममंदिर बनाने पर भला किसे एतराज होता। राम तो भारत की अस्मिता के प्रतीक हैं। भारतीयता में जो श्रेष्ठता है वह राम के बजूद के कारण ही है। डाक्टर इकबाल ने ठीक कहा है—

है राम के वुजूद पे हिन्दोस्ता को नाज,
अलहे-नजर समझते हैं उसको इमामे-हिन्द।
एजाज इस चिरागे-हिदायत का है यही,
रोशनतर अज सहर है जमाने में शामे हिन्द।
तलवार का धनी था, शुजाअत में फर्द था,
पाकीजगी में, जोशे-मुहब्बत में फर्द था।

१. आमंत्रण आरोग्य को—युवाचार्य महाप्रज्ञ, पृ० ७०
२. आमंत्रण आरोग्य को—युवाचार्य महाप्रज्ञ, पृ० ७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुलसीदास ने इसलिए कहा है—

सीय राम मय सब जग जानी,
करहु प्रनाम जोरी जुग पानी।

राम तो भारत के कण-कण में विराजमान हैं। उन्होंने कहा था कि मैं न तो बैकुण्ठ में हूं, न योगियों के हृदय में हूं, जहां कहीं मेरा भक्त मुझे पुकारता है, मेरा नाम लेता है मैं वहीं हूं। राजनीति के खिलाड़ी राम के कंधे पर बंदूक रखकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। राजनीति में जब तक नैतिकता नहीं आयेगी तब तक इस देश से साम्प्रदायिकता का विष दूर नहीं होगा। आप गांधीजी के व्यक्तित्व को देखिए—वह आपादमस्तक धर्ममय है, नैतिकता से सराबोर है। वह राजनैतिक पुरुष थे, मगर उनकी राजनीति नैतिकता की बैसाखी के सहारे चलती थी, उनका रोम-रोम धर्ममय था तभी तो उनके मुख से अन्तिम सांस लेते 'राम' शब्द निकला जबकि बड़े-बड़े महान योगी, ध्यानी अन्तिम समय में राम का नाम नहीं ले पाते, उनके मुख से राम उच्चरित नहीं हो पाता।

गांधीजी की समाधि भी धर्म और नैतिकता का प्रतीक है, राष्ट्रीयता का शुभ्रतम स्वरूप तो वह है ही। उनकी समाधि पर उकेरा गया है—

Commerce without Ethics
Pleasure with conscience
Politics without principle
Knowledge with Charactor
Science with humanity
Wealth without work
Worship without sacrefice

यह भारतीय संस्कृति के मूल्य हैं। आज हम गांधीजी द्वारा निर्दिष्ट सात पापों से अपने को बचाकर नहीं रख पा रहे हैं। गांधीजीने तो धूल से उठाकर लोगों को मानव बनाया। हम एक तरफ भाषा विवाद खड़ा करते हैं, दूसरी तरफ प्रान्तीयता की, क्षेत्रीयता की भावना को हवा देते हैं, तीसरी तरफ जातिवाद का परचम फहराते हैं और लोगों से कहते हैं कि राष्ट्रीय एकता को मजबूत करो। राष्ट्रीय एकता की जड़ों को हम खुद कमजोर बनाएंगे तो राष्ट्रीय एकता कहां से आ पायेगी। यह कोई ईंट गारे से तैयार नहीं होती, यह तो लोगों के अन्तःकरण की सारस्वत भावना है। हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की जिसका अर्थ मनमानी करना नहीं, ऐसा करके हम अपनी लम्बे संघर्ष से अर्जित स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकेंगे। स्वतंत्रता यानी 'इण्डिपेंडेंट का अर्थ है 'इन्टर-डिपेंडेंट'; हम एक-दूसरे पर निर्भर हैं, एक प्रान्त दूसरे प्रान्त पर, एक जाति दूसरी जाति पर, एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योजना दूसरी योजना पर निर्भर है। एक-दूसरे पर निर्भर रहकर साथ-साथ सहयोग करके, एक दूसरे का हित-सम्पादन करके हम अपने आप को, अपने समाज को, अपने राष्ट्र को समृद्ध, उन्नत और महान बना सकते हैं। हमें अपने मन से बर्बरता, हिंसा, द्वेष, वैरभाव, घृणा को निकालकर अपना तथा अपने देश का "आर्यीकरण"[1] करना चाहिए। "यह भारत ही है जो सम्पूर्ण विश्व के लिए भविष्य धर्म का अवदान देगा, सनातन धर्म सभी धर्मों को एकाकार करके, उनमें समस्वरता पैदा करके, दर्शन और विज्ञान को समन्वित करके विश्व में एकात्म की प्रतिष्ठा होगी। नैतिकता के क्षेत्र में उसी का दायित्व है कि वह मानवता से म्लेच्छता और बर्बरता को निकालकर विश्व को आर्य बनायेगा। ऐसा करने के लिए सबसे पहले उसे अपना आर्यीकरण करना होगा।"[2]

साम्प्रदायिक दृष्टि असहिष्णु होती है। जहां सहिष्णुता होती है वहां औदार्य दृष्टि होती है और जो उदारचेता होता है उसमें अपने-पराये की संकीर्णता नहीं होती। उसका हृदय विशाल होता है, विचार महान होते हैं। आज हमारे देश में जो राजनीति है, जो सम्प्रदाय हैं, जो जातियां हैं उनमें सहनशीलता का अभाव है। सहनशीलता में सह-अस्तित्व की भावना विद्यमान रहती है। जब हम सर्वधर्मसमन्वय या सर्वधर्मसद्भाव की बात कहते हैं तो उस समय हम सहिष्णुता की, सह-अस्तित्व की ही भावना को अभिव्यक्त करते हैं। साम्प्रदायिक या जातीय भेदभाव होना स्वाभाविक है, बुरा नहीं बशर्ते कि उनमें दूसरों के प्रति विरोध न हो, समभाव की दिशा हो। समभाव विरोध या प्रत्याख्यान करता है और सद्भाव का विकास करता है। सद्भाव के गवाक्ष खोलने की आज अत्यधिक आवश्यकता है। आचार्यश्री तुलसी ने हमारे सामने धर्म-समन्वय की पंचसूत्री रूपरेखा प्रस्तुत की जो बड़ी सार्थक और उपयोगी है—

१. मंडनात्मक नीति बरतना और अपनी मान्यता का प्रतिपादन करते समय दूसरों पर मौखिक या लिखित आक्षेप न लगाएं।

२. दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता बनाए रखें।

३. किसी सम्प्रदाय के प्रति घृणा व तिरस्कार की भावना का प्रचार न करें।

४. सम्प्रदाय या धर्म परिवर्तन के लिए दबाव न डालें।

५. धर्म के मौलिक तथ्य—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन व्यापी बनाएं।

---

१. कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

२. उत्तर योगी—डॉ. शिवप्रसादसिंह, पृ० १२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्भाव, सहिष्णुता, मैत्री, उदारता के सहारे हम बढ़ती साम्प्रदायिकता का प्रशमन कर समाज को, राष्ट्र को विनाश के कगार पर जाने से बचा सकते हैं। आज पारस्परिक सहयोग की, पारस्परिक हित-सम्पादन की महती आवश्यकता है। हमारे अन्दर मताग्रह इतना बढ़ गया है कि वह अज्ञानता के गर्त में ढकेलता जा रहा है। दूसरों को हम अपने समान समझने को तयार नहीं, हमारे अन्दर आत्मोपम्य दृष्टि का अभाव है। गीता में कृष्ण का उपदेश है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ (६-३२)

अर्थात् जो व्यक्ति अपने भांति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख या दुख को भी सब में सम देखता है वह परम श्रेष्ठ है। इस प्रकार की आत्मोपम्य दृष्टि रखने वाले सत्पुरुष का अभाव हमें बार-बार उस समय अधिक खटकता है जब हिंसात्मक उपद्रव होते हैं, मनुष्य मनुष्य का खून बहाने को उतारू होता है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः,' ऐसे ज्ञानीजन की हमें आवश्यकता है, महती आवश्यकता है।

'अथर्ववेद' में बहुत ही सुन्दर मंत्र है जिसमें कहा गया है कि मैं तुम को एक हृदयवाला और एक मन वाला और आपस में द्वेष न रखने वाला सिरजता हूं। तुम सब एक-दूसरे से मिलने के लिए प्रेम से खिचकर चले आओ जैसे अपने बछड़े की तरफ गाय दौड़ी हुई आती है।

सहृदयं सौमनस्यमविद्विषं कणोमिषः
कन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जाम्लमिवाधन्या।

हमारे अन्दर सौमनस्या का अभाव है, सौहार्द का अभाव है। जितना अधिक द्वेष, वैरभाव, दूरी, पृथकतावादी दृष्टि रहेगी उतना ही अधिक समाज और राष्ट्र के सामने समस्याएं जटिल होती जायेंगी। मैथिलीशरण गुप्त की वाणी आज भी सार्थक और परमोपयोगी है—

उत्पीड़न अन्याय कहीं हो, दृढ़ता सहित विरोध करो।
किन्तु विरोध पर भी अपने, करुणा करो, न क्रोध करो।

० ० ०

न तन-सेवा न मन-सेवा, न जीवन और धन-सेवा।
हमें है इष्ट जन-सेवा सदा सच्ची भुवन-सेवा॥

० ० ०

आकृति वर्ण और बहु भेष, ये सब निज वैचित्र्य विशेष।
डालो अन्तर्दृष्टि निमेष, देखो अहा! एक ही प्राण,
विश्व-बन्धुता में है त्राण।

बुद्धिजीवी वर्ग यदि एकजुट होकर घृणा, द्वेष, हिंसा, उपद्रव मचाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाली शक्तियों का देश-समाज विरोधी तत्त्वों का खुलकर विरोध करें और राजनेता भी उनके स्वर में स्वर मिलायें तो कोई कारण नहीं हम उन तामसिक तथा राक्षसी शक्तियों पर विजय न पा सकें। बुराई का, अन्याय का विरोध न करने से बुराई और अन्याय उग्रता से फैलते हैं। हमने देख लिया है कि घृणा करने से, अपने सामने दूसरों को नीच-हीन या अस्पृश्य समझने से देश को, समाज को, स्वयं मानव जाति को कितनी हानि हुई है। "भारत की अधोगति पर उसी दिन मुहर लग गयी जिस दिन हमने 'म्लेच्छ' शब्द का आविष्कार किया और दूसरों से सम्पर्क तोड़ लिया।"—(स्वामी विवेकानन्द)। निरभिमानी बनकर चलने से हम निकृष्ट और अनिष्टकारी तत्वों पर, समाज विरोधी तत्त्वों-शक्तियों पर विजय पा सकते हैं। योगीराज अरविन्द ने भारत के पांच स्वप्न देखे थे—(१) भारत को पुनः एक होना होगा, क्योंकि खंडित रहकर वह अपना दैव निर्दिष्ट नहीं कर पायेगा। (२) भारत की स्वतंत्रता अफ्रीका और एशिया के परतंत्र देशों के लिए स्वाधीनता का द्वार बनेगी, अर्थात् प्रत्येक स्वतंत्रता-संग्राम में भारत को जूझती हुई जनता का साथ देना होगा। (३) एक विराट मानवसंघ की स्थापना जो समस्त मानवजाति को एक सूत्र में बांध सके। (४) भारत जगत् को अपनी आध्यात्मिकता का उपहार देने में समर्थ होगा। (५) मानव चेतना के विकास का नया चरण। उनके ये सपने थे, लेकिन उन्हें संकल्प कहना उचित होगा। जब भारत भौतिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न होगा तभी उसके विकास को सर्वांगीण विकास कहा जायेगा और इस सर्वांगीण विकास की मंजिल मानव-धर्म का सम्बल लेकर ही तय की जा सकती है, साम्प्रदायिकता की संकीर्ण गलियों, मताग्रह की तंग पगडंडियों से नहीं। हिंसक हुंकारों से तो कलिंग को भी नतमस्तक होना पड़ा था, (प्रसाद)। भारत और मानवता की विजय समन्वय के सूत्र में बन्धन से होगी, अनाग्रही दृष्टि को त्यागने से होगी। मानव-धर्म से ही हम त्राण पा सकते हैं। अहिंसा, बन्धुत्व, सह-अस्तित्व की बन्द खिड़कियों को खोलना होगा। न साम्प्रदायिक कट्टरता अच्छी है, अहितकर है और न सम्प्रदायवाद अच्छा है, उन्हें तो त्यागना ही होगा। हमारी मुक्ति प्रीत में है (डा० इकबाल) और महावीर गांधीजी की अहिंसा में है—"सव्वे पाणा ण हंतव्वा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन और गीता

जैनदर्शन की गीता से तुलना करना हो सकता है किसी को समीचीन व प्रिय न लगे, क्योंकि गीता ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन, उसकी अवतार लीला का समर्थन करती है, जबकि जैन दर्शन में न तो ईश्वर की सत्ता स्वीकार है और न वहां भगवान को अवतरित होना मान्य है। परन्तु यह सब होते हुए भी जैनदर्शन और गीता में भी आत्मा को अक्षुण्ण माना गया है, दोनों में शरीर को नाशवान कहा गया है। गीता का प्रतिपाद्य अर्जुन के संदेह का, मोह का निवारण करना है। 'महाभारत' का अंश है गीता। कौरव और पांडवों की सेनाएं युद्धभूमि कुरुक्षेत्र में आमने-सामने डटी है। कृष्ण अर्जुन के सारथी हैं। अर्जुन, यह देखने के लिए कि मेरे सामने कौन-कौन युद्ध करने आये हैं, कृष्ण से अपना रथ युद्धभूमि के बीच खड़ा करने को कहते हैं। कृष्ण ने अर्जुन का रथ युद्ध-भूमि में ले जाकर खड़ा कर दिया, अर्जुन ने चारों ओर नजर दौड़ाई, देखा, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, दुर्योधन और अनेकों बन्धु-मित्र-परिजन सामने खड़े हैं। ये सब मुझसे लड़ने आये हैं और मुझे इन सब पर सर-संधान करना है, इन सब से युद्ध करना है। उसे चक्कर आ जाता है, सिर पकड़कर रथ में बैठ जाता है और जब कृष्ण उनसे पूछते हैं कि क्या हुआ तो कहता है "मैं यह युद्ध नहीं करूंगा, अपने बन्धु-परिजनों की हत्या नहीं करूंगा।" तब कृष्ण उन्हें उपदेश देते हैं जो गीता के रूप में विद्यमान है। कृष्ण अर्जुन के मोह को नष्ट करते हैं और उसे शरीर की नश्वरता तथा आत्मा की अमरता का उपदेश देते हैं। सकल प्राणियों में आत्मा मरण-रहित है, शरीर का बध होने पर भी आत्मा का वध या नाश नहीं हो सकता। कृष्ण कहते हैं—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (२,२०)

अर्थात् यह आत्मा न तो कभी जन्मती है और न मरती ही है। ऐसा भी नहीं कि एक बार होकर फिर होने की नहीं। यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है एवं शरीर का वध भी हो जाए तो भी मारी नहीं जाती।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२,२२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् जिस प्रकार कोई मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए ग्रहण करता है, उसी प्रकार देही अर्थात् शरीर का स्वामी आत्मा पुराने शरीर व्याग कर दूसरे नये शरीर धारण करती है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ (२,२३)

अर्थात् आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसे आग जला नहीं सकती, वैसे ही इसे पानी भिगो या गीला नहीं कर सकता, वायु भी इसे सुखा नहीं सकती।

और जैनदर्शन में आत्मा के विषय में कहा गया है कि शुद्ध आत्मा में चतुर्गतिरूप, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक तथा कुल, योनि, जीव-स्थान और मार्गणास्थान नहीं होते। 'समणसुत्तं' (१८२)। आत्मा एक अमूर्त पदार्थ है। उसका आकार अणुव्रत है या शरीर विशेष पर निर्भर है। सम्पूर्ण शरीर पर उसक अधिकार होता है, शरीर में व्याप्त होने के कारण उसका आकार शरीर के आकार के साथ संवर्धनशील होता है। बाल्यावस्था को पार करके यौवनावस्था को प्राप्त करने तक शरीर का विकास होता है उसी प्रकार आत्मा का भी विकास होता है[1] और वृद्धावस्था में शरीर के शिथिल होने के साथ आत्मा में भी शिथिलता आ जाती है। आत्मा चूंकि शरीर के प्रत्येक भाग में अवस्थित है, अतः सुख-दुःख का प्रभाव शरीर के एक भाग पर ही नहीं पड़ता, पूरे शरीर पर पड़ता है और आत्मा भी उससे प्रभावित होती है। दुःख में शरीर निर्बल, मलिन और निष्प्रभ व कांतिहीन हो जाता है तो आत्मा भी कांतिहीन, निर्बल, मलिन होती है। उसी प्रकार शरीर के उल्लसित, सुखी होने पर आत्मा भी सुखी होती है, उसकी शक्तियां विकसित होती है। आत्मा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, लेकिन शरीर के विनाश होने पर आत्मा का विनाश नहीं होता। 'ज्ञानार्णव' में कहा गया है—

अयमात्मा स्वभावेन शरीरादेर्विलक्षणः।
चिदानन्दमयः शुद्धो बन्धं प्रत्यैक्यवानपि॥ प्रकरण (२,९४)

अर्थात् यह आत्मा स्वभाव से, शरीर आदि से भिन्न है, क्योंकि वह चेतना, आनन्दस्वरूप, शुद्ध और बन्ध के प्रति एक होकर भी वस्तुतः एक नहीं है। अतः आत्मा शरीर से भिन्न है, दोनों का स्वभाव भिन्न है, आत्मा

१. ईसाई धर्म को न मानने वाले यूनान व रोमवासियों का यह विश्वास था कि मनुष्य की आत्मा का आकार शरीर के आकार-मात्र है, शरीर में परिवर्तन व वृद्धि होने के साथ-साथ आत्मा के आकार में भी परिवर्तन व वृद्धि होती रहती हैं। —जे० डब्लू० ड्रेपर : दि कन्फ्लिट बिटवीन रिलीज़न एण्ड साइन्स।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानानन्दमय है और शरीर ज्ञानानन्द से विहिन है। शरीर अशुद्ध है, आत्मा शुद्ध है। 'समाधिशतक' (६३,६६) में कहा गया है कि वस्त्र के सघन, जीर्ण, नष्ट अथवा रक्त होने पर उसे धारण करने वाला मनुष्य जिस प्रकार आत्मा को, अपने को सघन, जीर्ण, नष्ट अथवा रक्त नहीं मानता, उसी प्रकार शरीर के सघन, जीर्ण, नष्ट अथवा रक्त होने पर मनुष्य आत्मा को जीर्ण या नष्ट नहीं समझता। शरीर मरण को प्राप्त करता है परन्तु आत्मा को मरण का कोई भय नहीं।

आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रान्तरग्रहम ॥

—समाधिशतक, ६६

चित्त की वृत्तियों का निरोध योग कहलाता है—योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः (योग दर्शन) उस समय आत्मा अपने स्वरूप में स्थिर हो जाती है। गीता में योग की स्थिरता को व्यक्त करते हुए दीपक की उपमा दी गई है। जैसे वायु के बिना, आवेग के बिना दीपक स्थिर रहता है वैसे ही योगी का चित्त बिना चंचलता के स्थिर रहता है (गीता ६-१९)। 'ध्यान शतक' (७९-८०) में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है कि घर में वायु रहित दीपक स्थिर रहता है एकत्व-वितर्क-अविचार शुक्ल ध्यान भी स्थिर रहता है। गीता में कहा गया है कि जिस समय सकल वासनाओं की इच्छा से मुक्त होकर साधक का अचल चित्त आत्मा में स्थिर हो जाता है, उस समय उसे योग-युक्त कहते हैं। योगाभ्यास से निरुद्ध चित्त जिस समय स्थिर होता है, उस समय वह आत्मा अपनी आत्मा को आत्मा द्वारा साक्षात् देखता है, आत्मा में ही संतुष्ट होता है। (६.१९-२०)। 'ज्ञानार्णव' में कहा गया है कि जिस साधु का चित्त कामभोगों से विरक्त होकर एवं शरीर के मोह से मुक्त होकर स्थिर हो गया वही ध्याता प्रशंसा का अधिकारी है (प्रकरण ५.३)। राग के क्षीण, द्वेष और मोह के नष्ट होने पर यदि चित्त अपने स्वरूप-साधन में लगता है तो वही सिद्धि है। मोह कर्दम के नष्ट होने पर, रागादि परिणामों के नष्ट होने पर योगीजन अपने ही परमात्मा-स्वरूप का अनुभव व ध्यान करते हैं। (ज्ञानार्णव, त्रयोविंश प्रकरण १०-११)। 'समाधितंत्र' (७५) में इस बात का उल्लेख है कि अपनी आत्मा ही अपने लिए जन्म को, जन्म-मरण वाले संसार को प्राप्त करती है, इसलिए अपनी आत्मा ही अपना गुरु, हितोपदेश देने वाला बन्धु है और कोई गुरु नहीं—

नयत्यात्मानमात्मैं व जन्म निर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मैन्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥

और गीता में कहा गया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।। (६,५)

अर्थात् आत्मा को, मनुष्य को अपना उद्धार आप ही करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य (आत्मा) स्वयं ही अपना बन्धु है, अपना सहायक व मित्र है, वह स्वयं ही अपना शत्रु है, कोई दूसरा अपना बन्धु या शत्रु नहीं है। आगे कहा गया है कि जिसने अपने आप को जीत लिया वह स्वयं अपना बन्धु है, परन्तु जो अपने आप को नहीं पहचानता वह स्वयं अपने साथ शत्रु के समान व्यवहार करता है—

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।। (६,६)

भगवान महावीर कहते हैं—

अप्पा कत्तावित्ता य दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तं ममित्तं य दुप्पट्ठिय सुपट्ठिय ।।

उत्तराध्ययन सूत्र २०/३७

मनुष्य स्वयं अपने दुःख-सुख कर्त्ता-विकर्त्ता है। दुष्प्रस्थित और सुप्रस्थित जीव अपना-अपना मित्र और शत्रु स्वयं है।

जैनदर्शन के आचार्य उमास्वाति कहते हैं—सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चरित्र मोक्ष मार्ग है, तत्वश्रद्धा सम्यक्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बाद सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति होती है। गीता में श्रद्धा व ज्ञान पर काफी बल दिया गया है। जितेन्द्रिय पुरुष श्रद्धा के द्वारा ज्ञान अर्जित करता है और शांति प्राप्त करने में सफल होता है। ज्ञान और श्रद्धा से विहीन मनुष्य लोक-परलोक का भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता—

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति मचिरेणाधिगच्छति ।। (४,३९)
अज्ञ श्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।। (४,४०)

अर्थात् जो श्रद्धावान पुरुष इन्द्रियसंयम करके उसी के पीछे पड़ा रहे, उसे भी यह ज्ञान मिल जाता है और ज्ञान प्राप्त होने से तुरन्त ही उसे परम-शांति प्राप्त हो जाती है। परन्तु जिसे न स्वयं ज्ञान है और न श्रद्धा ही है उस संशयग्रस्त मनुष्य का विनाश हो जाता है। संशयग्रस्त को न यह लोक है और न परलोक है, न सुख ही मिलता है।

भगवान महावीर ने शरीर को अनित्य कहा है—इमं सरीरं अणिच्चं''। गीता में जन्म-मरण को अविनाभावी माना गया है (२,२७)। जैनदर्शन में इसे उत्पन्न होना, नष्ट होना और अस्तित्व में रहना, त्रिपदी तत्त्व कहा गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। यही सृष्टि, प्रलय और अस्तित्व तत्त्व है। भगवान महावीर कहते हैं कि शरीर एक नौका है और इसे तब तक नहीं छोड़ा जा सकता जब तक तट के पार नहीं पहुंच जाते। अतः इस शरीर से नौका का काम लो, क्योंकि पार होना है। आत्मा नाविक है और शरीर नौका है। अतः शरीर का उचित और पूरा उपयोग करना चाहिए—

सरीरमाहु नावत्ति जीवो वुच्चई नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो॥

गीता के अनुसार प्रज्ञा को बुद्धि के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। आत्मा और अनात्मा के विवेक से उत्पन्न ज्ञान ही प्रज्ञा है। जैनदर्शन में प्रज्ञ, महाप्रज्ञ आदि के प्रयोग मिलते हैं। प्रज्ञा को 'इन्द्रियज्ञान से प्राप्त प्रत्ययों का विवेक करने वाली बुद्धि से परे का ज्ञान' माना गया है। जैनदर्शन के अनुसार इन्द्रियों के विषयों को रोकना कठिन है, राग-द्वेष को अवश्य रोका जा सकता है। गीता कहती है कि योग का कर्म मन, बुद्धि, इन्द्रियां या शरीर से होता है। यहां ममत्व, प्रिय-अप्रिय, राग-द्वेष नहीं। जहां राग-द्वेष होता है वहां इन्द्रिय, मन, बुद्धि दृष्टा न होकर बन्धन कर्त्ता बन जाते हैं। गीता में ब्रह्म को न सत् कहा गया है और न असत् कहा गया है। वह दूर भी है और निकट भी है, वह चल और अचल दोनों है। यह चिन्तन जैनदर्शन के अनेकांतवाद से मेल खाता है। अनेकांत-दृष्टि भी वस्तु को अनेकधर्मी मानकर चलती है। किसी एक के प्रति कोई दुराग्रह यहां नहीं रहता। महावीर ने कहा, वस्तु के अनन्त धर्मों और पर्यायों को अनन्त चक्षुओं से देखो। उन्हें किसी एक ही चक्षु से मत देखो। जो व्यक्ति वस्तु-सत्य को एक चक्षु से देखता है वह अपने स्वीकृत सिद्धांत का समर्थन और दूसरों की स्वीकृतियों का खण्डन करता है। 'समाधिशतक' (३१) में कहा गया है कि जो परमात्मा है, वह मैं हूं, जो मैं हूं वही परमात्मा है। मैं ही मेरे द्वारा उपासनीय हूं। अन्य कोई मेरा उपास्य नहीं, यही वस्तुस्थिति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म और भावनात्मक एकता

थामस पेन का विचार है—"यदि प्रत्येक व्यक्ति से अपने धर्ममत की परीक्षा करने को कहा जाए, तो कोई भी धर्म बुरा सिद्ध न होगा। किन्तु, यदि उनसे एक-दूसरे के धर्म-मतों की परीक्षा करने को कहा जाए तो विश्व में कोई भी धर्म दोष-रहित न मिलेगा। इसलिए जहां तक धर्म की विभिन्न संस्थाओं का प्रश्न है, या तो सारा संसारा ठीक है या सारा संसारा गलत है।" यह दृष्टि-भेद का कारण है। हम भेद-अन्तर को लेकर चलेंगे तो भेद-अन्तर सर्वत्र नजर आएगा और यदि एकता-समन्वय को लेकर बढ़ेंगे तो एकता-समन्वय का संसार चारों ओर नजर आएगा। यह दुराग्रह का, ईर्ष्या-द्वेष का, राग-विराग का, काम-क्रोध का तमाशा है। संघर्ष तथा अशांति के यही कारण हैं। हम मताग्रही हैं, लोभ-मोह में फंसे हैं, अतः परिग्रहवादी हैं, हिंसावादी हैं। जैनधर्म समन्वयवादी धर्म है, वहां मताग्रह नहीं समता-भाव हैं महावीर ने जब 'ना हिंस्वात्' की बात कही तो उसके पीछे 'सर्वभूतेषु आत्मवत्' की उदार दृष्टि फैली हुई थी। महावीर ने आचारांग सूत्र' (१-५५) में स्पष्ट कहा—"अरे मनुष्य! जिसे तू मारना चाहता है, वह भी तेरे जैसा ही सुख-दुःख का अनुभव करता है, जिस पर शासन करना चाहता है या जिसे दुःख देना चाहता है वह भी तेरे जैसा ही प्राणी है। जिसे तू अपने वश में करना चाहता है, जिसे मृत्यु के मुंह में धकेलना चाहता है वह भी तेरे जैसा प्राणी है।" परन्तु आज हम अपनी आंखों पर मताग्रह के, हिंसा के, परिग्रह के, मोह-लोभ के काले चश्मे चढ़ाए हैं इसलिए वस्तु के वास्तविक धर्म को ठीक-ठीक देख नहीं पाते। अपने आप को ही सब कुछ समझ बैठे हैं। विचार-वैभिन्य हमें सहन नहीं; बस स्थिति यह है कि यदि हम दिन को रात कहें तो दूसरे को सहमति में सिर हिलाकर कहना चाहिए कि हां सरकार चांद-तारे भी चमक रहे हैं—

खिलाफे राय सुलतां राय जुस्तन, बखूने खेश बाशद दस्त शुस्तन।
अगर शाह रोज रा गोयद शबस्ती, बबायद गुफ्त ईनक माह परवी।

—शेखसादी

और आज हम देख रहे हैं कि ऐसी जी हुजूरी करने वाले, 'हां' में 'हां' मिलाने वाले अपने स्वार्थांध दूसरों के अविवेक-सम्मत दृष्टिकोण को, उनके दुराग्रह को नतमस्तक स्वीकार करते हैं। महावीर ने दूसरों की दृष्टि से देखने-समझने की बात भी कही है जो उनके अनेकान्तवाद-स्याद्वाद दर्शन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्निहित है। जैनधर्म की यह एक मौलिक देन है। जहां हम अहिंसा के द्वारा दूसरे को आत्मवत् देखते हैं, सर्वत्र मैत्री का रंग बिखरा पाते हैं, सभी प्राणियों की रक्षा करने, उन पर दया करने की बात कहते हैं वहां अनेकांत-वाद द्वारा दूसरों के मत को समझने-परखने, उस पर सहानुभूतिपूर्ण उदारता से विचार-विमर्श करने के भाव भी विराजमान पाते हैं। अनेकांत जैनधर्म की समन्वयवादी दृष्टि है। यहां तामसिक मनोवृत्ति का शमन होता है और सत्य का, विवेक का, ज्ञान का सर्वग्राही मार्ग विकसित होता है। इसीलिए दूसरी शताब्दी में आचार्य समन्तभद्र ने महावीर के धर्म को 'सर्वोदय तीर्थ' कहा है—"सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव"। मनुष्य को जब सम्यग्ज्ञान की संप्राप्ति होती है, जब उसकी दृष्टि सम्यक् हो जाती है, या जब उसमें सम्यग्ज्ञान-चरित्र का उदय होता है तभी मोक्ष की सिद्धि हो सकती है—'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः'।

ज्ञानी होना अहिंसक होना है। जो अहिंसक या अनेकान्तवादी होता है वह ईर्ष्या-द्वेष से, राग-विराग से, मान-अपमान से दूर रहता है; उसकी दृष्टि में कोई दुराग्रह नहीं होता। दुराग्रही को एकता नहीं, विषमता नजर आती है। कृष्ण के आदेश पर जब दुर्योधन और युधिष्ठिर भिन्न दिशाओं में जाकर गुणी व्यक्ति की खोज में निकले तो दुर्योधन को कोई गुणी ही नजर नहीं आया और युधिष्ठिर को कोई अवगुणी दिखाई नहीं दिया। युधिष्ठिर को सब किसी न किसी गुण से सम्पन्न दिखाई दिए। कारण यह था कि दुर्योधन की दृष्टि में अवगुण ही देखने की भावना थी, वह अभिमानी था, अपने से बड़ा, अच्छा किसी को नहीं समझता था। युधिष्ठिर विनम्र थे, सत्य-गुण के ग्राहक तथा प्रशंसक थे, इसलिए उन्हें सर्वत्र गुण ही दिखाई देते थे। जैनधर्म अनेकान्त के द्वारा भावनात्मक एकता का प्रसार करता है, दृष्टि-भेद के बीच समन्वय स्थापित करता है। यहां 'दुर्योधनत्व' के स्थान पर युधिष्ठिरत्व' का मान किया जाता है। हनुमान को भी एक बार ऐसा हो गया था। अशोकवाटिका में उसे कोई सफेद फूल नजर नहीं आया, सर्वत्र लाल रंग के फूल ही दिखाई दिए, क्योंकि उनकी आंखों में खून उभर आया था, आंखें क्रोध से लाल हो गई थीं। यही है राग-द्वेष, मताग्रह का परिणाम। कबीर ने कितनी सच्ची बात कही है कि मैं संसार में जब आदमी की खोज में निकला तो कोई मुझे बुरा दिखाई नहीं दिया। जब मैंने अपने आपको देखा तो मुझ से कोई बुरा नजर नहीं आया। जैनधर्म में आत्मा को, अपने को पहचानने की बात कही गई है, अपना दीपक आप बनने का उपदेश दिया गया है।

जैनधर्म अहिंसा के द्वारा, अनेकान्तवाद के द्वारा सबको अपना मित्र बनाता है—यहां शत्रु को भी मित्र माना जाता है और कष्ट देने वाले पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध नहीं किया जाता। इस प्रकार की भावना एकता, भाईचारा, विश्वमैत्री और विश्वबन्धुत्व की भावना ही कही जाएगी। गुरु नानक ने भी इसी भावना को प्रकट किया है—

नानक नाम चढदी कला,
तेरे भाणे सर्वत्त का भला।

यहां हिन्दू-मुसलमान का, निर्धन-धनी का, ऊंच-नीच का, ब्राह्मण-शूद्र का कोई भी भेद नहीं रहता। जैनधर्म में सब प्राणियों को समान माना गया है। वहां जातीय भेदभाव की भावना नहीं है, मानवता की भावना है। महावीर का धर्म मानवतावादी धर्म है, वह एकता, समानता के बीच बहने वाली गंगा है—समता की गंगा है। 'सूत्रकृतांग' (१-१३-१०) में कहा गया है—

जे माहणे खत्तिय जायए वा, तहुग्गपुत्ते तह लेच्छई वा।
जे पव्वइए परदत्तभोई, गोत्तेण जे थब्भइ माणबद्धे॥

अर्थात्—तुम ब्राह्मण; क्षत्रिय, उग्रपुत्र या लिच्छवि चाहे किसी भी जाति या कुल में उत्पन्न हुए पर अब तुम समता के शासन में प्रव्रजित हो, अहिंसक होने के कारण परदत्तभोजी हो फिर जाति या कुल का अभिमान कैसा? विद्या और चरित्र के आचरण के द्वारा ही मनुष्य को त्राण मिल सकता है, जाति या कुल द्वारा त्राण नहीं मिल सकता। जैनधर्म 'जिनधर्म' है गोत्रतीत, जात्यतीत, सम्प्रदायातीत, कुलातीत है। समता-धर्म है। महावीर के धर्म में अर्थात् समता-धर्म में बड़ा-छोटा, नौकर-स्वामी, राजा-प्रजा कोई नहीं, सब समता का व्यवहार करने वाले होते हैं। यहां जाति की नहीं, गुणों की पूजा की जाती है, कुल-जाति का अभिमान हानिकारक है। महावीर ने सब लोगों को, सब धर्म के एवं सम्प्रदाय के अवलम्बियों को अपने 'समवसरण' में स्थान दिया, कोई भेदभाव नहीं रखा। आज हमारी आपदाओं की, दुःखों की, अशांति की वजह यही है कि हम जाति या कुल के अभिमान में डूबे हैं और सबको अपने से हीन समझते हैं। आज हम धन में—धनार्जन में इतने अंधे हो गए हैं कि पराए तो पराए, अपनों को भी नहीं पहचानते; निर्धन को (चाहे अपना सगा भाई ही क्यों न हो) हीन समझते हैं, उसके यहां आना-जाना तक पसन्द नहीं करते। धनार्जनांधता ने मनुष्य को विवेकशून्य बनाकर छोड़ दिया है। जीवन-मूल्यों के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं चलता-फिरता शव दिखाई देता है। जैनधर्म जीवन-मूल्यों का धर्म है। वह हमें दया और अहिंसा की ओर ले जाता है। धर्म वही है। जो दया से विशुद्ध हो—'धम्मो दयाविसुद्धो।' कुल या जाति के अभिमान को कबीर ने निन्दा की है। क्या शूद्र और ब्राह्मण में रक्त अलग-अलग होता है, क्या ब्राह्मण में रक्त के बजाय दूध बहता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुम कत ब्राह्मण, हम कत सूद।
हम कत लोहू, तुम कत दूध ॥

कुल नहीं गुण को महत्त्व देना चाहिए, जाति नहीं ज्योति को पहचानना चाहिए। हम जाति के पीछे पड़े हैं और ज्योति को भूल बैठे हैं। इसीलिए समाज में एकता नहीं है। हम जाति के गर्व में, भाषा के गर्व में, प्राप्त के गर्व में रात-दिन मस्त रहकर ज्ञान-ज्योति को बिसार बैठे हैं, उससे विमुख हो गए हैं। मनुष्य का जाति से नहीं, गुणों से सत्कार करना चाहिए। जाति को नहीं, ज्योति को पहचानो—"जाणहु जोति न पूछहु जाती" (नानकदेव)।

'अनुयोगद्वार' सूत्र में श्रमण के विषय में कहा गया है :—

उरगगिरि जलणसागरणहतलतरुगण समो अ जो होइ।
भमरमियधरणि जलरुहरविपवणसमो अ सो समणो ॥

अपनी मर्यादा का अतिक्रमण न करने से उसे सिन्धुसमान माना जाता है, सुख-दुःख में वह निर्विकार होता है, संसार के माया-मोह के व्याधि से भयभीत रहता है मृग के समान, सहिष्णुता में पृथ्वी के समान होता है, निस्पृही तथा निर्लेप होता है, ज्ञान-ज्योति से पूर्ण रहता है। हमें जैनधर्म के समता, सहिष्णुता-भाव को, अनेकान्त तथा अहिंसा-भाव को आधार बनाकर भावात्मक एकता का वातावरण निर्मित करना चाहिए। सर्वत्र एक-सी आत्मा को देखना चाहिए, एक परमात्मा की शरण में जाना चाहिए। जो एक को जानता है वह सबको जानता है—'जे एगं जाणइ ते सव्वं जाणइ' (आचारांग)। आज हम केवल अपने को सुखी देखना चाहते हैं; दूसरों के दुःख की चिंता न कर अपनी स्वार्थसिद्धि में बड़े से बड़ा अनिष्ट तक करने को तैयार रहते हैं। जैनधर्म सबका हित करने वाला है, सबको समान दृष्टि से देखता है, सबका आदर-सम्मान करता है। यदि हम 'णमोकारमंत्र' पर गहराई से ध्यान दें तो इसमें गुणों के आधार पर जो व्यक्तित्व-पूजा है, वह बड़े व्यापक-गुणों को, सहिष्णुता को, सार्वभौमिकता को चित्रित करती है, उसमें ज्ञान-सूर्य की रश्मियां विकीर्णित हैं। ये साधु-वृत्ति के मनुष्य बड़े परमार्थी हैं, बादलों के समान, हमेशा दूसरों की तपन बुझाने वाले हैं। संसार में जो साधु हैं, उपाध्याय हैं, आचार्य हैं, सिद्ध हैं, अर्हन्त हैं—सभी वंदनीय-पूज्य हैं। महर्षि पातंजलि ने कहा है कि जहां अहिंसा होती है, वहां वैर-भाव स्वाहा हो जाता है। अहिंसा मानवता की, प्रेम की, सद्भाव की शीतल वर्षा करके सबको समशीतल करने वाली है। अहिंसा माता के समान है; सबको ममत्व तथा वात्सल्य प्रदान करने वाली है। जैनधर्म में अहिंसा-जनित ममत्व और वात्सल्य, अनेकांतजनित सहिष्णुता और सर्वधर्मसद्भाव का जो स्वरूप निहित है वह सचमुच भावनात्मक एकता का मंच तैयार करता है जिस पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबको गले से लगाकर, प्रेम से सद्भाव, से एक साथ बिठाया जा सकता है।' 'समणसुत्त' (२४) में कैसे पते की बात कही गई है कि जो तुम अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए भी चाहो और जो अपने लिए नहीं चाहते वह दूसरों के लिए भी क्यों चाहते हो ? यही है तीर्थंकर महावीर का संदेश—

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि या, एत्तियगं जिणसासणं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म : एक सम्प्रदायातीत धर्म

आज का युग विज्ञान और टेक्नोलॉजी का युग माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि विज्ञान-युग में धर्म की दीवारों का पलस्तर उखड़ता जा रहा है, धर्म की दीवारें अचिरात् धराशायी हो जाएंगी; परन्तु ऐसी बात नहीं। यह माना कि भौतिकता की चकाचौंध अधिक है; सोने-चांदी की चमक-दमक से हमारी आंखें खीरा, धुंधली हो गई हैं। वस्तुतः धर्म को विज्ञान से खतरा नहीं, विज्ञान के आधार पर धर्म के स्वरूप के दुर्गम रहस्यों को समझा, देखा, परखा जा रहा है; हम वैज्ञानिक दृष्टि से वस्तुओं का परीक्षण-निरीक्षण करने के अभ्यस्त हो रहे हैं। विज्ञान हमें ज्ञान के क्षितिजों को उद्घाटित करने में सहायक बनता है—टॉर्च लेकर हमारे साथ रहता है, मार्ग दिखाता है। आज धर्म को यदि खतरा है तो भौतिकता की भयंकर बाढ़ से है। भौतिकता में जो आकर्षण, मोह, ममत्व, ललक है वह किसी वस्तु में नहीं। भोग-विलास, तृष्णाएं-कामनाएं, वैभव-सम्पदा सभी इसी के रूप हैं, इन्हें हस्तगत करने की लालसा छोटे-बड़ों सभी में पायी जाती है। परिग्रह-प्रवृत्ति भौतिकता का मूल है इसकी विनाशकारी, घातक स्थिति से सभी परिचित हैं, हिंसा इसका सबसे विकृत रूप है, इसमें असत्य और स्तेय स्वतः मिल जाते हैं और फिर मानवता की प्रतिमा को ये अपनी आंच से गलाने-पिघलाने लगते हैं। आज भौतिकता की अग्नि से जीवन-मूल्य पिघल रहे हैं, मानवता गल रही है, धर्म जल रहा है, संस्कृति झुलस रही है। इस अग्नि को बुझाने के लिए हमें सर्वधर्मसमभाव के जल की आवश्यकता है। यदि सर्वधर्मसम-भावना को हमने अंगीकार कर लिया, तो मानवता की रक्षा हो सकेगी, विश्व-शांति स्थापित की जा सकेगी और फिर सच्चे अर्थों में यह पृथ्वी मनुष्य के लिए जीने के योग्य बन सकेगी, जीवन बनाने के लिए हो सकेगी। सर्वधर्म—समानत्व का आदर्श आज की भौतिकताक्रान्त मानव-जाति के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है, अतः मान्य है, स्वीकार्य है।

जैनधर्म सर्वधर्म-समानत्व का आदर्श प्रस्तुत करता है, उसे यदि किसी जाति या सम्प्रदाय के संकुचित घेरे में बन्द करके देखेंगे तो दृष्टि सीमित होगी, एक निश्चित दूरी तक हम देख सकेंगे। दृष्टि को धूमिल होने से बचाना चाहिए, उसे दूर तक देखने का अभ्यस्त करना चाहिए, तभी हम सम्यक् द्रष्टा बन सकेंगे। कहा जा सकता है कि महापुरुषों में सम्यक्दृष्टि होती है, सम्यक्ज्ञान होता है, सम्यक् आचरण वे करते हैं; सुख-दुःख, लाभ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हानि, अपने-पराये सबमें उनकी दृष्टि समान होती है। सूर्य जब निकलता है तब और जब डूबता है तब ताम्रवर्णी होता है—दोनों स्थितियों में एक जैसा निर्विकार, निर्लिप्त, निर्ग्रन्थ। भगवान् महावीर ऐसे ही महापुरुष थे। उनका अहिंसा-तत्त्व जीवन-तत्त्व है, सभी प्राणियों के लिए उसमें दया, करुणा, समता का भाव है, किसी एक के लिए नहीं। डॉ० राधाकृष्णन् उनके विषय में कहते हैं—'भगवान् महावीर के अहिंसा-तत्त्व पर ही भारत की शासन-पद्धति आधारित है। भगवान् महावीर महान् विजयी थे। इतिहास के सच्चे महापुरुष थे। वे मानव-समाज के शिक्षक थे। भगवान् महावीर के उपदेशों से अहिंसा और संयम के सिद्धान्त का विकास अपनी चरम सीमा तक पहुंचा था। प्राचीन भारत के निर्माण में भगवान् का स्थान बहुत ऊंचा और महत्त्वपूर्ण है।' मैं कहता हूं कि आधुनिक भारत, आधुनिक विश्व, आधुनिक मानव के निर्माण में भगवान् महावीर के सिद्धान्त आज भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं, अपनी महत्ता और उपादेयता सिद्ध कर सकते हैं; जरूरत है उन्हें जीवन में उतारने की, उन्हें जीने की। जैनधर्म सम्प्रदायगत नहीं है, यह मानवगत है। 'जिन' से जैन बना है, जो अपने को जीत लेता है, अपनी इच्छाओं, कामनाओं को जीत लेता है, काम-क्रोध-लोभ-मोह द्वारा विचलित नहीं होता वही 'जिन' है, 'जैन' है। इस दृष्टि से सभी वे व्यक्ति जैन कहे जा सकते हैं जो कामजयी हैं, तृष्णाजयी हैं, इन्द्रियजयी हैं, भेदजयी हैं। यहां तो सम्प्रदाय का पंक देखने में भी नहीं आता। सम्प्रदाय की भूमि में धर्म जब पहुंच जाता है तो भेदभाव और मताग्रह के दलदल में फंसता-धंसता चला जाता है।

जैनधर्म का सारभूत मंत्र है नमस्कार महामंत्र। इसमें पंच परमेष्ठी की जो वन्दना की गयी है वस्तुतः वह किसी सम्प्रदाय-विशेष की संकीर्ण सीमा में परिबद्ध नहीं है अपितु यह तो गुणों एवं व्यक्तित्व-विकास की वन्दना है। यहां किसी भी जगह जाति या सम्प्रदाय शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है और न ही जैनधर्म का कहीं नामोल्लेख है, फिर जैनधर्म को साम्प्रदायिक धर्म कैसे कहा जा सकता है? व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास गुणों तथा त्याग के आधार पर होता है। समाज व्यक्ति को नहीं पूजता, व्यक्तित्व को पूजता है, वहां गुणों की आरती उतारी जाती है, त्याग की अर्चना की जाती है, आत्मा की पूजा की जाती है, मानव की मानवता का आदर किया जाता है। भगवान् आत्मवादी थे। उनके सामने प्रथम स्थान आत्मा का था। मनुष्य का स्थान दूसरा था। भगवान् मानवतावादी थे। उनके सामने प्रथम स्थान मानवता का था। वे जाति को मूल्य नहीं देते थे। भगवान् के कैवल्य का संवाद सुनकर चन्दना भी वहां पहुंच गई थी। और भगवान् ने उसे दीक्षा दी—नारी-जाति को दीक्षित करने में कोई भेदभाव नहीं बरता। भगवान् महावीर ने कहा—"मैंने समता-धर्म का प्रतिपादन किया। तुम सब समता के शासन में दीक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए हो। जाति, कुल और ऐश्वर्य का मद विषमता उत्पन्न करता है। तुम मद को छोड़कर मृदुता के पथ पर आये, विषमता को छोड़कर तुमने समता का वरण किया।" इस प्रकार महावीर का धर्म तो समता-धर्म है, यहां भेद के लिए कोई गुंजाइश नहीं, यहां तिरस्कार, घृणा, विषमता के लिए कोई स्थान नहीं है। 'सूत्रकृतांग' (१-१३-१०,११) में कहा गया है—"तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, उग्रपुत्र या लिच्छवि चाहे किसी भी जाति या कुल में उत्पन्न हुए पर अब तुम समता के शासन में प्रव्रजित हो, अहिंसक होने के कारण परदत्तभोजी हो, फिर यह जाति और कुल का अभिमान कैसा ? यह जाति और कुल तुम्हें त्राण नहीं दे सकता। विद्या और चरित्र का आचरण ही तुम्हें त्राण दे सकता है।" फिर जाति या कुल का अभिमान कैसा, फिर ऐश्वर्य और वैभव पर मद कैसा ? महावीर का धर्म यह कहां ? यहां जातीय भेदभाव नहीं है; अतः जैनधर्म को किसी जाति का धर्म कैसे कहेंगे ? यह तो शुद्धतः मानवता का धर्म है, सम्प्रदाय और जाति से दूर हटकर यह राजमार्ग जाता है। इस राजमार्ग पर सभी को चलने का समान रूप से अधिकार है। जैनधर्म को हम जोड़ने वाला धर्म कहेंगे, यह विभिन्न जातियों और मनुष्यों को जोड़ता है, सबको एक साथ मिलकर चलने, रहने, जीने का अधिकार देता है। यह प्राणिमात्र का धर्म है—सभी प्राणियों में एक जैसे सुख-दुःख की बात कहने वाला धर्म है। यह आन्तरिक समानता का धर्म है। अहिंसा धर्म का अनुयायी वही बनता है जिसके अन्तर्बाह्य दोनों समता पर अवलम्बित हों। भगवान् महावीर कहते हैं कि तुम अनादिकाल से संसार में जन्म ले रहे हो। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसके तुम माता-पिता, पुत्र, भाई आदि न हो। फिर किसे तुम मित्र मानोगे और किसे शत्रु ? किसे तुम उच्च मानोगे और किसे नीच ? किससे घृणा करोगे और किसे अपनाओगे ? अहिंसा हमें समता, समभाव की ज्योति प्रदान कर राग-द्वेष, लोभ-मोह, काम-क्रोध के सघन तम को नष्ट करती है; हमारे अन्दर आत्मानुशासन पैदा करती है। महावीर ने ही हमें आत्मानुशासन का मंत्र दिया, इससे हमें स्वयं को अनुशासित करना चाहिए। परन्तु आज वह मंत्र हम भूला बैठे हैं।

यहां एक प्रश्न सहज ही उभरता है कि जैनधर्म में तो श्वेताम्बर, दिगम्बर और फिर स्थानकवासी, तेरापंथी आदि कई एक सम्प्रदाय और गच्छ है, फिर इसे असाम्प्रदायिक कैसे कहा जा सकता है ? इसका सीधा-सा उत्तर यह है कि भेद या सम्प्रदाय जैनधर्म के लिए नहीं ये। तो लोगों की, जातियों के दृष्टि-भेद, विचार-भेद के कारण हैं। जैनधर्म अखण्ड है। मनुष्य वर्गों, जातियों, सम्प्रदायों में बंट सकता है परन्तु हवा को आप वर्गों में नहीं बांट सकते, चांदनी या धूप की सीमाएं नहीं बांध सकते। जहां से जीवन मिलता हो, प्राण-शक्ति मिलती हो, प्रकाश मिलता हो, वहां भेद उत्पन्न नहीं किया जा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता। ये चीजें तो अखण्ड हैं, शाश्वत हैं, सनातन हैं; इसी प्रकार जैनधर्म भी शाश्वत है, सनातन है, उसे खंडित करके सम्प्रदायों में बांटा नहीं जा सकता। यदि जैनधर्मावलम्बी उदारता से, विशालहृदयता से काम लें तो जैन-धर्म का, जैन संस्कृति का अधिक प्रचार-प्रसार कर सकते हैं। इस आलोकपुंज को अपने पास ही न रखें, इसका परिग्रह न करें, इससे मान-जाति के अन्तर्-बाह्य को आलोकित होने दें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म की प्रासंगिकता

आधुनिक बौद्धिक एवं तार्किक युग में अनाग्रह-दृष्टि द्वारा ही सत्यान्वेषण किया जा सकता है। आग्रहजन्य आत्यन्तिक दृष्टि मिथ्यावाद की धुंध में लिपट कर मनुष्य को अपने धर्म से विचलित कर देती है; उसकी वह दृष्टि दूसरों को तो भली प्रकार देख नहीं पाती, स्वयं को भी नहीं देख पाती। एक सन्तुलित एवं सम्यक् दृष्टि प्राप्त कर हम दूसरों को, अपने को देखकर ज्ञान-लोक में उतर सकते हैं। जैन धर्म की प्रासंगिकता इस दृष्टि से स्वयंसिद्ध है कि उसका अनेकान्तवाद का सिद्धांत सभी प्रकार के दुराग्रहों की धुंध को विच्छिन्न करता है और एक सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोण को पल्लवित करता है, समतामय विचारधारा को विकसित करता है। आज समाज में, देश में, विश्व में विचारों का संघर्ष है। सभी अपने-अपने दृष्टिकोण को मूल्यवान् समझकर दूसरों के दृष्टिकोण को अवहेलित तथा खण्डित करते हैं। दूसरों की बात को, मत को सहानुभूति और सहिष्णुता के साथ न सुनना पारस्परिक संघर्ष को हवा देना है। हमारे देश में साम्प्रदायिक दंगों की विभीषिका देश को आक्रांत किये है। सिक्खों के जत्थों में कई बार खून-खराबा हो चुका है। पिछले कुछ महीनों में हिन्दू-मुसलमानों के दंगों में मनुष्य-जाति का अनमोल रक्त बहाया गया, हिंसा का क्रूरतम रूप कभी संभल, कभी अलीगढ़, कभी जमशेदपुर आदि में देखा गया। बेचारे हरिजनों को धधकती आग में जीवित झोंका गया। ये हृदय-विदारक घटनाएं केवल इसलिए हुई कि लोगों में वैचारिक सहिष्णुता नहीं, अनाग्रह दृष्टि नहीं, सर्वधर्म-समभाव का उदारवादी दृष्टिकोण नहीं, जो जैनधर्म के अनेकान्तवाद में अभिनिहित है। अनेकान्तवादी संघर्षवादी नहीं हो सकता, अनेकान्तवादी दुराग्रह द्वारा अपने मत को सर्वोत्तम नहीं कह सकता। अनेकान्तवादी समन्वयवादी होता है, वह परस्पर-विरोधी मतों, विचारधाराओं में सहिष्णुता की मिठास घोल कर उनकी कटुता को नष्ट कर सर्वग्राही बनाता है। जैन धर्म का यह सिद्धांत आज के संघर्षाकुल युग के लिए बहुत ही आवश्यक और उपादेय है। इसकी शरण में आकर साम्प्रदायिक और राजनीतिक सभी प्रकार के संघर्ष-द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। विश्व की सबसे बड़ी शान्ति स्थापित करने वाली संस्था यू. एन. ओ. जब अपने मिशन में असफल हुई तो इस कारण ही कि सदस्य देश संकीर्ण विचारधारा से बाहर नहीं निकल सके, वे एक-दूसरे के प्रति सहिष्णु नहीं बन सके, उनके विचार-तन्तु समन्वयात्मक दृष्टि में से उद्भूत नहीं थे, वे अनेकान्तवादी नहीं थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने ही देश में राजनीतिक उथल-पुथल पर दृष्टि डालकर देखिये तो यहां भी अनेकान्त-रहित दृष्टि ही प्रमुख कारण है। जैन धर्म तो एकत्व और अनेकत्व दोनों को सत्य मानकर अंगीकार करता है। जैनधर्म में भगवान् महावीर ने सामाजिक और राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक सभी प्रकार की समस्याओं का अहिंसात्मक समाधान अनेकान्तवाद द्वारा प्रस्तुत किया है, जिसकी उपयोगिता आज अधिक तीव्रता से अनुभव की जा रही है।

जैनधर्म की प्रासंगिकता पर विचार करते हुए सामाजिक एकता को सामने रखना होगा। आज हमारा समाज न जाने कितनी जातियों-उपजातियों में विभक्त है। और उस पर तुर्रा यह कि ये जातियां-उपजातियां ऊंच-नीच की हीनता की ग्रंथि में इतनी बुरी तरह फंसी हैं कि जो नीच घोषित कर दी गयी वह बस प्रलयकाल तक सृष्टि के अन्त तक—नीच ही बनी रहेगी। हरिजनों को ही लीजिये; संविधान में समानता के अधिकार की घोषणा की गयी, फिर भी शासन को, सरकार को हरिजनों की सुविधा के लिए उनके जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए विशेषाधिकारों की घोषणा करनी पड़ी; परन्तु इन विशेषाधिकारों को भोग कर अपना जीवन-स्तर ऊपर उठाने वाले क्या समाज में समादृत हैं? नहीं। बाबू जगजीवन राम हमेशा से मंत्री पद पर रहे हैं, परन्तु आम लोगों ने इन्हें 'हरिजन' ही समझा। जैनधर्म में इस प्रकार के जातीय भेदभाव का कलंक नहीं। डा० राधाकृष्णन ने ठीक कहा है—"जैन दर्शन सर्वसाधारण को पुरोहित के समान धार्मिक अधिकार प्रदान करता है।" क्या कोई हरिजन वेद-उपनिषद् का महान् पण्डित होकर इस प्रकार धार्मिक अधिकार ग्रहण कर सकता है हिन्दू समाज में? जैनधर्म तो लोकधर्म है, समाज धर्म है। उसमें व्यक्ति के विकास की पूर्ण स्वतन्त्रता है। बदलते हुए सन्दर्भों में जैनधर्म का मूल्य उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। समाज में एकता और समानता स्थापित करने के लिए जैनधर्म की ओर देखना होगा। हम यों नहीं कहेंगे कि जैनधर्म, जो भगवान् ऋषभदेव से भगवान् महावीर तक श्रमण-धर्म की शिक्षाओं को तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुकूल प्रचारित करता रहा वह बदल गया है, हम तो यह मानते हैं कि वह बदला नहीं, बल्कि उसका क्षेत्र और अधिक विस्तृत हो गया है। वह "जीव-मूल्यों" के साथ "जीवन-मूल्यों" की बातें भी कहने लगा है। उसकी आचारगत अहिंसा विचारगत अहिंसा की भूमि में पहुंच गई है। व्यक्तिगत उपलब्धि सार्वजनिक बनती जा रही है। महावीर ने घर-बार छोड़कर जो व्यक्तिगत कैवल्योपलब्धि प्राप्त की वह सार्वजनिक ही तो है। क्या उनके समवसरण के द्वार सभी के लिए खुले नहीं थे? कसाई, चोर-जार, ज्ञानी-मूर्ख, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी बिना किसी भेदभाव के वहां सम्मिलित होते थे। जैनधर्म की यह समन्वयवादी या समानतावादी विचारधारा हमारे समाज में एकता स्थापित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर सकती है, उससे हम अपने राष्ट्र की एकता को अधिक मजबूत बना सकते हैं। महावीर ने वर्गहीन समाज की स्थापना की थी, आज हम भी समाजवाद के द्वारा उस आदर्श को छूने का प्रयास कर रहे हैं। आज जातीय बन्धनों को तोड़कर जो एक नया समाज बनता नजर आता है, उसने जैनधर्म को आत्मसात् किया है, ऐसा मालूम होता है आचार्य तुलसी और एलाचार्य मुनि विद्यानन्दजी आदि के उपदेशों को उसने आत्मसात् किया है।

कालानुसार पुरानी मान्यताओं के रूप बदलते हैं, नवीन और व्यापक होते हैं। अहिंसा अवश्य परम धर्म है। किसी को मारना, सताना, पीटना हिंसा है; लेकिन आज हिंसा युग-संदर्भों में कुछ नवीन रूप धारण कर सामने आती-जाती है। यह मानना होगा कि जैनधर्म में अहिंसा पर जितना अधिक जोर दिया गया, शायद वैसा जोर विश्व के किसी धर्म में नहीं दिया गया, जैन समाज में बालक को बचपन में ही अहिंसा का पाठ मां की गोद से पढ़ाया जाता है। अहिंसा और सेवा-भाव का प्रसार जैन समाज ने इतना अधिक किया है कि समाज के किसी वर्ग ने इतना नहीं किया। अनेक औषधालय, समाज-सेवी संस्थाएं, कॉलेज जैन समाज द्वारा सारे देश में चलाये जा रहे हैं। राष्ट्रीय उद्योग को विकसित और संवर्धित करने में जैन उद्योगपतियों का योगदान स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। जैनधर्म में तुच्छ-से-तुच्छ और हिंसक-से-हिंसक प्राणी को मारने का पूर्ण निषेध है; लेकिन आज की हिंसा पशु-पक्षी को मारने, किसी जीवधारी को सताने तक सीमित नहीं, उसने भी अपने क्षेत्र का विस्तार काला धन, उत्कोच, चोरी-डकैती, जमाखोरी, खाने-पीने की चीजों में मिलावट, तस्करी या स्मगलिंग आदि के रूपों में किया है। ये सब सामाजिक दोष हैं और समाज विरोधी तत्त्व इन्हीं के द्वारा रातों-रात लखपति बन जाते हैं। जैनधर्म में अस्तेय का सिद्धांत जहां चोरी-डकैती का निषेध करता है, ऐसे पापमय कुकर्म से बचने का आदेश देता है वहीं अपरिग्रह का सिद्धांत जमाखोरी, खाने-पीने की वस्तुओं में मिलावट, तस्करी आदि से बाज रखता है। महावीर ने अपरिग्रह का सिद्धांत सामने रखकर वर्तमान युग की समस्याओं का अहिंसात्मक समाधान प्रस्तुत किया। बुरे कर्मों से समाज बुराई में फंसेगा ही, दुर्गन्ध से वातावरण दुर्गन्धित होगा ही। अच्छे कर्मों के फलों की सुगंध ही दूर-दूर तक फैलती है। "नारायणोपनिषद्" में कहा गया है—

यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद्गंधो वाति।
एवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद् गंधो वाति॥

अर्थात् फूले हुए वृक्ष की सुगंध दूर-दूर तक फैल जाती है, वैसे ही पवित्र कर्मों की सुगंध दूर-दूर तक पहुंचती है। जैनधर्म का अपरिग्रह का सिद्धांत भी एक पुष्पित वृक्ष है, उसके गुणों की सुगंध फैलनी ही चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहां कहीं परिग्रह है, लूट-खसोट है, उसकी दुर्गंध को अपरिग्रह की सुगंध नष्ट कर सकती है। समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलता है कि अमुक गांव या नगर में डाकुओं ने घर में घुस कर हत्याएं कीं और हजारों का माल लेकर फरार हो गये, या अमुक राह चलती स्त्री के गले की स्वर्ण-चेन खींच कर कोई भाग गया, या अमुक युवती की दहेज कम लाने पर गला घोंटकर या मिट्टी का तेल छिड़ककर हत्या कर दी गयी। इन सबके पीछे परिग्रह की बुराई है। वह परिग्रह जिसे जैनधर्म ने वर्जित घोषित किया है। मनुष्य धनार्जन करे, परन्तु उचित साधनों से और उचित मात्रा में उससे दूसरों की सेवा करे। अपरिग्रह को हमें महावीर के इस आदर्श को सामने रखकर ग्रहण करना चाहिए कि जिससे दूसरों की सेवा की जा सके, देश का नवनिर्माण किया जा सके, अपने से अधिक दूसरों को सुख पहुंचाया जा सके। महावीर नहीं चाहते थे कि कोई गरीब हो, गरीबी के अभिशाप में फंसा हो। जैनधर्म की दृष्टि समाजवादी है, लेकिन दूसरे प्रकार की। अपरिग्रह को हम समाजवाद के निकट रख सकते हैं, लेकिन अपरिग्रह को समाजवाद नहीं कह सकते। समाजवादी आदर्श यह है कि कोई मुझसे बड़ा न हो, सब मेरे बराबर हों। अपरिग्रहवादी आदर्श यह है कि कोई मुझसे छोटा न हो, बड़ा चाहे हो। वह जो कुछ अपने पास रखता है उसे दूसरों में भी बांटना चाहता है। केवल गरीबी मिटाओ या वस्तुओं के मूल्य कम करो का नारा लगाने से समस्या का निदान नहीं हो सकता। गरीबी यदि मिटानी है, वस्तुओं के मूल्यों को बढ़ने से रोकना है, जमाखोरी या तस्करी को नष्ट करना है तो जैनधर्म में निर्दिष्ट अपरिग्रहवाद को स्वीकार करना होगा। आज इसी सिद्धांत की समाज को अधिक आवश्यकता है। इसी के द्वारा आर्थिक विषमताजन्य अनेक समस्याओं को सरलता से हल किया जा सकता है। जब तक परिग्रहजन्य छीना-झपटी रहेगी, वस्तुओं का संचय किया जाता रहेगा, वस्तुओं के मूल्य बढ़ते रहेंगे। गरीब और गरीब, अमीर और अमीर होते रहेंगे और समाज या देश सुख-शांति से वंचित रहेगा। लोग दरिद्रता के चक्र में फंसे असहाय दम तोड़ते रहेंगे। देश दुर्व्यसनों में जकड़ा रहेगा। कानून पास करने से हृदय नहीं बदलता, हृदय बदलता है ज्ञान से, अहिंसा से, अभ्यास से। यहां कथनी और कर्म में समानता होनी आवश्यक है। लोग हृदय से अपरिग्रही हों, तभी वे भौतिकता से ऊपर उठकर आध्यात्मिक लोक में पहुंच सकते हैं। इस प्रकार अपरिग्रह भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच सुदृढ़ सेतु का काम करता है। वह वचनानुसार कर्म करके अध्यात्म-भूमि को छू सकता है। हमारे नेताओं-राजनेताओं की बातों में कोई तालमेल नहीं होता, जो वे कहते हैं वह करके नहीं दिखाते—शायद वे कानून अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए पास करते हैं। समाज की आर्थिक विषमता का समाधान जैनधर्म के अपरिग्रहवाद में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खोजना होगा। आज उनकी उपादेयता महावीर के युग से काफी अधिक है।

हमारा देश जैसा बहुधर्मी है, वैसा बहुभाषी भी है। यहां संकीर्ण विचारधारा के कारण लोग भाषा को भी धर्म का चश्मा चढ़ा कर देखते हैं। मुसलमानों की भाषा उर्दू बताई जाती है, सरकार भी इस भावना का शोषण करती है। कहीं उर्दू अकादमी बनाकर, कहीं गालिब अकादमी खोलकर, कहीं उर्दू-अध्यापकों की भरती का नारा लगाकर सरकार मुसलमानों की भावना से उचित-अनुचित लाभ उठा रही है। हिन्दी को अहिन्दी-भाषियों पर थोपने का बे-सिर-पैर का नारा लगाकर दक्षिण प्रदेश के लोगों को भड़काया जाता है। कश्मीर भी एक अहिन्दी भाषी प्रान्त है। यहां की बहुसंख्यक आबादी मुसलमानों की है, उनकी मातृभाषा कश्मीरी है, जिसमें संस्कृत के ७० प्रतिशत शब्द व्यवहृत हैं। यहां के मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला ने आठवीं कक्षा तक सरकारी स्कूलों में हिन्दी अनिवार्य घोषित की। और "ओकाफ ट्रस्ट" की ओर से जो विद्यालय चलाये जाते हैं उनमें भी शेख साहब ने हिन्दी अनिवार्य विषय घोषित किया। 'ओकाफ ट्रस्ट' के अध्यक्ष शेख साहब हैं। यहां भाषा की समस्या को शेख साहब ने धर्म से नहीं जुड़ने दिया। दूसरे प्रांतों में अवश्य प्रान्तीयता या धर्म की संकीर्णता को लेकर भाषा का हौआ खड़ा किया जाता रहा है। जब जैनधर्म पर दृष्टि डालते हैं, तब देखते हैं कि उसका भाषा के प्रति कोई दुराग्रह नहीं रहा, कोई संकीर्ण विचार नहीं रहा। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती अनेक भाषाओं में उसका साहित्य है। यहां जैनधर्म की प्रासंगिकता स्पष्ट है। मतभेदों को सामंजस्यपूर्ण उदारता और शालीनता से दूर किया जा सकता है। भाषा को अपने युग की विचारधारा को व्यक्त करने का माध्यम मानकर ही स्वीकार करना चाहिए। जैनधर्म में उसी भाषा को स्वीकार किया जाता रहा जो उस युग में प्रचलित थी। भाषा-भेद को मिटाने के लिए जैनधर्म की नीति अपनानी होगी।

अन्त में, एक बात का और संकेत करना आवश्यक है, वर्तमान युग स्वतन्त्रता का युग है। समय के साथ स्वतन्त्रता के प्रति मोह बढ़ता जाता है, जो स्वाभाविक है। भगवान् महावीर भी स्वतन्त्रता की खोज करने के लिए घर-परिवार-समाज से दूर गये—यहां तक कि वे शरीर से भी विमुख हो गये। आज चारों ओर स्वतन्त्रता का आलोक फैलता जा रहा है, ऐसे में भला किसी को कैसे परतन्त्र बनाया जा सकता है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना जोर पकड़ती जा रही है। कोई यह सहन नहीं करता कि उसकी व्यक्तिगत, समाजगत स्वतंत्रता में कोई बाधा डाले। लोकतंत्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को विशेष मान्यता प्राप्त है। फिर लोगों को बन्धक या दास बनाकर नहीं रखा जा सकता। नारी को भी समान रूप में स्वतंत्रता का अधिकार है, उसे धर्म और समाज में समानता, स्वतंत्रता देनी है, दी जा रही है। इसमें भी हमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म के उस रूप का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, जिसमें नारी-धर्म के क्षेत्र में मुनि और आचार्य-पद की अधिकारिणी बनी थी, वह संघ-संचालक थी। जैनधर्म में नारी को जो समानता और स्वतंत्रता प्रदान की गई है, आज का नारी-वर्ग उसी की सबल मांग कर रहा है। यह माना कि जैनधर्म हजारों वर्ष पुराना है, परन्तु उसमें जिन सिद्धांतों तथा जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठापना है, वे अपनी आभा धूमिल नहीं कर सकते। युग बदलते हैं, परिस्थितियां बदलती हैं उसी के साथ जैनधर्म का स्वरूप और अधिक शुभ्र, व्यापक और उपादेय होता जाता है। आज भी जैनधर्म की प्रासंगिकता युग की पुकार है, उस पर प्रश्नचिह्न लगाना अपनी अल्पज्ञता प्रकट करना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'णमोकार' : आत्मविकास का दर्शन

भगवान् महावीर के उपदेश लोकमंगल की भावना से उद्दीप्त हैं। उन्होंने लोकतंत्र की घोषणा ही नहीं की, वरन् प्राणितन्त्र का दिशादर्शन भी कराया। इसी सन्दर्भ में उन्होंने कहा—'अप्प दीपो भव' अर्थात् तू अपना दीपक स्वयं बन। यही उनका आत्मोदय दर्शन है, यही आत्मा के ऊर्ध्वगमन का सिद्धान्त है और इसे हम णमोकार महामन्त्र द्वारा आसानी से अर्जित कर सकते हैं। मांगलिक वचनों से आत्मा का कालुष्य नष्ट होता है, विषय-कषायजनित अशांति दूर होती है और विकारों पर चिरविजय प्राप्त की जाती है। जीवन में आनन्द की हिलोरें उठने लगती हैं। एक विकारविहीन आदर्श का स्वरूप सामने होता है, राग-द्वेषजन्य विकारों का परिशमन हो जाता है और मनुष्य की आत्मा आध्यात्मिक विकास के सोपान पार करने लगती है।

जर्मन विद्वान् हेनरिचज़िमर ने तीर्थंकरों को 'संगम-निर्माता' का अभिधान दिया। उन्होंने इस अभिधान से लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के संबन्धों को संतुलित किया। यहां जीवन का उन्नयन है, व्यक्तित्व का उन्नयन है, उससे पलायन नहीं है। 'पद्मपुराण' (९७/३८) में कहा गया है कि उस चरित्र का कोई लाभ नहीं, जिससे आत्मा का हित-साधन न हो। उस ज्ञान का कोई लाभ नहीं, जिससे आत्मा का ज्ञान न हो; अर्थात् सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र के द्वारा आत्मा का हितसाधन और उसका परिज्ञान प्राप्त करना फलदायक है, यहां विनय और भक्ति-निष्ठा को आत्मा का, धर्म का आधार माना जा सकता है। विनय, निष्ठा, और श्रद्धा के साथ महान आत्माओं की चरण-रज सिर पर धारण करने से, उनके आदर्शों की उपलब्धि से न केवल चित्त को स्थैर्य और मन को शान्ति प्राप्त होती है; बल्कि आत्मा का सम्यक् विकास होता है, उसमें पंचपरमेष्ठी के गुण समाविष्ट हो जाते हैं। इन्हीं महान् आत्माओं की, पंचपरमेष्ठी की शरण में जाने के लिए, उनके आदर्शों का स्मरण करने के लिए महामन्त्र णमोकार की महिमा वर्णनातीत है।

जैनधर्म में मन्त्राराधना का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यों तो मनुष्य अपनी उन्नति-अवनति का, अपने उत्थान-पतन का कारण स्वयं ही है, परन्तु णमोकार मन्त्र की आराधना इसलिए की जाती है, इसका जप इसलिए किया जाता है कि हम उपास्य के गुणों को हृदयंगम करते हुए तद्रूप, तदनुकूल होने का प्रयास करें। और जब एकाग्रचित से हम इस महामन्त्र का जप करते हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब मन वासनाओं के भंवर में नहीं फंसता, इधर-उधर नहीं भटकता। मन की निष्कपटता और सरलता ही आत्मा को शुद्ध और परिष्कृत करती है और जिसकी आत्मा शुद्ध होती है, सुसंस्कृत होती है उसी के पास धर्म ठहरता है। णमोकार मन्त्र आत्मशुद्धि का मन्त्र है। यह कलुषित वृत्तियों का विनाश कर आत्म-गुणों को प्रादुर्भूत करता है, आत्म-परिज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता है और शनैः-शनैः मोक्ष के, निर्वाण के द्वार उद्घाटित करता है। यह केवल ज्ञान की, अरिहंतत्व और सिद्धत्व की समुपलब्धि कराने वाला रामबाण है। यह महामन्त्र वह सुदीर्घ मंजिल है, जिसे तय करता हुआ मनुष्य पंचपरमेष्ठी पद को प्राप्त कर लेता है। सवाल यह उत्पन्न होता है कि परमेष्ठियों को नमस्कार क्यों किया जाता है? परमेष्ठियों को नमन करना अपनी लघुता और उसकी महत्ता प्रकट करना है। महिमा-गरिमा, प्रभुता-महानता को स्वीकार कर अपने को उनके समक्ष अपदार्थ समझना ही नमस्कार है। नमस्कार किया जाता है गुणवानों को ताकि हम भी गुण प्राप्त कर सक, उन जैसे बन सकें। और आराधक जैसा आराध्य रखेगा वह वैसे ही गुणों को प्राप्त होगा। ध्याता जिस प्रकार के ध्येय का गुणगान करेगा वह वैसा ही बन जाएगा। जिसकी जैसी भावना होती है प्रभु उसे उसी रूप में दर्शन देते हैं। 'मानस' में तुलसीदास ने यही कहा है—

"जाकी रही भावना जैसी,
प्रभू मूरत देखी तिन तैसी।"

वस्तुतः श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिए नमस्कार किया जाता है, कहा है—

मोक्षमार्गस्य नेत्तारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुण लब्धये॥

अर्थात् जो मोक्षमार्ग के नेता हैं, जो कर्म-रूपी पर्वतों को भेदने वाले हैं, जो विश्व के समस्त तत्त्वों को जानते हैं उनको मैं उन गुणों की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूं। संसार में नमस्कार को अपार गौरव प्राप्त है। अनेक धर्मों-सम्प्रदायों के लोगों में नमस्कार का नैतिक और आध्यात्मिक आदर्श अनादि काल से प्रचलित है। यह वह गुण है, जिसके द्वारा हम नमस्कार करने वाले के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अवलोकन कर सकते हैं; हृदय की सरलता, निष्कपटता, मृदुता-कोमलता, सरसता, भावुकता, यहां तक कि उसकी गुण-ग्राह्यता की क्षमता का सहज अनुमान लग जाता है। जब कोई व्यक्ति अपने से महान् गुणवान, ज्ञानवान, शीलवान्, महात्मा को नमन करता है तब उस व्यक्ति के हृदय का समस्त मालिन्य, विकार, द्वेष, मान, अभिमान नष्ट हो जाते हैं, उसकी अहंता टुकड़े-टुकड़े होकर महात्मा के चरणों पर आ पड़ती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा का विकास करना भक्त का, मनुष्य का आध्यात्मिक लक्ष्य है और उस लक्ष्य या आदर्श तक पहुंचने के लिए हमें पांच पदों को अपना अवलंबन बनाना चाहिये—(१) णमो अरिहंताणं (नमस्कार हो अरिहंतों को), (२) णमो सिद्धाणं (नमस्कार हो सिद्धों को), (३) णमो आयरियाणं (नमस्कार हो आचार्यों को) (४) णमो उवज्झायाणं (नमस्कार हो उपाध्यायों को), (५) णमो लोए सव्वसाहूणं (नमस्कार हो लोक में सब साधुओं को)और यही पंच नमस्कार सकल पापपुंज को नष्ट करने वाला है, सकल मंगलों में प्रथम मंगल है। नवकार मन्त्र में सबसे पहले "णमो" शब्द का उच्चारण किया जाता है; इससे यही अभिप्रेत है कि महान् पुरुषों या महान् आत्माओं को नमस्कार करना ही भक्ति है, पूजा है।

नमस्कर्ता नमस्य के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति को, या पूज्य भाव को अभिव्यक्त करता है। पूज्य भाव की यह अभिव्यक्ति दो रूपों में सामने आती है—(१) द्रव्य-नमस्कार (२) भाव-नमस्कार। द्रव्य-नमस्कार में हम अपने हाथ-पैर या मस्तक को महान आत्मा की ओर झुकाते हैं, उसकी महिमा और लघुता या तुच्छता व्यक्त करते हैं, जबकि भाव-नमस्कार में मन का चांचल्य दूर कर पूर्णरूप से एकाग्र चित्त होकर उसे (मन को) महान् आत्मा पर स्थिर कर देते हैं।

आचार्य जयसेन ने 'द्वैत' और 'अद्वैत' इन दो रूपों में नमस्कार के भेद व्यक्त किये हैं। द्वैत में नमस्य और नमस्कर्ता में पृथक्ता का बोध रहता है और जब यह द्वैत भाव समाप्त हो जाता है, नमस्कर्त्ता अपने-आप में नमस्य के रूपगुण का भान करने लगता है तो अद्वैत नमस्कार कहलाता है। इस स्थिति में आराधक के मन की कलुषता, राग-द्वेष की भावना नष्ट हो जाती है और वह केवल अपने आराध्य को ही देख पाता है या उसके गुणों का ही उसे निरन्तर भान होता रहता है। यही स्थिति नर से नारायण बनने की है, यही स्थिति 'अनलहक' की है, यही स्थिति 'तत्त्वमसि' की है। विद्यापति की राधिका 'कृष्ण-कृष्ण' जपते-जपते 'राधा-राधा' जपने लगती है; अर्थात् उसकी आत्मा का ऊर्ध्वीकृत रूप कृष्णमय हो जाता है। जैनधर्म में जिसे 'अप्पा से परमप्पा' कहा गया है उसकी चरम स्थिति यही है, अर्थात् अपनी आत्मा अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है, वही शुद्ध परमात्मा-रूप है। इक़बाल ने जब यह कहा—

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तक़दीर से पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है ?

यदि 'मन्त्र' की व्युत्पति पर विचार करते हुए हम 'णमोकार' या 'नवकार' या 'परमेष्ठी मन्त्र' का पर्यवेक्षण करें तो इसमें आत्म-शक्ति के विकास का ज्ञान मालूम होगा। चिन्तन-मनन से जो दुःखों का विनाश करे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या दुःखों से त्राण दिलाये उसे मन्त्र कहते हैं—**मन्त्रः परमोज्ञेयो मननत्राणेह्यतो-नियमात्**। जब हम महान् आत्माओं के समक्ष नमन करते हैं, श्रद्धा-भक्ति से नतमस्तक होते हैं तो सभी प्रकार के विकारों का परिशमन हो जाता है, यहां तक कि अपने अन्दर हीनता का संशय भी नहीं रहता और हमारे अन्दर ऐसी आत्मशक्ति का विकास होने लगता है, जिसके द्वारा सभी प्रकार के कर्म-बंधन नष्ट हो जाते हैं। इस मन्त्र को 'परमेष्ठी मन्त्र' कहने से भी यह भावना व्यंजित होती है कि जो महान् आत्माएं परम-स्वरूप में स्थित हैं, जो आध्यात्मिक विकास के उच्च शिखर पर आरोहण कर चुके हैं, वे परमेष्ठी हैं, उन्हें ही नमस्कार किया है ताकि हम तद्रूप हो सकें।

णमोकार मन्त्र मे अरिहन्त को प्रथम नमस्कार किया गया है, जबकि होना यह चाहिये था कि सत्य के प्रथम उपदेष्टा साधु को ही प्रथम नमस्कार किया जाना चाहिये था। वस्तुतः सत्य का प्रथम साक्षात्कार, केवलज्ञान का प्राप्तिकर्ता अरिहन्त है, जो कुछ भी सत्यासत्य का प्रकाश उसे प्राप्त है उसी को मुनि या साधु जनसाधारण के सामने व्याख्यायित करते हैं। साधु ने स्वयं सत्य या ज्ञान का साक्षात्कार नहीं किया। मूल अनुभूत सत्य की प्रतिमा अरिहन्त भगवान् है, वही आध्यात्मिकता का सर्वोच्च और पवित्रतम रूप है, उन्हीं के आध्यात्मिक प्रकाश से संसार का अज्ञानान्धकार नष्ट होता हैं। णमोकार मन्त्र में अरिहन्त और सिद्ध देवत्व को प्राप्त होते हैं, शेष तीन गुरु की श्रेणी में विराजमान हैं; ये आत्मविकास की अपूर्णावस्था में हैं और मंजिल के राही हैं, सत्य के अन्वेषी हैं।

अरिहन्त का अर्थ है शत्रु का हनन करने वाला। यहां काम-क्रोध, लोभ-मोह आन्तरिक जगत् के शत्रुओं को नष्ट करने वाला, अहिंसा-मैत्री, समता-शांति के लोक में विचरण करने वाला अरिहंत है। सिद्ध को कर्ममुक्त पूर्ण आत्मा माना जाता है। आचार्य आचार और संयम का अनुपालन करते हुए पांच महाव्रतों अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करता है और संघ का नेतृत्व करते हुए दूसरों को सन्मार्ग दर्शाता है। उपाध्याय लोगों को विवेक-विज्ञान का प्रकाश प्रदान करता है, वह आध्यात्मिक विद्या का दान देता है। साधु सिद्धि का अनुसंधान और आत्मा की साधना करने वाला एक ऐसा साधक होता है, जो विषय-वासनाओं का परित्याग कर, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर पांच महाव्रतों, समितियों, आचारों, गुप्तियों का पालन करता है।

आत्मविकास के लिए मनुष्य को प्रथमतः साधु-मार्ग पर चलना पड़ता है और अन्ततोगत्वा उसे अपने चरम लक्ष्य अरिहंत को प्राप्त करना होता है, यही आत्मविकास का दर्शन है, यही आत्मा की आध्यात्मिक यात्रा है, यही व्यक्तित्व का ऊर्ध्वगमन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक : अर्थ और स्वरूप

समभावो सामइयं, तणकंचण-सत्तुमित्तविसओ ति ।
निरभिस्संगं चित्तं, उचियपवित्तिप्पहाणं ।। ४२५
वयणोच्चारणकिरियं, परिचत्ता वीयरायभावेण ।
जो झायदि अप्पाणं परमसमाही हवे तस्स ।। ४२६
विरदो सव्वसावज्जे, तिगुत्तो पिहिदिंदियो ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ।। ४२७

'समणसुत्तं' की उपर्युक्त गाथाओं (मोक्षमार्ग, द्वितीय खंड) में कहा गया है कि तिनके और सोने में, शत्रु और मित्र में समभाव रखना ही सामायिक है । राग-द्वेष-रूप ध्यान या अध्ययन-रूप उचित प्रवृत्ति प्रधान चित्त को सामायिक कहते हैं और जो वचन-उच्चारण की क्रिया का परित्याग करके वीतराग भाव से आत्मा का ध्यान करता है, उसके परम समाधि या सामायिक होती है । जो सर्वसावद्य से विरत है, त्रिगुप्तियुक्त है तथा जितेन्द्रिय है, उसके सामायिक स्थायी होती है । यहां यह बात स्पष्ट है कि राग-द्वेष-से-रहित रहना या सुख-दुःख में, मित्र-शत्रु में, लाभ-हानि में समभाव रखना ही सामायिक है और इसमें त्याग या वीतरागत्व का भाव समाहित है; लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि आदमी आचरण ही न करे, सामायिक तो आचार-प्रधान क्रिया है । क्रियावान् ही विद्वान् है—'यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।' ज्ञान और आचरण दोनों को जानना आवश्यक और लाभप्रद है । ४८ मिनिट की सामायिक करना समभाव-संपुष्ट साधना है और सामायिक की सार्थकता ही समताभाव में है, इसे हम स्वरूप की खोज भी कह सकते हैं । यहां मन और बुद्धि को एक या सम किया जाता है, इसी के द्वारा स्वरूप को खोजा या जाना जाता है । यह एक ऐसा विचक्षण स्वाध्याय है, जहां मनुष्य विभाव-से-स्वभाव की ओर ऊर्ध्वंग होता है । सामायिक एक वैयक्तिक क्रिया है, साधना है, स्वाध्याय-ज्ञान है । भाव-स्वरूप हमारा साध्य है, जिसके लिए द्रव्य स्वरूप सामायिक साधन है । सामायिक मन को नियन्त्रित कर अशुभ कर्मों को क्षीण करना है—

सामाइय वय जुत्तो, जाव मणो होइ नियम संजुत्तो ।
छिन्नइ असुहं कम्मं, सामाइय जूत्तिया वारा ।।

सामायिक ज्ञान को आचरण में रूपान्तरित करने की क्रिया है, इसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्देह नहीं। यह बाह्य न होकर आन्तरिक क्रिया है। जैनाचार्यों ने आचार-सम्बन्धी नियमों का विशद रूप में चित्रण किया है। जैन आचार दर्शन में छह आवश्यक कर्म माने गए हैं : (१) सामायिक, (२) स्तवन, (३) वन्दन, (४) प्रतिक्रमण, (५) कायोत्सर्ग, (६) प्रत्याख्यान। इन आचार-नियमों में सामायिक का स्थान प्रथम है। सामायिक में छह बातें महत्त्वपूर्ण होती हैं : (१) समताभाव, (२) राग-द्वेष का त्याग, (३) आत्मा की स्थिरता, (४) सावद्ययोग-निवृत्ति, (५) संयम, तप आदि की एकता, (६) नित्यकर्म व शास्त्र। कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी कृति नियमसार में कहा है:—

झाणणिलीणो साहू परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।
तम्हा दु झाणमेव हि सव्वदिचारस्स पडिक्कमणं॥ ९३

अर्थात् ध्यान सब प्रकार के अतिचार का प्रतिक्रमण है, ध्यान द्वारा सब प्रकार के दोषों का परित्याग किया जाता है। ध्यान में संयम और इन्द्रिय-निग्रह आवश्यक है, सामायिक में भी संयम और निग्रह का, त्याग और समत्व का भाव मूल आधार माना जाता है। ध्यान द्वारा चित्त, मन इन्द्रियों का निग्रह किया जाता है, इसी प्रकार के ध्यान से आत्मा भी स्थिरीभूत होती है। 'ज्ञानार्णव' में संयमी योगी को प्रशस्य कहा गया है—

भवभ्रमणनिर्विण्णा भावशुद्धि समाश्रिताः।
सन्ति केचिच्चभूपृष्ठे योगिनः पुण्यचेष्टिताः॥ ५।३
विरज्य कामाभोगेषु विमुच्य वपुषि स्पृहाम्।
यस्य चितं स्थिरीभूतं स हि ध्याता प्रशस्यते॥ ५।३

जो व्यक्ति संसार-परिभ्रमण के दुःख से खिन्न होकर राग-द्वेष रहित होते हुए अपने अन्तःकरण को अतिशय निर्मल रखते हैं ऐसे भी कुछ योगी यहां विद्यमान हैं, उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। और जिस ध्याता का चित्त इंद्रिय विषय-भोगों से रिक्त होकर शरीर के विषय में निर्ममत्व होता हुआ स्थिरता प्राप्त करता है, वह ध्याता प्रशस्य है।

समत्व की प्राप्ति ही सामायिक है—"समस्य आयः समायः तदेवसामायिकम्" आत्मा की स्वभाव दशा भी सामायिक है और समत्व में रहने वाला ही परम श्रमण कहा जाता है—'समणो जो समणो।' 'सम्' उपसर्ग-पूर्वक 'आय' धातु में 'इक्' प्रत्यय लगाने से सामायिक बना है, जिसका अर्थ हुआ आत्म स्वरूप में रमण करना। 'आय' से मतलब है अनर्थ का पूर्ण रूप से नष्ट होना; यही समाय है। जो साधक त्रस और स्थावर सभी प्राणियों के प्रति समभाव रखता है, उसी की सामायिक सच्ची सामायिक है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो समो सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य ।
तस्स सामाइयं ठाई, इदि केवलिभासियं ।।

—समणसुत्तं

आत्मा के साथ समत्व या एकत्व या एकीभूत होना समाय है। 'समाय' में होना सामायिक है। सामायिक की स्थिति में श्रमण और श्रावक दोनों समान भूमि पर आ खड़े होते हैं, दोनों आरम्भ-परिग्रह के त्यागी हो जाते हैं। हां, बाह्य रूप में कुछ भेद दिखायी पड़ता है, आंतरिक दृष्टि से वे समान होते हैं—

सामायिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ।।

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, १०२

'योगशास्त्र' (३-८२) में सामायिक व्रत को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

त्यक्तार्तरौद्रध्यानस्य, त्यक्तसावद्यकर्मणः ।
मुहूर्तं समतायाः तां, विदुः सामायिक-व्रतम् ।।

गृहस्थ, श्रावक का आर्त्त तथा रौद्र ध्यान और सावद्य तथा पापमय कर्मों का परित्याग का एक मुहूर्त तक समभाव में आत्म-चिन्तन या स्वाध्याय में बिताना ही सामायिक व्रत है।

समता-भाव या समत्व का होना ही सामायिक है। सामायिक दो प्रकार की होती है : (१) श्रावक की सामायिक सागार सामायिक होती है (२) साधु की सामायिक अनगार सामायिक होती है। सब पदार्थों, वस्तुओं, प्राणियों के साथ समभाव रखने वाला व्यक्ति ही सामायिक जैसे परम पावन व्रत को धारण कर सकता है। सामायिक की शुद्धता मन की शुद्धता पर अवलम्बित है। सामायिक में सात बातों की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है—(१) मन, (२) वचन, (३) क्षेत्र, (४) काल, (५) आसन, (६) विनय, (७) काया।

सामायिक द्वारा ३२ दोषों से बचा जा सकता है; इनमें १० दोष मन के हैं, १० दोष वचन के हैं और १२ काया के हैं। काया के दोषों पर अधिकार पाना जितना सरल है उतना ही मन-वचन के दोषों पर अधिकार पाना कठिन है।

सामायिक की प्रासंगिकता में कोई सन्देह नहीं। आज मनुष्य का जीवन अन्दर-बाहर दोनों रूपों में अशान्त है, तनावग्रस्त है, कुण्ठाग्रस्त है। चारों ओर का वातावरण विषाक्त है, प्रदूषित है। संघर्षमय जीवन जी रहा है आज का मनुष्य। हिंसा, कलह, द्वेष, घृणा, क्रोध, भ्रष्टाचार, लूट-मार,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोरी-डकैती, रिश्वत, भाई-भाई में झगड़ा, स्वामी-सेवक में झगड़ा, बड़ी ही भयानक स्थिति है आज हमारे समाज की। सबकी निगाहों में शंका है, भय है, हिंसा है। ममता, प्रेम, स्नेह, सहानुभूति, करुणा की नदियां सूख गयी हैं, जीवन रेगिस्तान बन गया है। विसंगतियों के व्यूह में फंसा है आदमी, विषमता में सांस लेने से दम घुट रहा है। शुद्धता न वचन में है न व्यवहार में। एक-दूसरे की टांग पकड़कर खींच रहा है, उसे गिराने के हथकण्डे आजमा रहा है। सन्तोष और शान्ति का कहीं नाम नहीं।

अधम से अधमतर होता जा रहा है मनुष्य। साम्प्रदायिकता की भावना उत्तेजित कर निर्दोष लोगों का खून बहा रहा है, धर्म को निजी स्वार्थ के लिए प्रयोग कर रहा है। जीवन-मूल्यों का ह्रास हो रहा है और मनुष्य मौन साधे खड़ा है। शापेनहावर ने ठीक कहा है—'दुनिया में बुराइयां इसलिए नहीं हैं कि बुरे आदमी ज्यादा बोलते हैं, बल्कि इसलिए है कि भले आदमी समय पर चुप रह जाते हैं।' गुरुनानक ने सज्जन लोगों, सात्विक वृत्ति वाले धर्मानुरागी गांव वालों को कह दिया कि वे उजड़ जाएं। यह शाप नहीं वरदान था, क्योंकि वे अच्छे शील वाले लोग दूसरे स्थान पर जाकर सद्गुणों का प्रचार करेंगे, इससे मानव-समाज में शील का, धर्म का, सदाचार का प्रसार होगा। उन्होंने उन लोगों को अपने गांव में बसे रहने का वरदान दिया जो दुराचारी थे, हिंसक थे, अधर्मी थे। यह इसलिए ताकि इन बुरे लोगों के दूसरी जगह जाने पर बुराई न फैले, वे यहीं सीमित जगह में केन्द्रित रहें।

जैनधर्म के श्रमण आज भी वर्ष के आठ महीने भ्रमण करते हैं; चलते-फिरते रहते हैं और जैनधर्म का निरन्तर प्रचार करते रहते हैं। वर्षा-योग या चातुर्मास में (वर्षा के चार महीनों में) वह हिंसा रोकने के लिए अधिक घूमते-फिरते नहीं। एक स्थान पर रह कर श्रावकों के आचार को शुद्धि की ओर ले जाने का प्रयत्न करते हैं। सामायिक भी आचार की शुद्धि की एक क्रिया है। इसके द्वारा जीवन-मूल्यों को पुनर्जीवित किया जा सकता है, उनके ह्रास को रोका जा सकता है। आज मानवता का, अहिंसा का, अपरिग्रह का नाम ग्रन्थों तक ही सीमित हो गया है। हम प्रत्येक कार्य स्वार्थ-बद्ध दृष्टि से करते हैं। समाज में नारी भी परिग्रह की सीमा में आ गयी है, वह कामुकता की मूर्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं। उसका पावन मातृत्व जैसे तिरोहित हो गया है, मनुष्य में ब्रह्मचर्य का नाम नहीं। सत्य जीवन से खाली है फिर मानवता कहां रहे? जीवन-मूल्य कहां रहे? फिर मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी?

सामायिक द्वारा हम पांच महाव्रतों या महाणुव्रतों का अनुपालन करते हैं तथा सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, और सम्यक् चारित्र के मार्ग पर चल कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षगामी बनते हैं। आज हम धन संग्रह में ही परमानन्द, परमसुख समझते हैं, परन्तु स्वर्ण के असंख्य भण्डार भी, राज्य की वैभव-सम्पदा भी एक सामायिक से तुच्छ है। धन से सामायिक नहीं खरीदी जा सकती। महाराजा श्रेणिक धर्मानुरागी पूनिया की सामायिक अपार धन देकर भी नहीं खरीद सका, कोई नहीं खरीद सका। भगवान् महावीर ने कहा था कि यदि कोई स्वर्ण के ढेरों से चांद-सूरज को भी छू ले तो भी सामायिक का मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। स्वर्ण-दान से भी श्रेष्ठ है सामायिक—

दिवसे-दिवसे लक्खं, देह सुवण्णे से खंडिय रग्गो।
एणो पुण सामाइयं करेई, न पहुप्पए तस्स॥

सामायिक अभिव्यक्ति नहीं, अनुभूति है; इसमें समभाव का प्राधान्य है, उसी समभाव को जिसे आज का विषमभाव लील गया है। सामायिक करते समय हमें यह देखना चाहिए कि हमारा शत्रुभाव, ईर्ष्याभाव, परिग्रह-भाव, क्रोधभाव, हिंसाभाव कितना कम हुआ है, काम-वासना, तृष्णा-लोभ में कितनी कमी आयी है। रूढ़ियों का अनुपालन करना सामायिक नहीं, सामायिक है रूढ़ियों को परिमार्जित करना, भावना को शुद्ध बनाना— भावों का परिष्कार करना। आचार्य अमितगति ने सामायिक द्वात्रिंशिका' में कहा—

सत्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्
माध्यस्थ-भावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥

अर्थात् हे प्रभो! मेरी आत्मा सदा सभी प्राणियों के लिए मैत्री भाव रखे, गुणशील व्यक्ति को देखकर उसे आनन्द प्राप्त हो, दुःख-क्लेश में फंसे व्यक्तियों-प्राणियों के प्रति मेरे मन में कृपाभाव उत्पन्न हो, मैं किसी के प्रति द्वेषभाव न रखूं और न कोई मेरे प्रति द्वेषभाव रखे, मैं ऐसे लोगों के प्रति भी माध्यस्थ भाव बनाए रखूं। 'तत्वार्थसूत्र' में सामायिक को एक व्रत कहा है (७-२१), उमास्वामी की दृष्टि में 'तीनों संध्याओं मे समस्त पापों या पाप के कर्मों से विरत होकर नियत स्थान पर नियत समय के लिए मन-वचन-काय के एकाग्र करने को सामायिक कहते हैं। जितने समय तक गृहस्थ सामायिक करता है उतने समय के लिए वह महाव्रती के समान हो जाता है। उमास्वामी ने सामायिक को चारित्र्य भी माना है(९-१८)। समस्त पापकर्मों का परित्याग करना सामायिक चारित्र है। 'छहढाला' में समताभाव रखने का, सामायिक करने का आदेश दिया गया है—

रख उर समताभाव, सदा सामायिक करिए,
परव चतुष्टय मांहि, पाप तज पोषध धरिए।
भोग और उपभोग नियम करि ममत्व निवारे,
मुनि को भोजन देय फेर, निज करिहि अहारै॥ (६-१४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन में समता भाव शल्य के अभाव को, निर्विकल्प को धारण करके सदा सामायिक कीजिए। भगवान् महावीर सदैव समभाव के साधक रहे, अतः निर्भय रहे—"सामाइयमाहु तस्स जं, जो अप्पाण भए ण दंसए' (सूत्रकृतांग १।२।२।१७)। उनका सफल जीवन समता के आलोक से प्रदीप्त रहा। 'आचारांग' में आत्मज्ञान का, अस्तित्व-बोध का वर्णन कर समत्ववृत्ति का आदेश दिया गया है। यहां अहिंसा में समत्व की, आत्मवाद की अभिव्यंजना है। स्व-सत्ता को जानना, अपने अस्तित्व का परिज्ञान प्राप्त करना ही आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी होना है। समता को धारण कर मनुष्य स्वयं प्रसन्न होता है, दूसरों को भी प्रसन्न रखता है। 'आचारांग' में कहा गया है कि भगवान् महावीर आत्मशुद्धि के द्वारा संयत प्रवृत्ति को स्वयं ही प्राप्त करके शान्त, सरल बने और जीवन पर्यन्त समतामय रहे—

सयमेव अभिसमागम्म आयत जोगमायसोहीए।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले आवकहं भगवं समितासी॥

सामायिक में कुछ विशेष बातों की शुद्धता पर विशेष ध्यान जाता है, जैसे (१) द्रव्यशुद्धता—सभी प्रकार के उपकरण शुद्ध हों, यहां तक कि तन-मन भी शुद्ध हो। मन में किसी प्रकार का राग-द्वेष न हो, क्रोध-आवेशजन्य आवेश न हो। सामायिक करने का स्थान, आसन आदि सभी पवित्र, शुद्ध हों। माला ग्रन्थ तक शुद्ध हों। किसी प्रकार का आडम्बर या कृत्रिमता न हो। न तनाव हो, न मानसिक संघर्ष हो। वास्तव में उपकरणों की शुद्धता वातावरण को शुद्ध कर मन को भी शुद्ध करने में सहायक होती है; (२) क्षेत्र की शुद्धता-सामायिक के लिए अनिवार्य है। जहां जो कार्य-विशेष किया जाता है, उसकी अपनी महिमा-गरिमा होती है, उसके लिए वातावरण की अनुकूलता, सामग्री की शुद्धता आवश्यक है। एक स्थान की सामग्री दूसरे स्थान पर उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती; जैसे प्रत्येक प्रयोग के लिए अलग-अलग सामग्री और स्थान की अपेक्षा होती है उसी प्रकार सामायिक के लिए भी स्थान-विशेष की अपेक्षा होती है, न्यायालय की कार्रवाई पुस्तकालय में नहीं चलायी जा सकती, फिजिक्स के प्रयोग कैमिस्ट्री की प्रयोगशाला में नहीं किए जा सकते; (३) जैसे प्रत्येक कार्य करने का अपना नियतकाल होता है, निश्चित समय होता है, उसी प्रकार सामायिक का निश्चित समय होता है, नियम रूप में सामायिक की जाती है। सूर्योदय का, सूर्यास्त का समय निश्चित होता है। विशेष बीज बोने का विशेष समय एवं निश्चित काल होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के विषयों, कोर्सों, ट्रेनिंगों को पूर्ण करने का, अध्ययन करने का समय निश्चित होता है। निश्चित काल और नियमित रूप में सामायिक करना 'काल-की-शुद्धता' कहलाता है; (४) काल की शुद्धता के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान 'भाव-की-शुद्धता' भी सामायिक की एक शुद्धता है। समत्व की साधना सामायिक है। हम समभाव धारण करें, समताभाव में लीन रहें और द्वेष-घृणा से दूर रहकर सदा आत्मपरीक्षण-आत्मनिरीक्षण करते रहें।

सामायिक से समभाव का विकास होता है, पापवृत्तियों का विनाश होता है। सामायिक का धर्म समतामय है। जो सामायिक करता है उसमें शत्रु-मित्र का भाव नहीं रहता, ऐसी समदृष्टि का विकास करती है सामायिक—

सावद्ययोग विरतेरभ्यासो जायते ततः।
समभावविकासः स्यात् तच्च सामायिकं व्रतम्॥

सात्विक प्रवृत्तियों का उदय होता है सामायिक द्वारा, इससे आत्म-विश्वास की—कायिक, मानसिक और वाचिक सब प्रकार की सत्प्रवृत्तियों का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। सामायिक करने वाला व्यक्ति द्वन्द्वों से पार चला जाता है।

'मूलाचार' में आत्मा को पापास्रव से दूर करने के लिए सामायिक को उत्तम उपाय बताया है। ज्ञान की आत्मा से एकत्व या समत्व स्थापित करने को सामायिक कहा है (मूलाचार ७।२३)। जैन दर्शन में ज्ञान और विवेक का महत्व अत्यधिक है; मुनियों के तो उठने-बैठने, खाने-पीने आदि में नियमों का विधान है ताकि उन्हें कोई पाप न लगे। सावधानी या विवेक से चलना, खड़े होना, बैठना, सोना, खाना-पीना, बोलना—इनसे पापकर्म का बन्ध नहीं होता। पाप का मूल प्रमाद है, अविवेक है। मनुष्य की तनिक-सी लापरवाही और असावधानी से पापकर्म उसे अपने अभिशाप में जकड़ लेते हैं।

जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासन्तो पावं कम्मं न बंधई॥

नित्य-नैमित्तिक क्रिया-विशेष तथा सामायिक का प्रतिपादक शास्त्र भी सामायिक कहा जाता है। समत्व की साधना का वर्णन किसी-न-किसी रूप में सभी धर्मग्रन्थों में, आध्यात्मिक रचनाओं में प्राप्य है, और इस प्रकार की साधना सभी कर सकते हैं; समता और संयम के मार्ग पर चलने वाला किसी भी वर्ग, सम्प्रदाय या धर्म का व्यक्ति कर सकता है, इसके लिए जैन होना भी आवश्यक नहीं। यों तो अनेक जैन हैं; लेकिन उनमें समत्वदृष्टि का अभाव मिल सकता है। मनुष्य को सभी प्राणियों के प्रति आत्मभाव रखना चाहिए। सुख-दुःख, जीवन-मरण, लाभ-हानि, प्रशंसा-निन्दा में हमें समभाव रखना चाहिए, समता में रहना चाहिए, ममत्व और अहंकार छोड़ना चाहिए, निर्लेप भाव रख कर त्रस-स्थावर सभी जीवों में समभाव रखना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौरव, भय, दण्ड, शोक और बन्धनहीन रहने वाला मोक्ष प्राप्त कर सकता है। यहां भी समभाव की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है—

निम्ममो निरहंकारो निस्संगो चत्तगारवे।
समो य सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु यम ॥८९॥
लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे तहा।
समो निन्दापसंसासु तहा माणावमाणओ ॥९०॥

—उत्तराध्ययन—३९

'गीता' में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को सभी स्थितियों में चाहे अनुकूल हों या प्रतिकूल समभाव धारण करने का उपदेश दिया है; लाभ हो या हानि, सफलता मिले या असफलता, दोनों दशाओं में समत्वभाव रखना चाहिए—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

—गीता २,४८

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

—गीता; ६—३२

हे धनंजय ! आसक्ति छोड़कर, कर्म की सिद्धि हो या असिद्धि, दोनों को समान ही मानकर योगस्थ होकर कर्म करे। यहां योग को ही समता कहा गया है। हे अर्जुन ! सुख हो या दुःख, अपने समान औरों को भी होता है। जो व्यक्ति ऐसी आत्मौपम्य दृष्टि सर्वत्र रखे वह कर्मयोगी ही सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि जिसे सुख-दुःख एक से ही हैं, जो स्वस्थ है; अर्थात् अपने में ही स्थिर है; मिट्टी, पत्थर, सोना जिसे समान है, जो सदा धैर्ययुक्त है, जिसे मान-अपमान, मित्र-शत्रु समान है, जिसके सब उद्योग छूट गए हैं वह व्यक्ति गुणातीत है—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरतुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥

—गीता—१४।२४,२५

सामायिक समत्व एवं एकत्व की साधना है, अपने को जानने-पहिचानने की साधना है। सामायिक स्वरूप का अनुसंधान है, जिसमें ज्ञानाचार का मणि-कांचन योग है। समत्व के संस्कारों का बीजारोपण करने का अनुष्ठान है यह। इसे हमें कर्मकाण्ड के आवरण में लपेट कर धूमिल नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना चाहिए, इसे जीना चाहिए, जीवन में उतारना चाहिए, मन्त्रों का जाप ही काफी नहीं, उनके अर्थ को, भाव को जानना भी महत्त्वपूर्ण है। सामायिक समत्व का भाव लेकर वर्तमान में जीने की साधना है, एक आध्यात्मिक अनुष्ठान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर का धर्म : व्यावहारिक रूप

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने धर्म के विषय में कहा है—"सत्यस्वरूप की व्यक्ति प्रवृत्ति अर्थात् धर्म की ऊंची-नीची कई भूमियां लक्षित होती हैं, जैसे गृह-धर्म, कुल-धर्म, समाज-धर्म, लोक-धर्म और विश्व-धर्म या पूर्ण धर्म। किसी परिमित वर्ग के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जनसमूह के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाला धर्म उच्च कोटि का है। धर्म की उच्चता उसके लक्ष्य के व्यापकत्व के अनुसार समझी जाती है। गृह-धर्म या कुल-धर्म से समाज-धर्म श्रेष्ठ है, समाज-धर्म से लोक-धर्म, लोक-धर्म से विश्व-धर्म जिसमें धर्म अपने शुद्ध और पूर्ण धर्म में दिखाई पड़ता है।" महावीर का धर्म विश्व-धर्म है, शाश्वत धर्म है क्योंकि उसमें सकल प्राणियों के दुःखों का निवारण करना, उन्हें दुखविमुक्त करना और उत्तम सुख तक पहुंचाने का मार्ग दर्शाया गया है। आचार्य समन्तभद्र ने इसी धर्म को यों अभिव्यंजित किया है—

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसार दुखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे॥
(रत्नकरण्डक)

यही महावीर का 'सर्वोदय धर्म' या 'सर्वोदय तीर्थ' है। तुलसीदास ने परहित को महाधर्म माना है, अहिंसा को परम धर्म कहा है—

परम धरम श्रुति विदित अहिंसा।
पर-निन्दा सम अघ न गरीसा॥
परहित सरिस धरम नहिं भाई।
पर-पीडा सम नहिं अधमाई॥
(उत्तरकाण्ड)

महाभारत में धर्म के स्वरूप का इस प्रकार प्रतिपादन किया गया है—

धर्मः सतां हितः पुंसां धर्मश्चैवाश्रयः सताम्।
धर्मात्लिोका अस्तात प्रवृत्ताः सचराचराः॥

धर्म जीवों का हित है, सत् पुरुषों का आश्रय है, चराचर तीनों लोकों का परिसंचालन इसी से है, यही लोक और जीवन का आधार है। वास्तव में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो कुछ श्रेयस्कर और मंगलदायक है, कल्याणकारी है वही धर्म है। महावीर का धर्म-तीर्थ दुःखों का हनन करने वाला है, भवसागर से संतरण करने वाला है। तीर्थ-निमित्त से ही संसार को तिरा जा सकता है—"तरति संसार महार्णवं येन निमित्तेन तत्तीर्थमिति" (विद्यानंद) तीर्थंकर महावीर की वाणी है—"धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ"—धर्म मानसिक विशुद्धि में विराजमान है। निर्मल चित्त वाला, आचार-विचार की पवित्रता वाला परम सुख प्राप्त कर सकता है। गीता में कहा गया है कि जो धर्म विषाद-मुक्त नहीं करता वह धर्म एक प्रकार से जीवन-शोधन, आत्म-शोधन की प्रक्रिया का नाम है जिसके लिए संयम की अत्यधिक आवश्यकता है। संयम से हमारे आचार-विचार का विरेचन होता है। लेकिन संयमी बनने के लिए तप-साधना की अपेक्षा रहती है। तप-साधना व्यष्टिगत या समष्टिगत धरातलों पर करनी पड़ती है।

महावीर ने जब अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की बात कही और अनेकांत तथा स्याद्वाद का मार्ग दर्शाया तो धर्म को अधिक व्यावहारिक बनाया। धर्म की सामूहिक आराधना धर्मसंघ द्वारा परिसम्पन्न होती है। जैनधर्म संघ-प्रधान धर्म है। धर्मसंघ प्रधान होने पर धर्म की मर्यादाओं का व्यक्ति को अनुपालन करना पड़ता है। जैन धर्मसंघ चार अंगों का समावेश है—साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका। साधु-साध्वी को पांच महाव्रतों का पूर्णतः परिपालन करना पड़ता है। वे विषयेच्छा विहीन होते हैं, न किसी का अनिष्ट करते हैं, न अनिष्ट सोचते हैं। साधु जीवन निस्पृहता का, वीतरागत्व का जीवन होता है। सदा हित-मित वचन बोलते हैं। अनुशासन, संयम, मर्यादा का वह पूर्णतः परिपालन करते हैं। साधु-मुनि मान-अपमान से ऊपर होते हैं, साम्प्रदायिक आग्रह से भी बहुधा ऊपर उठे होते हैं। वैसे जैन धर्म कई एक सम्प्रदायों, वर्गों, गच्छों में विभक्त है फिर भी सभी सम्प्रदाय के साधु-मुनि, साध्वियां आचरण में, व्यवहार में पावनता, संयम, मर्यादा का मार्ग अपनाते हैं। उनकी पद-यात्राएं धर्म का प्रचार करने में बहुत सहायक हैं। दूर-दूर जाकर लोगों को धर्म की रोशनी देते हैं। ऐसा लगता है जैसे तीर्थराज उनके पास स्वयं पहुंच गया हो। तुलसी ने साधु-सन्तों की गुण-वंदना में ठीक ही कहा है—

मुद मंगलमय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथराजू ॥
रामभक्ति जह सुरसरि धारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा ॥
बिनु संतसंग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
(रामचरितमानस)

जैन मुनियों का पावन विहार या उनकी आहार-प्रणाली धर्म को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साकारित करती है, महावीर-धर्म का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करती है। यही महावीर की धर्मक्रांति के संवाहक हैं, समाज का, मानव जाति का हित करने वाले हैं। उधर श्रावक अणुव्रतों का पालन करते हैं। मुनियों की भांति वह पूर्णतः अहिंसा-धर्म पर नहीं चल सकते, पूर्णतः अपरिग्रही या निस्पृही नहीं बन सकते। उन्हें अपनी जीविका के लिए खेती-बाड़ी करनी पड़ती है, नौकरी, मजदूरी करनी पड़ती है। जैनधर्म अहिंसा का प्रमुख प्रचारक है। वह मनुष्य की हत्या न करने का आदेश तो देता ही है, इससे भी आगे वह जीवहत्या का पूर्णतः निषेध करता है; किसी को मानसिक, शारीरिक, वैचारिक कष्ट पहुंचाना भी यहां हिंसा माना गया है।

महावीर ने यह भी कहा—'सर्वाहारं न भुंजते निर्ग्रन्था रात्रिभोजनम्' अर्थात् निर्ग्रन्थ रात्रि-भोज नहीं करते। जैनधर्म में मांस-मछली, अण्डा, सभी का पूर्णतः निषेध किया गया है, फलस्वरूप शाकाहार के प्रचार-प्रसार पर बल दिया गया है। अपने देश में तो शाकाहार का प्रचार-प्रसार चल ही रहा है, यूरोप और अमेरीका, कनाडा आदि देशों में भी इसका प्रचार जोरों पर है। अमेरीका में ७ लाख गायों का वध प्रतिवर्ष होता है, उसको रोकने के लिए जैनधर्म ने गौशालाएं बनवाने के कदम उठाये हैं।

आज संसार में वैचारिक द्वन्द्व अधिक है, मानसिक तनावों में रहता-जीता है आज का मनुष्य। उसके तनाव को, टेंशन को रोका जा सकता है महावीर की अनेकांत दृष्टि से। संसार अस्त्र-शस्त्र की होड़ में अशांत है। रूस, अमेरीका दोनों महाशक्तियों के पास ५० हजार आण्विक हथियार हैं कि इस संसार को कई बार नष्ट किया जा सकता है। हथियारों की होड़ रोकने के लिए भारत के प्रधानमन्त्री ने भी छः देशों की समिति गठित कर जन-मानस को, लोकमत को जगाना चाहा है। महावीर ने अनेकांतवाद द्वारा मत-विरोध को समाप्त कर समन्वयवादी दृष्टि प्रदान की है। उन्होंने कहा—"वस्तुओं के अनन्त धर्मों और पर्यायों को अनन्त चक्षुओं से देखो, उन्हें किसी एक चक्षु से मत देखो। जो व्यक्ति वस्तु-सत्य को एक चक्षु से देखता है वह अपने स्वीकृत सिद्धान्त का समर्थन और दूसरों की स्वीकृतियों का खंडन करता है।" एकान्तवादी, परिग्रहवादी, एक दृष्टि या मनोदशा है इससे संघर्ष उत्पन्न होता है। एकांतवादी दृष्टि से व्यवहार में बाधा पड़ती है, अनेकांतवादी दृष्टि में समता, सापेक्षता का भाव होने से वह मान्य है। 'सूत्रकृतांग' में कहा गया है—"पदार्थ नित्य ही है या अनित्य ही है यह मानना अनाचार है। पदार्थ तो नित्य और अनित्य दोनों है, यही आचार है।" अनेकांतवाद जैनदर्शन की एक अद्वितीय, महत्त्वपूर्ण और मौलिक देन है। एक ऐसी व्यावहारिक जीवन-दृष्टि है जिसके द्वारा हम विरोध व विषमता समाप्त कर सकते हैं। संसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज विषमता के स्थान पर समता का प्रतिपादन करता है। समता जैनधर्म का हार्द है और अनेकांतवाद वैचारिक समता का दर्शन है।

आज संसार भौतिकता या अर्थवादी दृष्टि से दिशाभ्रम में पड़ा है। कहीं, किसी भी पल उसे शांति नहीं। अर्थलोभ में उसकी विवेकशीलता समाप्त हो गई है। जैनधर्म यह मानता है कि परिग्रहवादी को कभी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती—"असंविभागी नह तस्स मोक्खो।" धन ऐसी तृष्णा है जो जितनी बुझाई जाती है उतनी ही वह और तीव्र होती है, अर्थ से तृप्ति नहीं मिलती।

जैनधर्म प्रवृत्तिवादी न होकर निवृत्तिवादी है, लेकिन जैन-समाज कुछ इसके विपरीत आचरण करता दिखाई देता है। वह एक धनी समाज है, देश के अर्थतन्त्र में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। धन का उचित व्यय किया जाना चाहिए, समाज देश हित में वह खर्च हो। तुलसीदासजी कहते हैं—"सो धन धन्य प्रथम गति जाकी" प्रथम गति का अर्थ यहां दान है। धन की तीन गतियां मानी गई हैं—दान, भोग और नाश। दान उत्तम है, भोग मध्यम है और नाश नीच गति है। जो पुरुष न देता है, न भोगता है, उसके धन की तीसरा गति होती है। जैनधर्म में धन-सम्पत्ति को अर्जित करना वर्जित नहीं माना, वह तो इसके अधिग्रह को परिमाण में, सीमा या संयम में बांधना चाहता है। महावीर ने 'भोगोपभोग व्रत' में जो आचार संहिता व्यक्त की है उसका अर्थ ही है भोग की सीमा निश्चित करना, भोग पर नियंत्रण करना। 'भागवत' में कहा गया है—

यावद् भ्रियेत जठरं, तावत् सत्त्वं हि देहिनाम्।
योऽधिकं चाभिमन्येत, स स्तेनो वधमर्हति॥

अर्थात् जितने से पेट भरा जा सके उस पर स्वामित्व करना विहित है, जो इससे अधिक संग्रह करता है वह चोर है, वह वध्य है।

जैनधर्म के 'दशलक्षणपर्व' या 'पर्युषणपर्व' आराधना-साधना पर्व है। इसमें तपस्या, ध्यान, स्वाध्याय आदि द्वारा आत्म-परिशोधन किया जाता है। इस पर्व पर वर्ष भर की भूलों के लिए क्षमायाचना करना और दूसरों की भूलों को क्षमा करने का संकल्प लिया जाता है। महात्मा बुद्ध ने क्षमा को बहुत महान माना है—"शत्रु को हानि पहुंचाकर आप उससे नीचे हो जाते हैं बदला लेकर बराबर हो जाते हैं, पर उसे क्षमा करके उससे ऊंचे हो जाते हैं।" पैगम्बर मुहम्मद ने कहा है कि जो बदला न लेकर दूसरों को क्षमा करता है उसे अल्लाह पसन्द करता है, उसे अल्लाह भी बख्श देता है। उमास्वाती ने 'तत्त्वार्थसूत्र' में धर्म के दस लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तम क्षमा मार्दवार्जवसत्य शौच संयम-
तपस्त्यागार्किचन्यब्रह्मचर्याणि धर्म्मः ।

क्षमा को दस धर्मों में सर्वप्रथम स्थान दिया है। क्षमा से ब्रह्मचर्य तक उत्तम धर्म आत्मा के स्वभाव है। यह पर्व मैत्री का, सद्भाव का संवाहक है। गुणों की पूजा-आराधना का पर्व है, मन को प्रक्षालित करने का महदनुष्ठान है, भीतर झांकने का अवसर देने वाला पर्व है। आत्मिक व आध्यात्मि उपलब्धियों की साधना का पर्व है। 'तत्त्वार्थसूत्र', 'कल्पसूत्र' आदि ग्रन्थों का पाठ भी इस अवसर पर किया जाता है। जैनधर्म के प्रचार-प्रसार में चातुर्मास का, पर्युषण पर्व आदि का विशेष महत्त्व है। यही इस धर्म को ऊर्जा प्रदान करते हैं। यह अलग बात है कि कहीं-कहीं ऐसे अवसर पर आडम्बर, प्रदर्शन, तड़क-भड़क अधिक आ जाती है, लेकिन यह बात तो दूसरे धर्मों-जातियों के पर्वोत्सवों में भी देखी जाती है। धर्म का काम आत्मावलोकन की ओर ले जाने का है। आइन्स्टाइन ने ठीक कहा था कि जब संसार के सारे द्वार बन्द हो जाते हैं तब एक द्वार फिर भी खुला रहता है और वह है धर्म का द्वार। जब पर्युषण आदि पर्व आते हैं तो यह अवश्य धर्म का द्वार खोलते हैं, व्यक्ति की धर्मभावना को जगाते हैं। 'दशवैकालिक' का प्रथम सूत्र है—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो ।।

अर्थात् धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण हैं। जिसका मन सदा धर्म में रमा रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं। महावीर का धर्म अहिंसा का धर्म है, अपरिग्रह का धर्म है, अनेकान्त का धर्म है, यह जीवों के कल्याण का धर्म है, अतः शाश्वत धर्म है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रमजान : जैन दर्शन के आलोक में

'रमजान' इस्लाम धर्म में विशिष्ट महत्त्व रखता है। यह एक पवित्र आध्यात्मिक महीना है जिसमें सभी मुसलमान दिन में रोजा रखते हैं, उपवास रखते हैं। 'रमजान' अरबी भाषा का शब्द है जो 'रम्ज' से निकला है। रम्ज का अर्थ है प्रचण्ड गर्मी, जलन। कहते हैं जिस वर्ष रोजे फर्ज किए गए उस वर्ष सख्त गर्मी पड़ी थी, फिर बारिश भी हुई, इसलिए इसे रहमत की वर्षा का माह कहा जाता है। रोजा "सोम" भी कहलाता है। 'सोम' का अर्थ है रुकना, ठहरना, यानी खाने-पीने तथा अन्य इन्द्रिय-सुखों से अपने आपको रोकना। पौ फटने के पूर्व से लेकर सूर्यास्त तक कुछ न खाना-पीना साधारण रूप में रोजा कहलाता है लेकिन साथ में इन्द्रिय-निग्रह भी आवश्यक माना जाता है। कहा जाता है रमजान, रहमत, मगफिरत (माफी, नजात, छुटकारा) और नरक से आजादी का महीना है। कुरान शरीफ में उल्लेख है—ए ईमान वालो! तुम पर रोजे उसी प्रकार फर्ज किए गए जैसा कि पूर्व की जातियों (लोगों) पर किए गए ताकि तुम परहेजगार (संयमी) बनो। अधिक बीमार हो, यात्रा में हो तो बाद में उतने रोजे रख लो जितने इस दौरान छूट गए हों। जो इतने दुर्बल (शारीरिक) हों कि रोजा न रख सकें, वे किसी गरीब को खाना खिला दिया करें। रमजान के महीन में रोजे फर्ज किए गए। (सन् दो हिजरी में, मदीना में) और इसी माह कुरान शरीफ, अवतरित हुआ (सन् ६१२ ई०) जो लोगों के लिए सद्शिक्षा है।" (२, १८३-८५) रोजा संयम और आत्मानुशासन का मार्ग दर्शाता है। यह मनुष्य को अन्तर्बाह्य पवित्र बनाता है। बुराइयों से बचाता है। शैतान को यद्यपि इस माह बन्द रखा जाता है, लेकिन वर्ष की बुराइयों का इतना अधिक बोझ रहता है—बुरे संस्कार जड़ जमाए रखते हैं कि उनका बहुत कुछ प्रभाव मनुष्य पर पड़ा रहता है इसलिए शैतानी कुप्रवृत्तियां उसे सद्मार्ग से विचलित करती रहती हैं तभी तो यह रमजान जैसे पवित्र महीने में भी दुष्कर्म तथा दुर्व्यवहार करता है। रोजा पूर्ण संयम, संतोष, अनुशासन, इन्द्रिय-निग्रह का रास्ता दर्शाता है यानी रोजे की दशा में क्रोध न करें, अपशब्द न बोलें, चुगली न करें, कान से बुरी बात न सुनें, हाथ से बुरा काम न करें, आंख से बुरा न देखें यानी किसी पर कुदृष्टि न डालें, कुमार्ग पर न चलें—सभी इन्द्रियों को पूर्ण संयम में रखना रोजा है। भूखा, प्यासा होने पर भी सामने रखी अच्छी वस्तुओं को न खाएं, न पिएं। जहां तक हो सके रोजेदार को दान-खैरात भी करना चाहिए, शास्त्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का पठन करना चाहिए—कुरान शरीफ पढ़ना चाहिए। इस माह इबादत करने का सत्तर गुना पुण्य मिलता है। रोजी में भी बरकत की जाती है अल्लाह की तरफ से। रमजान में सूर्यास्त होने पर "इफ्तार" (या पारणा) किया जाता है और पौ फटने से पूर्व जो खाया-पिया जाता है उसे "सहरी" कहते हैं। बिना "सहरी" खाए रोजा रखा जा सकता है, परन्तु कुछ दुश्वार होता है। सहरी खाना बेहतर है। रात्रि में "नमाजें-तरावीह" पढ़ते हैं। उस नमाज में सम्पूर्ण कुरान शरीफ का पाठ एक बार किया जाता है और प्रति रात्रि एक-डेढ़ पारा पढ़ा जाता है। रमजान में "शबे-कद्र" आती है जिसमें प्रथम बार 'कुरान शरीफ' नाजिल हुआ। इस महारात्रि में इबादत करने का पुण्य एक हजार रात की इबादत करने के बराबर मिलता है।

प्रत्येक धर्मानुयायी रोजा/उपवास रखते हैं। ईसाई, यहूदी भी रोजा रखते हैं। हिन्दू धर्म में व्रत या उपवास का विशेष महत्त्व है। कुछ लोग तो एकादशी का/अष्टमी का/मंगलवार का अकसर व्रत रखते हैं। जन्माष्टमी पर भी व्रत रखा जाता है। उपवास रखने का प्रावधान जैनधर्म में भी विद्यमान है। "दसलक्षण" या "पर्युषण पर्व" दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में मनाया जाता है जो १०/८ दिन तक चलता है। लोग नित स्नान कर देव-दर्शन करते हैं। प्रवचन सुनते हैं। शास्त्रों का पाठ/व्याख्या करते हैं। सब अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार व्रत/उपवास रखते हैं। भाद्रपद शुक्ला दशमी को 'सुगन्धदशमी पर्व' होता है। उस दिन मंदिर में धूप खेने के लिए जाते हैं। भाद्र शुक्ला चतुर्दशी 'अनन्त चतुर्दशी" कहलाती है। जैनधर्म में इस दिन उपवास रखने से बहुत लाभ/पुण्य मिलता है। यह दसलक्षण पर्व का अंतिम दिन भी होता है। पूजन/अर्चन के बाद अनन्त चतुर्दशी व्रत कथा होती है। जुलूस भी निकालते हैं। निर्जल उपवास करने वाला कथा का श्रवण कर जल लेते हैं। श्वेताम्बर में इसे "पर्युषण पर्व" कहा जाता है। साधु लोग दस प्रकार के कल्प/आचार करते हैं। "पर्युषण" का अर्थ है पूर्ण रूप से वसना। एक स्थान पर स्थिर रूप में रहना "पर्युषण" कहलाता है। इसे "संवत्सरी" या "सांवत्सरिक पर्व" भी कहते हैं—साधुओं के वर्षावास निश्चित करने का दिन यही होता है। भाद्र कृष्णा १२ से शुक्ला चौथ तक आठ दिन श्वेताम्बर सम्प्रदाय पर्युषण मनाता है। उपवास मन को, तन को निर्मल बनाता है। इस पर्व की समाप्ति पर सब वैर-भाव भूल कर गले मिलते हैं और "मिच्छामि दुक्कडं" कहकर क्षमायाचना भी करते हैं। जो दूर होते हैं उनसे पत्र लिखकर क्षमायाचना की जाती है। इन दिनों "तत्त्वार्थसूत्र", "कल्पसूत्र", "भक्तामर स्तोत्र", "रत्नकरण्ड श्रावकाचार" आदि शास्त्रों का अध्ययन किया जाना पुण्यदायक समझा जाता है। अष्टान्हिका पर्व, वीर शासन जयन्ती, श्रुतपंचमी, अक्षयतृतीया, दीपावली, रक्षाबंधन जैसे पर्वों को मनाते समय भी व्रत या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपवास तथा शास्त्र अध्ययन द्वारा तन-मन साफ रखा जाता है। वस्तुतः इन्द्रियों का उपशमन उपवास कहलाता है—

उवसणो अक्खाणं, उववासो वण्णिदो समासेण।
तम्हा भुंजंता वि य, जिदिंदिया होंति उववासा॥

अर्थात् इन्द्रियों के उपशमन को उपवास कहते हैं। जितेन्द्रिय साधु भोजन करते हुए उपवासी होते हैं। दूध, दही, घी आदि पौष्टिक भोजन-पान का त्याग "रस-परित्याग" कहलाता है। जैन दर्शन में कषायों का निरोध, ब्रह्मचर्य का पालन, जिनपूजन, अनशन, सब "तप" हैं। भक्तजन यही तप करते हैं। तप मुख्यतः दो प्रकार का है (१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। दोनों के छः-छः प्रकार हैं। कर्मों की निर्जरा के लिए आहार का त्याग "अनशन तप" है। और अनशन तप वह है जिससे मन में अमंगल की चिन्ता उत्पन्न न हो, इन्द्रियों की हानि न हो तथा मन-वचन काया रूप योगों की हानि न हो यानी अपनी सामर्थ्य-शक्ति के अनुसार तप करना चाहिए। इस्लाम धर्म में रोजे की जो महत्ता है—तन-मन शुद्ध करना, वैसी ही जैन दर्शन में व्यक्त हुई है। आत्मा को शुद्ध, पवित्र करना, शरीर को स्वस्थ करना, इसे आराम देना उपवास है। इसीलिए महावीर ने विष-द्रव्य को त्यागने का उपदेश दिया है—

रसापगामं न निसेवियव्वा पायं रसा दित्तिकरा नराणं।
दित्तं च कामा समभिद्दवंति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी॥

रसों का अधिक सेवन करना रोगी बनना हैं, इसलिए दूध, दही, मक्खन, चीनी आदि का त्याग अच्छा है। रस विकार जन्य है। दृष्टि, काम-वासना पैदा करने वाले हैं, पीड़ित करने वाले हैं जैसे मीठे फल वाले पेड़ को पक्षी पीड़ित करते हैं। उपवास से दो अर्थ-ध्वनि निकलती है (१) भोजन न करना (२) ईश्वर के समीप रहना। परमात्मा की शक्ति, आनन्द, ज्ञान, प्रेम जागृत होता है। उपवास से सभी धर्मों में/दर्शनों में ईश्वर की प्राप्ति होती है। "गीता" (अध्याय १६) में वाणी-तप, मन-तप, शरीर-तप का वर्णन किया है। पार्वती ने अपने पति शिवजी को प्राप्त करने के लिए वर्षों तक तप किया, यहां तक कि कन्द, मूल, फल, साग का ही सेवन किया। इनका त्याग कर फिर हवा-पानी के सहारे तप किया और अन्त में पति चरणों में ऐसा अनुराग उत्पन्न हुआ कि स्वयं को भूल गई—

नित नव चरण उपज अनुरागा,
बिसरी देह तपहिं मनु लागा।
संबत सहस मूल फल खाए
सागु खाई सत बरष गवाएं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कछु दिन भोजनु बारि बतासा,
किए कठिन कछु दिन उपबासा।
पुनि परिहरे सुखानेउ परना,
उमहि नामु जब भयउ अपरना।

(रामचरितमानस बालकाण्ड ७४)

उपवास मानसिक, वाचिक और शारीरिक शुद्धि का आधार है। इसका लौकिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व है। इस्लाम निवृत्तिमार्गी धर्म है, जैन धर्म भी निवृत्तिमार्गी है। इस्लाम में रोजे द्वारा मानसिक, वाचिक, शारीरिक शुद्धि प्राप्त होती है और बन्दा खुदा के समीप पहुंचने का प्रयत्न करता है, क्योंकि खुदा का कहना है कि "रोजा मेरे लिए है और मैं ही उसका बदला दूंगा।" जैन दर्शन में जो तप—अनशन तप कर्मों की निर्जरा के लिए किया जाता है रोजा रखने से भी व्यक्ति पापों-गुनाहों से मुक्ति पाता है। इन्द्रिय-विषयों तथा कषायों का निग्रह कर ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा जो आत्मा को भावित करता है उसी को तपधर्म होता है—

विसयकसाय-विणिग्गहभावं, काऊण झाणसज्झाए।
जो भावई अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण॥

(समणसुत्तं, १०२)

'तिरुक्कुल' के परिच्छेद-२७ में भी 'तप' का वर्णन किया गया है। जो जैन दर्शन के सन्निकट है—शान्तिपूर्वक दुःख सहन करना और जीव-हिंसा न करना यही तप का सार है। जैनदर्शन ने दस लक्षणों में सर्वोपरि माना है (उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य)। "कुरल" में भी क्षमा की महिमा का गान है। उपवास करके तपश्चर्या करना महान है लेकिन निन्दा करने वालों को क्षमा करना और महान है (परिच्छेद १६)।

रमजान आत्मशुद्धि का, आत्मपरिशोधन का महीना है। इसका आगमन प्रत्येक मुसलमान के लिए स्वागताई है। जब रमजान समाप्त हो जाता है तो शव्वाल माह की प्रथम तिथि को 'ईदुल-फितर' का त्यौहार मनाया जाता है। यह प्रेम का, खुशी का, सद्भाव का पर्व है। समाज में सब एक दूसरे के गले मिलते हैं, एक दूसरे को मुबारकबाद देते हैं। ईदगाह या जामा-मस्जिद में जाकर सामूहिक दोकाना नमाज—शुक्रिए के तौर पर पढ़ते हैं। इस दिन पारस्परिक द्वेषभाव भूल कर सब भाईचारे का, मैत्री का व्यवहार करते हैं, इस दृश्य को दसलक्षण/पर्युषण/सवंत्सरि के पर्व का सदृश देखा जाता है। ८-१० दिनों तक संयमित जीवन बिताते हुए शास्त्रों का अध्ययन कर आत्मपरिशोध/आत्मविरेचन करते हैं और सब एक स्वर में एक-दूसरे के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रति मैत्री भाव दर्शाते हैं, मंगल कामना करते हैं, क्षमायाचना करते हैं—

खामेमि सव्व जीवे मि सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ति मे सव्व भूयेसु वैरं मज्झ न केणई ।।

अर्थात् मैं सब जीवों को क्षमा करता हूं, सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरी सबसे मित्र भाव है, मुझे किसी से बैर, द्वेषभाव नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमाज : आस्था और ध्यान

इस्लाम के पांच प्रमुख सिद्धान्तों में 'नमाज' का अपना विशिष्ट स्थान है, महत्त्व है—(१) तौहीद, (२) रोजा, (३) नमाज, (४) हज, (५) जकात। नमाज प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष पर फर्ज है, उसे अदा न करना, दानिस्ता त्याग करना गुनाह है, पाप है। 'नमाज' का अर्थ है नम्रता, आजिजी, पूजा। अरबी भाषा में नमाज को 'सलात' कहते हैं। नमाज इस्लाम का प्रमुख स्तम्भ है। नमाज इबादत में—बंदगी में शामिल है। इबादत 'अबद' से उत्पन्न हुआ है। 'अबद' का अर्थ है बंदा, सेवक, गुलाम। इस प्रकार इबादत का अर्थ है बंदगी, भक्ति। यदि कोई व्यक्ति किसी का सेवक है, बन्दा है तो उसी प्रकार अपने स्वामी के समक्ष प्रस्तुत रहना चाहिए जैसे सेवक रहता है—विनम्र आज्ञाकारी। सेवक के अन्दर तीन गुण होने चाहिए—(१) अपने स्वामी का स्वामित्व स्वीकार करे यानि जो उसे खाना-पीना देता है, उसकी सुरक्षा करता है, उस स्वामी के प्रति पूर्ण बफादारी का प्रदर्शन करना चाहिए। (२) स्वामी की आज्ञा का अनुपालन करना चाहिए, उसकी सेवा से पल भर भी विमुख न रहे। स्वामी के प्रति पूर्णतः समर्पित रहे—अहर्निश, प्रतिक्षण उसकी सेवा में तत्पर रहे। (३) अपने स्वामी का सदैव आदर-सम्मान करे, उसकी महानता को स्वीकार करे। सेवक जितना अधिक अपने को अधम, लघु, तुच्छ समझेगा और स्वामी को उतना ही अधिक महान, गुणसम्पन्न, सर्वशक्तिमान समझेगा, उसकी भक्तिभावना उतनी ही अधिक श्रेष्ठ होगी। तुलसी, सूर जैसे भक्त इसीलिए महान् सन्त, भक्त समझे जाते हैं क्योंकि इन्होंने अपने को अधम, पापी, तुच्छ समझा है; "राम सो खरो है कौन, मोसो कौन खोटो" (तुलसी) तुलसी ने अपने आपके लिए यहां तक कहा है (वफादारी के कारण), मेरे गले में राम-नाम का पट्टा पड़ा हुआ है। (राम-नाम की जेवड़ी भुतिया मेरो नाम)। इस्लाम में भक्तिभावना के अन्तर्गत भक्त को पूर्णतः अल्लाह के प्रति समर्पित होना है—आत्मसमर्पण करना (अल्लाह के समक्ष) भक्ति का—इबादत का श्रेष्ठ रूप है। 'गीता में भी समर्पण-भाव को भक्ति का प्रथम गुण माना है—

सर्वधर्मान्तिपरित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेम्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(१८,६६)

अर्थात् सम्पूर्ण धर्मों को—सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तू केवल एक मुझ शक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं तुझ सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर। इसी भाव को दूसरे प्रकार से ६२ वें श्लोक में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परं शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

हे भारत! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा। उस परमात्मा की कृपा से ही तू परम शांति तथा सनातन परमधाम को प्राप्त होगा। ईश्वर, शास्त्र, वेद, गुरु, महात्मा के प्रति प्रेम, श्रद्धा तथा पूज्य भाव का नाम भक्ति है। भक्ति बिना प्रेम, श्रद्धा तथा समर्पण के नहीं हो सकती। मान, बड़ाई, भय, आसक्ति का परित्याग करके शरीर और संसार में अहंता ममता-विहीन होकर केवल परमेश्वर को ही परम आश्रय, परमगति, सर्वस्व समझना, अनन्यभाव से श्रद्धा-भक्ति प्रेमपूर्वक ईश्वर के नाम-गुण का अनुचिन्तन करना, स्मरण करना भक्ति है, शरणागत होना है। जब बन्दा खुदा की इबादत करता है तो वह उसकी महिमा का गुण-गान करता है, उसके प्रति समर्पित होता है। खुदा के प्रति समर्पित होना सच्ची भक्ति है, इबादत है। कुरान में कहा गया है, अल्लाह के अतिरिक्त किसी की इबादत न करो—"अल्ला ताबुदू इल्ला इय्याहू" (यूसुफ ४०) जब 'लाइलाहा इल्लिल्लाहू' कहा जाता है तो इसके द्वारा यही इकरार किया जाता है कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूज्य, इबादत करने योग्य नहीं है। अल्लाह का फरमान है—"मनुष्य तथा जिन को इसलिए पैदा किया ताकि वे अल्लाह की इबादत करें, उसके प्रति वफादार हों। जो सेवक स्वामी के यहां हर प्रकार की सुविधाएं प्राप्त करता है उसका यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करे, ऐसा काम न करे जो स्वामी को अप्रिय लगे। सृष्टि-कर्त्ता ईश्वर हमें रहने को विस्तृत भूभाग देता है, जमीन से नाना प्रकार की खाद्य-सामग्री प्राप्त होती है, वह हवा, पानी मुफ्त देता है, अनेक सुखप्रद तथा सुविधाजनक वस्तुएं उसने हमें उपलब्ध कराई हैं तो उसकी भला बन्दगी क्यों न करें? खुदा का जिक्र करना, उसकी महिमा का गान करना, उसकी इबादत करना हमारा उत्तरदायित्व है। यह 'हकूकुल इबाद' कहलाता है। यानि खुदा की बन्दगी करना, इबादत करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है। दूसरा हक मनुष्य का संसार तथा संसार में रहने वालों के प्रति है, सृष्टि के प्रति है इसे "हकूकुल्लाह" कहा जाता है, खुदा की मखलूक के प्रति अपने हक को अदा करना। खुदा प्रति अपने हक को अदा करना हकूकुल-इबाद है; नमाज पढ़ना, रोजा रखना, हज करना सभी 'हकूकुलइबाद' में शामिल है।

'मेराज' की घटना इस्लाम की, पैगम्बर मुहम्मद साहब के जीवन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महान् घटना है। पैगम्बर साहब मस्जिद अकसा से अर्श तक की लाखों कि. मी. की यात्रा कुछ क्षणों—मिनटों में कर लेते हैं। वहां वह अल्लाह का दीदार करते हैं, उनके दरबार में हाजिर होते हैं। उसी समय पांच वक्त की नमाज पढ़ना फर्ज की गई थी। नमाज अल्लाह और बन्दे के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का माध्यम है, यह स्वर्ग की कुंजी है, पापक्षय करने वाली है। नमाज तर्क करना गुनाह है, यह किसी भी दशा में माफ नहीं। यात्रा, रोगावस्था, सभी दशाओं में नमाज अदा करने की आज्ञा दी गई है। नमाज मोमिन की मेराज है। वास्तव में नमाज से आदमी का तन-मन पाक, पवित्र हो जाता है। वह बुराई से बचाती है, भलाई की तरफ ले जाती है। पाक-साफ कपड़े पहनकर जब व्यक्ति नमाज पढ़ने खड़ा होता है तो मानो वह अपने रब—पालनहार के हुजूर में खड़ा होता है—विनम्र बनकर। उस समय मानो अल्लाह उसे देखता है, अब भला कौन-सा गुनाह, पापकर्म वह अल्लाह से छिपा सकता है? अल्लाह तो उसकी शह रग के सन्निकट ही है। इस प्रकार अल्लाह के भय से कुकर्म से दूर रहेंगे और सत्कर्म करेंगे। कुरान ठीक कहता है—"इन्नसलाता तन्हा अनिलफहशाइ वलमुन्कर" (अल-अनकबूत, ४५) यानि नमाज इन्सान को बदी, बुराई व बेहयाई से रोकती है। यह भी नहीं है कि मनुष्य नमाज पढ़ने, इबादत करने में ही रात-दिन लीन रहे और अपने और हक, कर्त्तव्य पूर्ण न करे। खुदा साफ-साफ कहता है—"जब नमाज खत्म हो जाए तो जमीन में फैल जाओ, खुदा के फजल यानि हलाल अन्न (रोजी) की तलाश में दौड़-धूप करो और खुदा को अधिक मात्रा में याद (स्मरण) किया करो ताकि तुम्हें भलाई-कल्याण नसीब हो।"

(अल-जुमा, १०)

व्यक्ति जब नमाज पढ़ने खड़ा होता है तो सर्वप्रथम उसमें सेव्य भाव, भक्ति भाव उत्पन्न होता है। उसे बार-बार स्मरण कराया जाता है कि वह अल्लाह का बन्दा है, और हर काम में उसे बंदगी करनी है। इसके द्वारा उसमें अपने कर्त्तव्य को समझने का ज्ञान आता है। कर्तव्य चेतना का उदय होता है। वह पग-पग पर अल्लाह के प्रति अपने कर्त्तव्य का अनुपालन करता है। तीसरे, नमाज के द्वारा बन्दे को—भक्त को मानो अपने कर्तव्य को पूर्ण करने का अभ्यास कराया जाता है। बार-बार अभ्यास करने से मनुष्य का स्वभाव वैसा ही बन जाता यानि नमाज की पाबन्दी से अदायगी उसे 'नमाजी' बना देती है। जैसे घंटी बजते ही स्कूल में छात्रों की प्रार्थना, उपस्थिति, पढ़ाई शुरू होती है, पुलिस की, सेना की परेड एक आवाज से आरम्भ हो जाती है, उसी प्रकार कानों में 'अल्लाहो अकबर' (अल्लाह बड़ा महान् है), 'हैयालस्सलाह' (नमाज की तरफ आओ), 'हैयाललफलाह'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(भलाई की तरफ आओ)। चौथे, नमाज पढ़ने से अल्लाह के कानूनों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। नमाज में कुरान पढ़ा जाता है, पांचों समय बार-बार पढ़ा जाता है। कानून का, विधि-विधान का परिज्ञान होगा तभी तो व्यक्ति उसका अनुपालन कर सकता है। व्यक्ति को यह जानना भी अत्यावश्यक है कि वह नमाज में क्या पढ़ रहा है ?

जब व्यक्ति नमाज पढ़ता है तो उसके वस्त्र पाक-साफ होने जरूरी हैं। नापाक वस्त्रों से नमाज नहीं हो सकती और न नमाज नापाकी की दशा में होती है—यानी यदि गुस्ल करना, स्नान करना अनिवार्य हो[1] और स्नान न किया हो तो नमाज नहीं हो सकती और पढ़नी भी नहीं चाहिए। नशे की अवस्था में भी नमाज पढ़ना जायज नहीं है। नमाज से पूर्व हाथ-मुंह धोना आवश्यक है, इस्लाम में यह "वजू" कहलाता है। नमाज व्यक्ति अकेला भी पढ़ सकता है और सामूहिक रूप में भी, यानि बाजमाअत। सामूहिक या बाजमाअत जब नमाज पढ़ी जाती है तब उसे किसी पेश इमाम के पीछे पढ़ा जाता है, उसी का अनुसरण किया जाता है। जुमा की नमाज, ईद की नमाज सदैव सामूहिक रूप में पढ़ी जाती है।

नमाज पढ़ने के लिए जब व्यक्ति खड़ा होता है तो पूर्ण रूप से एकाग्रावस्था में रहे—एकाग्रचित्त रहे; यह समझे कि मैं अल्लाह के समक्ष हूं, उसके दरबार में हाजिर हूं। अतः उसमें विनम्रता का, असहायता का, छोटेपन का भाव विद्यमान रहे यानि वह पूर्णतः निरभिमानी हो। अल्लाह की महिमा-गरिमा में उसका रोम-रोम डूबा रहे। नमाज पढ़ने की 'नीयत' हृदयेच्छा जुबान से प्रकट करे या मौन रूप में ध्यान कर ले कि वह नमाज पढ़ रहा है। दोनों हाथ कानों की लौ तक उठाकर नाक के ऊपर बांधकर खड़ा हो जाए, नजरें नीचे रखे। यह वह दशा है जो किसी बड़े व्यक्ति के समक्ष पहुंचकर विनम्रतापूर्वक खड़ा होने की होती है। किसी कार्यालय में हम अफसर के सामने जब अति निरीह, विनम्र, असहाय बनकर खड़े होते हैं तब दुनिया के मालिक के सामने खड़े हों तो कैसी नम्रता से, आजिजी से खड़े हों, यह सोचने की बात है। नमाज में जो पढ़े उस पर ध्यान रहे, उसके भावों/अर्थों को समझे भी। नमाज में खड़े होकर नमाजी कुरान शरीफ की आयतें पढ़ता है, यही है अल्लाह की वाणी को, उसके आदेशों को बार-बार

१. जब व्यक्ति अपनी पत्नी से सहवास करता है या रात्रि में सोते स्वप्नदोष हो जाता है तो उस व्यक्ति को स्नान करना लाजमी हो जाता है। जब तक स्नान नहीं करेगा वह नापाक रहेगा। नापाक अवस्था में न मस्जिद में जाना चाहिए, न कुरान पढ़ना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याद करना। इसके बाद हाथ छोड़कर 'अल्लाहो अकबर' कहता हुआ व्यक्ति नीचे झुकता हुआ अपने दोनों हाथों को घुटनों पर रखता है, दृष्टि नीचे रहती है और कहता है "पाक, पवित्र है मेरा रब, महान।" इसे 'रुकू' कहते हैं। इसके पश्चात् "अल्लाह उस व्यक्ति को सुनता है जो उसकी तारीफ करे" कहता हुआ नमाजी सीधा खड़ा होता है और फिर खड़े होकर कहता है "सब तारीफें अल्लाह के लिए हैं"। फिर "अल्लाहो अकबर" कहता हुआ 'सिजदा' करता है। सिजदा करते हुए दोनों हाथ जमीन पर फैलाकर कानों के पास रखें, कोहनी जमीन पर न टिके, माथा व नाक जमीन पर रखे हों और यहां नमाजी कहता है 'मैं अपने अल्लाह की महानता/पवित्रता का वर्णन करता हूं। तीन, पांच या सात बार इसी वाक्य को दोहराता है। 'रुकू' में भी इसी प्रकार 'मेरा अल्लाह पवित्र/महान् है" तीन, पांच या सात बार पढ़ा जाता है। सिजदा से उठते हुए तनिक पल भर बैठता है और फिर 'अल्लाह महान् है' कहता हुआ दोबारा सिजदा करता है। पहले सिजदे के बाद जब व्यक्ति बैठता है तो दोनों हाथ जांघों पर रखे होते हैं—अंगुलियां मिली हुई—हाथ फैला हुआ, दाहिना पैर अंगुलियों के बल खड़ा रहता है, बायां पैर मोड़कर बैठते हैं। इस प्रकार नमाज की एक रकअत पूरी होती है। दो सिजदों के बीच में पल-दो-पल बैठना 'कायदा' कहलाता है। फिर खड़े होकर इसी प्रकार दूसरी रकअत पूरी की जाती है। दूसरी या चौथी रकअत के बाद 'कायदा' में बैठकर अल्लाह का स्तुतिगान करते हैं। उस समय नजरें नीचे रहे फिर दुरूह वगैरह पढ़ने के बाद दाएं-बाएं और गर्दन फेरकर अस्सलाम-अलैकुम कहते हैं। अन्त में दोनों हाथ ऊपर उठाकर अल्लाह से 'दुआ' मांगते हैं। नमाज में जो पढ़ते हैं इतना धीरे से पढ़ते हैं कि कोई दूसरा पास में खड़ा/बैठा नमाजी भी न सुन सके। हां, इमाम साहब बुलन्द आवाज में कुरान पढ़ते हैं, 'अल्लाहो अकबर' आदि कहते हैं।

नमाज में प्रमुख बात एकाग्रचित्त होना है, ध्यान लगाना है। नमाज पढ़ रहे हैं और मन यत्र-तत्र भटक रहा है तो वह नमाज नहीं है। यहां कई आसनों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। बौद्धदर्शन में ध्यान-आसन नहीं है, ध्यान और आसन का प्रयोग महावीर के यहां देखने को मिलता है। 'आसन ध्यान की ही एक पद्धति है। वृत्तियों पर नियंत्रण कैसे किया जाए? कर्मों की निर्जरा कैसे की जाए? इसका एक उपाय है आसन। इसके साथ-साथ आसन से स्वास्थ्य भी सुदृढ़ होता है। जो व्यक्ति ध्यान करता है किन्तु आसन नहीं करता, वह हानियां भी उठाता है। ध्यान से पाचन-तन्त्र गड़बड़ा जाता है, अग्नि मंद हो जाती है, इसलिए ध्यान के साथ आसन का होना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्यन्त जरूरी है।'[1] युवाचार्य महाप्रज्ञ ने ध्यान को अति सरल भाषा में इस प्रकार व्यक्त किया है—बछड़ा आंगन में उत्पात मचा रहा है। उसे पकड़कर एक खूंटे से बांध दिया तो वह ज्यादा कूद-फांद नहीं कर पाएगा। इसका नाम है 'धारणा'। वह बछड़ा आस-पास में ही चक्कर लगाएगा, वह थक जाएगा, तब वहीं बैठ जाएगा। यह है 'ध्यान।' 'ध्यान' का मतलब है चित्त को एक स्थान पर टिका देना। मन को एक स्थान पर टिकाया और मन लम्बे समय तक उसी विषय पर टिका रहा, मन शान्त हो गया, यही है ध्यान। ध्यान शुरू होता है चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा से। किसी एक चैतन्य केन्द्र पर ध्यान शुरू किया, यह 'धारणा' है। आधा घंटा तक उसी केन्द्र पर चित्त केन्द्रित रहता है तो वह 'ध्यान' हो गया। जब हम ध्यान करते हैं तब प्रारम्भ में धारणा होती है। एक बिन्दु पर धारणा होते-होते चित्त उस पर एकाग्र बन जाता है, तब ध्यान हो जाता है। यद्यपि ध्यान का ही एक अंग है धारणा। जब धारणा पुष्ट हो जाती है तब वह ध्यान में परिणत हो जाती है।'[2] एक और रूपक से युवाचार्यजी ने धारणा-ध्यान को समझाया है—दूध में जामन दिया, गाढ़ा बनकर दही हो गया—यह ध्यान है। दूध में चंचलता है, जामन धारणा है, दही ध्यान है।'[3] ध्यान को पकड़ने के लिए, उसे बांधने के लिए जप, स्मरण, माला, तस्बीह का सहारा भी लिया जाता है। प्रेक्षाध्यान में जप का विशेष महत्त्व है। इस्लाम में तस्बीह फेरना, अल्लाह का 'जिक्र' करना भी इबादत में शामिल है। नमाज मन की एकाग्रता के बिना नहीं हो सकती। इन्द्रिय-निग्रह ध्यान में आवश्यक है। साधक के लिए ध्यान का विशेष महत्त्व है—

सीसं जहा सरीरस्स, जहा मूलं दुमस्स य।
सव्वस साधुधम्मस्स, तहा झाणं विधीयते॥
(समणसुत्तं, ४८४)

अर्थात् जैसे मनुष्य के शरीर में सिर उत्कृष्ट है, वृक्ष में जड़ मुख्य है, उसी प्रकार साधु-धर्म में ध्यान मुख्य है। चित्त को एकाग्र करना ध्यान है। भावना, अनुप्रेक्षा, चिन्ता चित्त की चंचलता के ही तीन रूप हैं।

नमाज पढ़ते समय नमाजी अपने आस-पास से, अपने परिवेश से कट जाता है, एकमात्र ध्यान नमाज में रहता है। हजरत अली (चौथे खलीफा) के विषय में कहा जाता है कि उनके शरीर से तीर-बरछी आदि तब निकालते थे जब वे नमाज पढ़ने में विलीन हो जाते थे। अरबी भाषा में जिसे

१. भेद में छिपा अभेद—युवाचार्य महाप्रज्ञ, पृ० ११०
२. वही, पृ० १११
३. वही, पृ० ११२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'मुराकबा' कहते हैं वह ध्यान का ही रूप है। ज्ञानार्जन (आत्मज्ञान) की एक पद्धति है। 'मुराकबा' आसन में बैठना है। आसनावस्था में ही भगवान महावीर को कैवल्य की—केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी। जहां तक प्रेक्षाध्यान और नमाज में एकाग्रचित्त होकर अल्लाह का स्मरण करने का सम्बन्ध है, दोनों में काफी साम्य है। खुदा का "जिक्र" करना, तस्बीह फेरना, मुराकबा में बैठना या रमजान के महीने में "एतकाफ" (मस्जिद के उत्तरी कोने में १० दिनों से घर-परिवार, सबसे पृथक् होकर एकांतवास करते हुए अहर्निश यादें खुदा में महव रहना) में बैठना प्रेक्षाध्यान के सन्निकट हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति : विचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर और मोहम्मद

भगवान महावीर और पैगम्बर मोहम्मद दोनों के जीवन काल में लगभग बारह सौ वर्षों का अन्तर है। महावीर २७ मार्च ५९९ ई० पू० उत्पन्न हुए और १५ अक्तूबर ५२७ ई० पू० निर्वाण को प्राप्त हुए। मोहम्मद साहब का जन्म मार्च ५७० और मृत्यु सन् ६३२ है। अर्थात् एक ई० पू० छठी शताब्दी में भारत देश के बिहार स्थित कुण्डपुर ग्राम में हुए जो आज एक महान् पवित्र तीर्थस्थान माना जाता है। दूसरे मोहम्मद साहब अरब मरुस्थल के प्रसिद्ध शहर मक्का में छठी शताब्दी में पैदा हुए। भगवान महावीर आज से २६०० वर्ष पहले हुए और मोहम्मद साहब १४०० वर्ष पहले। जहां भगवान महावीर के पिता क्षत्रिय नृपति सिद्धार्थ थे वहां मोहम्मद साहब के पिता अब्दुल कुरैश सम्प्रदाय के सम्भ्रान्त वंश बनी हाशम से थे। एक को केवल ज्ञान की प्राप्ति लगभग ४२ वर्ष की अवस्था में हुई, दूसरे को भी नबूवत (नबी या पैगम्बर) लगभग ४० वर्ष की अवस्था में मिली। दोनों का जीवन आरम्भ से ही वैराग्य पूर्ण रहा। समाज के व्यभिचार हिंसा, अधर्म, नैतिक पतन को देखकर वे कराह उठे। अन्ततोगत्वा एक ने तो भरी जवानी में राज-वैभव का परित्याग कर निरावरण होकर प्रव्रज्या ग्रहण की और जीवनपर्यंत अविवाहित रहे (लेकिन श्वेताम्बर सम्प्रदाय उनके विवाह को स्वीकारता है) दूसरे ने भी सांसारिक वैभव से पराङ्मुखता प्रदर्शित की और २५ वर्ष की अवस्था में खदीजा नाम की विधवा स्त्री से विवाह किया। चूंकि दोनों का जीवन आदि से अन्त तक त्यागमय था अतः उनका मान-सम्मान भी दूर-दूर तक किया गया और युगों-युगों से किया जा रहा है। संसार में, विशेषतया भारत में उन्हीं महापुरुष को पूज्यास्पद माना गया जो सर्वथा त्यागी थे, क्योंकि भारत की जीवन-दृष्टि पश्चिम के समान भोगवादी कभी नहीं रही, वह अनादि काल से त्यागवादी रही है। शुद्ध भोगवाद को यहां कभी प्रोत्साहन नहीं दिया गया। भोगवाद का प्रचार चार्वाक-दर्शन में ही किया गया, और उसी को इस देश ने स्वीकार नहीं किया।

दोनों के युग की सामाजिक दशा पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो ज्ञात होगा कि भगवान महावीर के युग में कर्मकाण्ड की प्रधानता थी, मनुष्य, पशु सभी की बलि दी जाती थी। समाज में घोर विषमता थी। मनुष्य को कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी, हिंसा, अत्याचार, अधर्म, धर्मान्धता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रसार था। दास प्रथा आम थी, यहां तक नारी का भी क्रय-विक्रय किया जाता था। चन्दना इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है जिसे खुले बाजार बोली लगाकर बेचा गया। धार्मिक क्रियाओं में भी नारी को सम्मिलित होने के अधिकार से वंचित रखा गया था। हां वह भोग की सामग्री अवश्य समझी जाती थी, इसके अतिरिक्त समाज में उसे कोई आदरणीय स्थान प्राप्त नहीं था। निरीह नर, पशु का बलिदान, उनका आर्तनाद, स्त्रियों की करुणाप्यायित दशा, समाज में फैली अधर्म-व्यभिचार-विषमता की भावना से ही तो भगवान महावीर का अवतरण हुआ, जिसने घोर अत्याचारों, पापों, कुकर्मों की आग से तपती धरणी को प्रेम, करुणा, अहिंसा, समानता की शीतल-सुखद वर्षा से शीतल किया। उधर मोहम्मद साहब के युग के अरब पर दृष्टि डालिए तो वहां भी समाज में रक्तपात, हिंसा, व्यभिचार, पापपुंज, अधर्मता सभी कुछ वैसा ही था। नारी वहां भी भोग की सामग्री थी। लोंडी या कनीज के रूप में (नर दास के समान) उसका क्रय-विक्रय होता था, दास प्रथा का अधिक प्रचलन था। अकसर लड़की का पैदा होना महा बुरा समझा जाता था और उसे पैदा होते ही जिन्दा मार दिया जाता था या जमीन में दफन कर दिया जाता था। मक्का स्थित काबा शरीफ, जहां विश्व के लाखों मुसलमान प्रत्येक वर्ष एक दिन-एक साथ हज का फरीजा अदा करते हैं, उस समय ३६० बुतों-मूर्तियों से भरा पड़ा था। प्रत्येक कुल की वहां एक कुलमूर्ति या कुलदेवता था जिसकी पूजा की जाती थी। यही नहीं, जैसे महावीर के युग में नर-बलि दी जाती थी मोहम्मद साहब के युग में भी यह प्रथा थी, अरब की रीति के अनुसार एक बार कुरैश के एक नवयुवक की देवता को बलि दी जाने वाली थी, लेकिन जब उस युवक के आकर्षण यौवन पर मक्का वालों को तरस आया तो उन्होंने एक ज्योतिषविद फाल निकलवाया, जिसके द्वारा यह निश्चित किया गया कि इस युवक के स्थान पर एक सौ ऊंट कुर्बान किये जायें तो देवता प्रसन्न हो जायेगा। फिर ऐसा ही किया गया, देवता की खुशनूदी के लिए एक सौ ऊंट बलि किये गये और उस युवक को छोड़ दिया गया। जानते हैं वह युवक कौन था? वह युवक मोहम्मद साहब के ही पिता अब्दुल्ला बिन अब्दुलमुत्तलिब थे और इस घटना के बाद अब्दुल्ला का विवाह सुशील युवती आमना से किया गया था। क्या कुकृत्य नहीं थे उस समय अरब-समाज में? जुआ, शराब बहुत आम थे, युद्ध बहुधा मनोरंजन के लिए किये जाते थे। उर्दू के प्रसिद्ध कवि मौलाना हाली ने तत्कालीन दशा का स्पष्ट चित्रांकन इस प्रकार किया है—

चलन उनका जितना था सब वहशियाना, फसादों में कटता था उनका जमाना।
हर एक लूट और मार में था यगाना, न था कोई कानून का ताजयाना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वो थे कत्लोगारत में चालाक ऐसे, दरिंदे हों जंगल के बेबाक जैसे।
जो होती थी पैदा किसी घर में दुख्तर, तो खोफे शमातम से राह में मादर!
फिरे देखती जब भी शोहर के तेवर, कहीं जिन्दा गाड़ आती थी उसको जाकर।
वो गोद ऐसी नफरत से करती थी खाली, जने सांप जैसे कोई जनने वाली।

यह पैगम्बर मोहम्मद के प्रभावशाली व्यक्तित्व का ही परिणाम था कि ये जुआरी, शराबखोर, व्यभिचार, हिंसक मनुष्य भी यतीमों के विधवाओं के हमदर्द बने और कुकर्मों का परित्याग कर सच्चे अर्थों में मनुष्य बने, उनकी पाशविकता दूर हुई और मानवता आई।

दोनों ही महात्माओं ने समाज के—अपने ही लोगों के अत्याचार सहन किये। तपश्चर्या काल में महावीर जब कभी किसी ग्रामांचल की ओर आते तो लोग उनका ईंट-पत्थर से स्वागत करते, कभी उन पर हिंसक कुत्ते छोड़कर जख्मी करते, कभी उनके मार्ग को कांटों से भर देते, यहां तक कि समाधिस्थ अवस्था में भी उनको अनेकविध कष्ट पहुंचाए जाते। यही हाल, ऐसा ही दुर्व्यवहार मोहम्मद साहब के साथ हुआ। मोहम्मद साहब अनपढ़ थे, अशिक्षित थे अतः उन्हें 'उम्मी' कहा जाता था, लेकिन सत्यवादी और कर्तव्यपरायण थे अतः उन्हें 'अमीन' (सच्चा बोलने वाला) कहा जाता था। जब वह 'अमीन' मक्कानिकस्थ एक 'गारे हरा' हरा नामक गुफा में जाने लगा और वहां घण्टों एकान्त में बैठकर समाज की, मनुष्यों की पतितावस्था से, पापोन्मुखी दशा से चिंतित रहता, अपने परवरदिगार से दुआ करता कि इस कौम को पतन के गर्त में गिरने से, गुनाहों से बचाइये और बहुत समय तक यह सिलसिला चलता रहा तो एक दिन दैविक वाणी का उन्हें आभास हुआ और खुदा ने उन्हें अपना पैगम्बर पैगाम पहुंचाने वाला संदेश-वाहक मनोनीत किया। फिर मोहम्मद साहब ने अपने नबी होने की—पैगम्बर होने की उद्घोषणा करते हुए एक खुदा की बंदगी का प्रचार करना आरम्भ किया। इस अप्रत्याशित, परमविरोधी, बात को अरब जनता सुनने को तैयार न थी, कोई अपने सैकड़ों कुल-देवताओं की मूर्तियों को तोड़ने—उनका परित्याग करने को तैयार नहीं था। फलतः मोहम्मद साहब की विद्रोहात्मक वाणी का लोगों ने घोर अत्याचारों के साथ विरोध किया। बच्चे उन पर ईंट, पत्थर फेंकते, स्त्रियां उन पर कूड़ा-कचरा डालती, कभी उनके रास्ते पर कांटे डाले जाते, कभी उन पर कुत्ते छोड़े जाते, कभी उन पर नमाज पढ़ते वक्त भारी वजन रखा जाता—क्या दुर्व्यवहार उनके लोगों ने उनके साथ नहीं किया? इस प्रकार भगवान महावीर और पैगम्बर मोहम्मद की सद्वाणी का लोगों ने उन्हें कष्टप्रद यातनाएं देकर स्वागत किया। लेकिन दोनों सत्य पथ पर अडिग, अविचल रहे और अन्ततः अज्ञान पर ज्ञान की, अधर्म पर धर्म की विजयपताका फहराकर ही छोड़ी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाजिक एकता

दोनों महाज्ञानी, समाजोद्धारक मनुष्यों की समानता और एकता पर बल देते थे। भगवान महावीर ने चाण्डाल हरिकेशी को गले लगाकर अस्पृश्य का, अन्त्यज का सप्रेम स्पर्श करके वैसा ही व्यवहार किया जैसा राम ने केवट के साथ किया था। महावीर ने दासी-क्रीतदासी के रूप में चन्दना का भोजन स्वीकार करके उसे वही आदर दिया जो राम ने भीलिनी शबरी को या कृष्ण ने विदुर को दिया था। पैगम्बर मोहम्मद ने तो स्पष्टत घोषणा की कि जैसा तुम खाओ वैसा अपने गुलाम या नौकर को भी खाने-पहनने को दो। उसकी सामर्थ्य से अधिक उससे काम न लो, अगर अधिक काम हो तो उसे सहारा दो, उसकी मदद करो। उन्होंने अमीर-गरीब, उच्च-निम्न, छोटे-बड़े के भेद-भाव की दीवार गिरा दी और समाज के सब मनुष्यों को—सभी वर्गों, सम्प्रदायों और फिरकों के लोगों को एक ही प्रेम-सूत्र में एकता की, समानता की भावना में बांध दिया। तभी तो डॉ० इकबाल ने कहा है—

एक ही सफ में खड़े हो गये महमूदो अयाज।
न कोई बन्दा रहा और न कोई बन्दा नवाज ॥१॥

आज जो जातीय भेद-भाव और साम्प्रदायिकता की विषाक्त भावना समाज में देखी जाती है उससे देश का कभी हित नहीं होगा। जातीय एवं सामाजिक एकता से जाति का, देश का समुद्धार होगा, राष्ट्रीय एकता की जड़ें मजबूत होंगी। भगवान महावीर ने अपनी धर्म-ध्वजा के नीचे विभिन्न मतावलम्बियों, सम्प्रदायों, वर्गों को लाकर एक ही मंच पर खड़ा कर दिया। सभी धर्मों के लोग उनके 'समवसरण' में एक स्थान पर बैठकर दिव्यवाणी से आनन्दाप्यातित होते थे—मानो उनके प्रताप ने सामाजिक विषमता को मूलोच्छिन्न कर दिया—तुलसी की पंक्ति में राम स्थान पर 'वीर' रखकर कहा जा सकता है—'वीर प्रताप विषमता खोई।' महावीर के समान मोहम्मद ने समाज में एकता और भाईचारे का सद्भावनापूर्ण वातावरण तैयार किया। उनके साथ—एक ही पंक्ति में खड़े होकर सभी तो नमाज पढ़ते थे, उन्होंने दास को दास नहीं, मनुष्य समझकर उसका आदर किया। उनके इस प्रभाव के कारण दास प्रथा धीरे-धीरे विलीन होने लगी और लोग दासों को आजाद करके उनके साथ अपनी लड़की का विवाह भी करने लगे। उन्होंने कर्म की महानता और पवित्रता का पाठ लोगों को सिखाया। वह स्वयं अपने कपड़ों में पेबंद लगाते, जूता ठीक करते, घर में झाड़ू लगाते, ऊंट की देखभाल करते। जब मस्जिद बनाई गई तो उन्होंने स्वयं मजदूरों की तरह काम किया। उन्होंने उजरत लेकर मक्का वालों की बकरियां चराई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थीं। एक हदीस में उन्होंने कर्म की महानता (Dignity of Labour) प्रकट करते हुए फरमाया "कोई व्यक्ति उससे बेहतर रोटी नहीं खाता जो वह अपने हाथ से काम करके खाता है" (बुखारी ३४-१५)। उन्होंने अन्यत्र (मुसलिम हदीस) फरमाया कि "वह व्यक्ति जन्नत में दाखिल न होगा जिसके शर (अत्याचार) से उसका पड़ोसी सुरक्षित न रहे।" इस प्रकार उन्होंने सभी के साथ समान व्यवहार करने का आदेश दिया और यही बात भगवान महावीर ने भी कही "मित्ती मे सव्व भूएसु" मेरी सबसे मैत्री है। सभी प्राणियों को समान मानना चाहिए चाहे वह शत्रु हो या मित्र "समया सव्व भूएसु सत्तु मित्तेषु वा जगे।" (उत्तराध्ययन सूत्र १९-२५)

अपरिग्रह

भगवान महावीर, जो जीवन पर्यंत निर्वसन अनिकेतन रहे, का जीवन तो अपरिग्रह का मूर्तरूप है। उनके दिगम्बरत्व या नग्नत्व के पीछे यह दर्शन है कि 'कम से कम' वस्तुओं का संग्रह किया जाये यानी "सादा-जीवन उच्च विचार"। महावीर ने अधिक बल दिया है धन के अपरिग्रह पर, अस्तेय पर। उन्होंने यह अवश्य माना है कि व्यवहार में, जीवन यापन के लिए धन आवश्यक है। उसके उपार्जन पर नहीं, अनपेक्षित संग्रह पर, जमा करने या 'होर्ड' करने पर घोर आपत्ति व्यक्त की और उसे महा अन्याय तथा विषवत् माना है—

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इमम्मि सोह अदुवा परत्था।
दीवप्पणंट्ठेव अणंत मोहे, न माइय दट्ठ मट्ठुमेव॥

—(उत्तराध्ययन सूत्र, ४ अध्याय)

यदि गहराई से विचार किया जाये तो स्पष्ट विदित होगा कि न्यायोचित और शुद्ध निष्कपट रीति से शुद्ध धन एकत्रित करके कोई धनाढ्य नहीं बन सकता। जाने-अनजाने रूप में कुछ ऐसे अनुचित, असंगत और न्यायविहीन साधन अपनाए जाते हैं जिससे धन सैलाब के पानी की तरह बढ़ता है; एकत्रित होता है। नदी में सैलाब केवल उस वर्षाजल से नहीं आता जो नदी पर पड़ता है वरन् उस जल से आता है जो यत्रतत्र के छोटे-बड़े गन्दे नालों से प्रवाहित होता हुआ नदी में गिरता है—

शुद्धैर्धनैर्विवर्धन्ते कदापि न सम्पदः।
न हि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णाः कदाचिदपि सिन्धवः॥

—(आत्मानुशासन-३५)

भगवान महावीर ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों के परिपालन पर सर्वाधिक बल दिया। वास्तव में इनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम पर यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाये तो ज्ञात होगा कि अपरिग्रह की प्राप्ति अहिंसा, सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्य के अनुकूलाचरण करने से ही सम्भव हो सकती है, जो व्यक्ति हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, कामवासना में लिप्त रहता है—कामासक्त है वह भला निष्परिग्रही कैसे बन सकता है ? वह तो परिग्रही है और परिग्रही को सद्गति मिल नहीं सकती, क्योंकि परिग्रही होने से आदमी लोभी, लालची होता है, और भगवान बचाये लालच से यह तो सभी अनर्थों का मूल है। परिग्रही व्यभिचारी होगा, भ्रष्टाचारी होगा, अन्यायी होगा, तस्कर और चोर होगा। महावीर का जीवन पूर्णतः अपरिग्रह पर ही अवलम्बित था। क्या था उसके पास ? वस्त्र, धन, मकान, गाड़ी, बर्तन, सेज। नहीं कुछ भी तो नहीं था। वह तो दिगम्बर थे—दिक् दिशाएं ही उनका अम्बर थीं। पृथ्वी ही उनकी सेज थी। उधर मोहम्मद साहब के जीवन को देखिए जो अरब के शासक होकर भी दरवेशों जैसा—साधु संन्यासियों जैसा जीवन व्यतीत करते थे। उनके पास बिस्तर के नाम पर एक चटाई थी, बर्तनों में मिट्टी का एक लोटा, लकड़ी का एक प्याला था। कोई आलीशान बंगला नहीं—कच्चा मकान, कभी-कभी चूल्हे से—रसोई से धुआं भी नहीं उठता था—अनेक बार उन्हें निराहार ही रहना पड़ा था लेकिन कौन जानता था कि आज मोहम्मद साहब के घर खाने को भी कुछ है या नहीं। एक बार खाने को कुछ पथ्य रखा था कि एक मुसाफिर ने/फकीर ने दरवाजे पर आकर सदा दी, कुछ मांगा और देखिये उनकी उदारशीलता—अपरिग्रह कि वह पथ्य उठाकर स्मितवदन उस मुसाफिर को दे दिया—मजाल क्या माथे पर शिकन भी पड़ी हो। एक बार उनकी प्यारी लाड़ली बेटी फातिमा ने स्वर्णहार पहनने की इच्छा प्रकट की तो बेटी को यह समझाते हुए वर्जित किया कि ऐसे यानी सोने के आभूषण दोजखियों/नारकियों के लिए हैं। जब उनका अन्तिम समय आया तो जो कुछ दीनार (रुपया-पैसा) घर में पड़े हुए थे अपनी पत्नी आयशा से कहकर सबको अनाथों, दीनों, दरिद्रों में बंटवा दिया। कुरान में मालोदोलत एकत्रित करने से सख्ती से मना किया गया है—"जो लोग सोना-चांदी जमा करते जाते हैं और उसे अल्लाह के रास्ते में खर्च नहीं करते उनको दर्दनाक अजाब (नरक-पीड़ा) की खबर दे दो। जिस दिन उसे जहन्नुम (नर्क) की अग्नि में गर्म किया जायेगा फिर उससे उनके माथे, पहलू और पीठ दागी जायेगी, यह वह है जो तुमने अपने लिये जमा किया था तो उसका मजा चखो, जो तुम जमा करते थे।" (कुरान ९, ३४-३५)। कुरान में बार-बार यह आदेश दिया गया है कि धन-सम्पत्ति जमा करके न रखो, अनाथों को, दरिद्रों को उनका हक, उनका भाग दो। इसलिए इस्लाम में एक प्रकार के दान-स्वेच्छा से दान देने को अनिवार्य माना गया है, वह है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जकात'। प्रत्येक व्यक्ति को २½ प्रतिशत वार्षिक अपनी सम्पत्ति में से दीन-दुखी, दरिद्र-अनाथ को दान देना होता है। यह एक प्रकार का राजदेय शुल्क (इनकम टैक्स) है। इस प्रकार मोहम्मद साहब ने भी अपरिग्रह का आदेश दिया है। आज हमारे देश में जो वस्तुओं के मूल्य बढ़ रहे हैं उसका एक मात्र कारण यही है कि हम हिंसा करते हैं, जुल्म करते हैं, झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं—वस्तुओं को चोरी-छिपे जमा करके रखते हैं और भगवान महावीर, पैगम्बर मोहम्मद के निर्दिष्ट, उपदिष्ट मार्ग का अनुवर्तन नहीं करते।

अहिंसा दृष्टि

भगवान महावीर ने अपने पांच व्रतों में अहिंसा को सर्वप्रथम रखा है, अर्थात हिंसा-वृत्ति अनिष्ट का मूल है। अहिंसा का अर्थ केवल किसी का बध न करना ही नहीं; इस पर कुछ और अधिक व्यापकता से, गहनता से विचार करना होगा। अहिंसा से भगवान महावीर का तात्पर्य यह है कि किसी भी प्राणी को—जीवधारी को किसी भी प्रकार का कष्ट न दिया जाये, किसी पशु को दाना-चारा-पानी न देना, किसी मनुष्य को ऐसी बात कहना जिससे उसके हृदय को दुःख पहुंचे, कष्ट पहुंचे। मोहम्मद साहब ने निरमजी हदीस' में एक स्थान पर फरमाया "अरहामू मन फिस्समा यरहामुकुम मन फिस्समा" अर्थात् तुम जमीन पर बसने वालों पर रहम (दया) करो, अल्लाह तुम पर रहम करेगा। उन्होंने प्रतिकार या बदले की भावना की निन्दा की और कहा अगर कोई बुराई करे तो उसका बदला बुराई से मत दो, उसे माफ करो, क्षमा करो। उन्होंने युद्ध के मैदान में—'जंगे बरदर' में भी शत्रु का बुरा नहीं चाहा, शत्रु को अभिशाप नहीं दिया। मानो उन्हें शत्रु-मित्र इसी प्रकार समान थे जैसे भगवान महावीर को। यह माना कि मोहम्मद साहब ने कई-एक युद्धों में भाग लिया लेकिन किसी भी युद्ध में उन्होंने किसी का बध नहीं किया, किसी को आघात नहीं पहुंचाया। महावीर ने अन्यायी को दण्ड देने का आदेश दिया, राज्य में सुख शांति की सुव्यवस्था के लिए उसे उचित और वैध घोषित किया। यहां अहिंसा कायरता की भावना से अद्भूत नहीं, वह पराक्रमी, शक्तिशाली को ही शोभा देती है। गांधीजी ने भी प्रत्येक स्थिति में अहिंसा को ही महत्त्व नहीं दिया, कुछ विशेष स्थिति में हिंसा को भी स्वीकार्य माना है। ऐसी विशेष स्थिति की ओर संकेत करते हुए कुरान में कहा गया है "फमनितदा अलैकुम फातदू अलैहि"—अर्थात् जो कोई तुम पर जियादती करे, तुम भी उस पर जियादती करो (सूरे बकर)। पशु-पक्षी पर दया करने का उपदेश देते हुए मोहम्मद साहब ने एक हदीस में फरमाया "बेजबान जानवरों के मामले में तकवा (संयम) से काम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लो। उन पर सवारी करो जब वह अच्छी दशा में हों ?" एक दूसरे स्थान पर कहा, "एक व्यभिचारिणी स्त्री को बख्श दिया—क्षमा कर दिया गया, वह एक कुत्ते के पास से गुजरी जो एक कुएं पर जबान निकाले हुए हांप रहा था, प्यास से मरणासन्न था। उसने अपना मोजा उतारा और अपने दुपट्टे से बांधकर कुएं से पानी निकालकर पिलाया, इस कारण उसे बख्श दिया गया।" लेकिन एक बात में भारी मतभेद है; भगवान महावीर जहां किसी भी प्रकार की हिंसा को निंद्य मानते थे वहां कुरान की शब्दावली में मोहम्मद साहब ने मानव को 'अशरफुल मखलूकात' यानी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मानकर उसी के लिए संसार की प्रत्येक वस्तु का उपयोग न्यायसंगत माना। यहां तक कि कुछेक पशु-पक्षियों का मांस खाना हलाल माना—(देखिये कुरान शरीफ सूरे हज ११, ३१, ३६), परन्तु मांसाहार को उन्होंने अनिवार्य घोषित नहीं किया, यह तो 'मन माने की बात' है, स्वभाव और रुचि की बात है। अहिंसा के क्षेत्र में भ० महावीर विश्व के सभी धर्म प्रवर्तकों एवं महापुरुषों में विशेष स्थान रखते हैं।

नारी-उद्धार

भगवान महावीर ने नारी की पतितावस्था को देखकर और युग की नाड़ी पर हाथ रखकर नारी को सच्चे अर्थों में अर्द्धांगिनी और सहधर्मिणी माना। 'धम्म सहाया'—वह धर्म की सहायिका मानी गई। जो कुछ समय पूर्व भोगविलास की सामग्री मानी जाती थी, गणिका, वेश्या, क्रीतदासी समझी जाती थी, अब वह समाज का एक सम्मानित अंग बन गई। यही नहीं महावीर ने उनको भिक्षुणी संघ में दीक्षित कर उसे शोचनीय अवस्था से ऊपर उबारा। मोहम्मद साहब ने भी नारी-उद्धार में स्तुत्य कार्य किया। उन्होंने भी नारी के भोगविलास की वस्तु, कुलदासी, लौंडी या कनीज, वेश्या जैसे घृणित रूपों को समाज से उच्छिन्न किया और उसे समानता का अधिकार प्रदान किया—वह समानता का अधिकार जिसके लिए आज डेढ़ हजार वर्ष बाद 'तथाकथित सर्वोन्नत देशों में नारियां सड़कों पर प्रदर्शन करती हैं, सभाएं आयोजित करती हैं। कुरान में कहा गया है—"यह तुम्हारे लिए न्यायोचित नहीं कि स्त्रियों को उनकी इच्छा के खिलाफ वरसे के तौर पर लो (कुरान ४, १९)। "मर्दों को उससे हिस्सा मिलेगा जो मां-बाप, परिजन छोड़ें (४, ७)।" इस प्रकार स्त्रियों को पिता, पति की जायदाद का भागी करार दिया गया। विधवा के पुनर्विवाह को भी मोहम्मद साहब ने उचित ठहराया। तलाक-सम्बन्ध विच्छेद की बात कुरान में आई है लेकिन यह भी कहा गया है कि "अल्लाह तलाक देने वालों को अच्छा नहीं समझता।" यानी तलाक की इजाजत तो है लेकिन बिना बात या जब जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहा तलाक दे दिया यह बात नापसंद की गई है। यों तो इस्लाम में चार स्त्रियों से विवाह करने की बात स्वीकार की गई है, परन्तु यह कोई अनिवार्य नहीं। कुछ विशेष परिस्थितियों अथवा दशाओं में ही ऐसा विधान है। पुरुष की आर्थिक दशा, शरीर-सामर्थ्य का भी इसमें खास दखल है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान महावीर और पैगम्बर के अलग-अलग युग में और अलग-अलग देशों में अवतरित होने पर भी दोनों के विचारों में बहुत समानता है, दोनों की सामाजिक दृष्टि एक जैसी है। भगवान महावीर ने सबसे अधिक बल शुद्धाचरण पर दिया जिसके लिए उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि पांच व्रतों के अनुकूल आचरण करने का उपदेश दिया तथा त्रिरत्न में सम्यक् आचरण को श्रेष्ठ माना। मोहम्मद साहब ने 'हदीस बुखारी' में फरमाया, "तुम लोगों में सबसे अधिक प्रिय मुझे वह है जो तुममें आचरण की दृष्टि से सबसे अच्छा है।" दोनों महात्माओं ने अपरिग्रह का उपदेश दिया है। काश, सभी उनके इन सदुपदेशों को अपने आचरण में उतारते तो फिर नैतिक पतन, घूसखोरी, महंगाई के रसातल की ओर समाज न जा पाता।

भगवान महावीर अंतिम तीर्थंकर थे—२४वें तीर्थंकर। तीर्थंकर से अभिप्राय है जिससे संसार-सागर का संतरण किया जाय, पार किया जाय उसे तीर्थ कहते हैं और जो ऐसे तीर्थ को करे' संसार-सागर के संतरण का मार्ग बतलाए उसे तीर्थंकर कहते हैं। भगवान महावीर ने लोगों को इस भव-सागर से पार होने का मार्ग दर्शाया। पैगम्बर मोहम्मद अंतिम पैगम्बर थे, उनसे पहले हजारों पैगम्बर हो चुके। पैगम्बर अर्थात पैगाम-संदेशा लाने वाला, वह भगवान का संदेशा लोगों तक लाये और उस संदेश को लोगों को दुनियाए फानी से (भगुरत्व) निजात दिलायी। दोनों वीतरागी और सर्वज्ञ थे। उन्होंने बाह्ययुधों से लोगों को नहीं जीता, आन्तरिक आयुधों से विजय प्राप्त की—मन पर विजय। तभी तो उनका प्रभाव आज तक अक्षुण्ण है। भगवान महावीर ने कोई नवीन धर्म की स्थापना नहीं की, केवल धर्म में खोई आस्था की पुनर्स्थापना की। पैगम्बर मोहम्मद ने भी सहस्रों वर्षों से चले आते इस्लाम धर्म में ही पुनः प्राण फूंके—उन्होंने भी कोई नवीन धर्म का प्रवर्तन नहीं किया। इन दोनों महात्माओं ने जिंदा मनुष्यों को कब्रों से, श्मशान से उठाकर पुनर्जीवन दिया। आज हमारे नेत्रों में उनका जीवन तैरता है, रगों में उनकी पावन वाणी दौड़ती है। इतिहास और साहित्य के पृष्ठों पर उनके जीवन फूल बरस रहे हैं। कितना दृष्टि साम्य है दोनों में।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरों की परम्परा और महावीर

'तीर्थंकर' शब्द तीर्थ से बना है। तीर्थ का शब्दार्थ है तट, घाट, फोर्ड। जहां नदी इतनी कम गहरी हो कि आसानी से उसे पार कर सकें, उसे घाट कहते हैं। जहां नौका द्वारा नदी या झील को एक किनारे से दूसरे किनारे तक पार कर सकें, उसे भी घाट कहते हैं। दूसरे, 'तीर्थ' पावन नदी में स्नान करने, धर्म-स्थानों की यात्रा करने को भी तीर्थ कहते हैं। इसके द्वारा भी मनुष्य मोक्ष-प्राप्ति की कामना करता है। ये मोक्ष-प्राप्ति के साधन हैं। धार्मिक दृष्टि से जो संसार-सागर या जो ऐसे धर्मतीर्थ का कर्त्ता-निर्माता हो, उसे 'तीर्थंकर' कहा जाता है—

तीर्थं करोति इति तीर्थंकर

—संसार-सागर को पार करानेवाले या पार कराने के लिए धर्मतीर्थ की स्थापना करनेवाले। इस प्रकार यह शब्द जैन धर्म में बहुत रूढ़ हो गया है और वहां तीर्थंकर को मोक्षमार्ग का प्रवर्तक महापुरुष माना जाता है।

तीर्थंकर आत्मज्ञान का, आत्मविद्या का, आत्मविश्वास का पर्याय, गहरा व्यंजनात्मक शब्द है। तीर्थंकर शब्द का प्रयोग महावीर के युग में अन्य सम्प्रदायों में भी प्रचलित था। आजकल तीर्थंकर शब्द केवल जैनधर्म से जुड़ा है, अन्य किसी धर्म में इस शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता।

भारतवर्ष में तीर्थंकरों की संख्या चौबीस है और इनकी परम्परा अति प्राचीन है। वैदिक पद्मपुराण (५/१४) में कहा गया है—

अस्मिन्वैय भारते वर्षे जन्म वै श्रावके कुले तपसा युक्तमात्मानं केशोत्पाटन पूर्वकम् तीर्थंकराश्चतुर्विंशत्तथार्तैस्तु पुरस्कृतम् छायाकृतं फणीन्द्रेण ध्यानमात्र प्रदेशिकम्।

अर्थात—इस भारतवर्ष में २४ तीर्थंकर श्रावक कुल (क्षत्रिय) में उत्पन्न हुए। उन्होंने केशलुंचनपूर्वक तपस्या में अपने आपको युक्त किया। उन्होंने इस निर्ग्रन्थ दिगम्बर पद को पुरस्कृत किया। जब-जब वे ध्यान में लीन होते थे, फणींद्र नागराज उनके ऊपर छाया करते थे।

तीर्थंकरों में आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ और अन्तिम तीर्थंकर महावीर हैं। तीर्थंकरों की कुल संख्या चौबीस हैं—

ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ; पद्मप्रभनाथ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभनाथ, पुष्पदंतनाथ, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासुपूज्यनाथ, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर।

तीर्थंकरों की विशेषताएं

तीर्थंकरों की कुछ विशेषताएं दृष्टव्य हैं—उनके शरीर में पसीना नहीं आता, उनका शरीर सुगन्धपूर्ण और रक्त दूध जैसा श्वेत होता है। शरीर रूपवान, निर्मल तथा १००८ लक्षणों से युक्त होता है। वे बलशाली, मितभाषी, हितकारी, प्रियवचन बोलनेवाले होते हैं। उनके शरीर को छाया नहीं पड़ती। वे सब विद्याओं के ज्ञाता होते हैं। उनके न नाखून बढ़ते हैं और न केश बढ़ते हैं। जब वे विहार करते हैं दिशाएं निर्मल, आकाश निरभ्र होते हैं। हवा में सुगन्ध घुल जाती है, पृथ्वी धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाती है। प्रत्येक तीर्थंकर का अपना चैत्यवृक्ष और चिह्न होता है। २४ तीर्थंकरों के क्रमशः चैत्यवृक्ष ये हैं—वट, शक्तिपूर्ण-सप्तपर्ण, शाल, सरल, प्रियंगु, वट, शिरीष, प्रियंगु, मालूर, प्लक्ष, पीपल, तिंदुक, पाटला, जामुन, अश्वत्थ—पीपल, दधिपर्ण, नन्दि, पिलक्खू, आम्र, अशोक, चंपक, मौलश्री, वेतस, धव, शाल।

तीर्थंकरों के चिह्न

तीर्थंकरों के चिह्न क्रमशः ये हैं—वृषभ, हाथी, अश्व, बन्दर, चकवा—क्रौंच, कमल, स्वस्तिक, चंद्रमा, मकर, श्रीवत्स, गेंडा, महिष, वराह, श्येन, वज्र, मृग, बकरा, नंद्यावर्त, कलश, कूर्म, नील कमल, शंख, सर्प, सिंह।

तीर्थंकरों की सुदीर्घ परम्परा में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभदेव माने जाते हैं। वेदों-पुराणों में उनका नामोल्लेख मिलता है। ऋषभदेव का विशद चरितांकन श्रीमद्भागवत में प्राप्त है। शिव पुराण (४,४८) में शिव ने ऋषभ को अपना अवतार माना है—

इत्थंप्रभव ऋषभोऽवतारो हि शिवस्य मे सतां गतिर्दीनबंधुर्नवभः कथित रत्तव।

भागवत में ऋषभदेव के एक सौ पुत्रों में से एक भरत के नाम पर ही इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा बताया गया है—

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुणश्चासीत्।
येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशंति॥

(भागवत, ५/४)

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने १३ जन्मों में तीर्थंकरत्व की साधना की थी। वह एक जन्म में जीवानन्द नामक वैद्य थे और अपनी चिकित्सा से एक कुष्ठ रोगी मुनि को स्वस्थ किया था तथा मुनि के निर्मल उपदेशों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुनकर आत्मसाधना की। अगले जन्म में वज्रनाभ नाम के चक्रवर्ती राजा बने और जन्मांतर में तीर्थंकर ऋषभदेव हुए। ऋषभदेव का जन्म अयोध्या में पिता नाभिराय व माता मरुदेवी के यहां हुआ। ऋषभदेव के दो पत्नियां थीं—सुनन्दा और सुमंगला। सुनन्दा के एक पुत्र बाहुबली और पुत्री सुंदरी थे। इनके पुत्रों की संख्या ९८ और ९९ बतायी जाती है। सुमंगला के पुत्र का नाम भरत और पुत्री का नाम ब्राह्मी था। ऋषभ ने ब्राह्मी को लिपि और सुंदरी को गणित विद्या सिखायी। भरत कलाओं के ज्ञाता थे और बाहुबली को प्राणी-लक्षण का परिज्ञान था।

ऋषभ ने लोगों को कर्म की प्रेरणा दी तथा कर्म-व्यवस्था को छह भागों में विभाजित किया—(१) असि, (२) मसि, (३) कृषि, (४) विद्या, (५) शिल्प, (६) वाणिज्य। उन्होंने दंड-व्यवस्था का भी विधान किया। सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था करने के बाद वह संन्यासी बन गये तथा घोर-कठोर साधना में लीन हो गए। उनका उत्तराधिकार भरत ने संभाला, बाहुबली पोदनपुर के राजा बन गए। भरत ने अपने शासन का विस्तार कर अनेक राज्यों को अधीनस्थ बना लिया, परन्तु बाहुबली ने उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की। इस पर दोनों भाइयों में एक विलक्षण युद्ध हुआ—(१) एकदूसरे को अपलक देखने का, (२) एक दूसरे पर जल उछालने का, (३) मल्लयुद्ध। इसमें बाहुबली विजयी हुए और बाद में उन्होंने अपना राज्य, जो भाइयों में कलह का कारण था, भरत को दे दिया और संन्यस्त हो गए तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानमग्न रहकर बहुत समय तक तप करते रहे। भरत की क्षमायाचना पर उनके मन की शल्य निकली और वह केवलज्ञानी हो गए।

तीर्थंकर केवल क्षत्रियकुल में

२४ तीर्थंकरों में केवल ५ तीर्थंकरों ने विवाह नहीं किया था, वे आजन्म ब्रह्मचारी रहे। वे हैं—वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर। वैसे इस मत में दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा में कुछ विरोध है। तीर्थंकर केवल क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होते हैं। सभी तीर्थंकर राजकुल में उत्पन्न हुए और अपने पूर्व जन्म के तीर्थंकरत्व का स्मरण कर, अथवा अतिभोग और आसक्ति देखकर उनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे संन्यस्त हो गए या फिर किसी मुनि के ज्ञानोपदेश तथा घोर हिंसा के कारण उन्होंने जिन-दीक्षा ली।

नेमिनाथ बाईसवें तीर्थंकर थे। पशु-हिंसा की कल्पना कर ही वह संन्यस्त हो गए। नेमिनाथ वासुदेव कृष्ण के चचेरे भाई थे। कृष्ण और नेमिनाथ की जीवन-घटनाओं का काफी वर्णन मिलता है। नेमिनाथ की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारात जूनागढ़ पहुंची, तो उन्हें सैकड़ों पशुओं की करुण चीत्कार सुनायी दी। वह व्याकुल हो उठे। उन्होंने सारथी से इसका कारण पूछा, तो सारथी ने कहा कि उनका मांस अतिथियों के काम आएगा। फिर क्या था! नेमिनाथ ने विवाह से साफ इनकार कर दिया और विवाह की वेशभूषा उतार फेंकी तथा गिरनार पर्वत पर जाकर जिन-दीक्षा ले ली। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे। पार्श्वनाथ की मूर्ति के ऊपर सर्प का फण बनाया जाता है, क्योंकि, उनके जीवन में सर्पों का विशेष महत्त्व था। उन्होंने एक बार एक साधु को पंचाग्नि तप करते देखा और जलती हुई लकड़ी में सांप के जोड़े पर उनकी दृष्टि पड़ी, जिन्हें उनके आग्रह पर लकड़ी काटकर बचाया गया। बाद में पार्श्वनाथ संन्यस्त हो गए। उन्होंने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) अपरिग्रह।

महावीर और उनका युग

पार्श्वनाथ के तीन सौ वर्ष बाद महावीर उत्पन्न हुए और उन्होंने चातुर्याम में ब्रह्मचर्य को और शामिल कर दिया। इस प्रकार महावीर ने पांच अणुव्रतों का उपदेश दिया; अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

महावीर जैनधर्म के २४ वें तीर्थंकर हैं और अन्तिम हैं। उनका युग धर्मांधता से भरा था। आर्थिक विषमता और वर्ग-भेद बढ़ रहा था। धर्म में क्रियाकांड फैला हुआ था, पशुबलि-नरबलि का रिवाज था। स्त्रियों को समाज में हीन और भोग-सामग्री समझा जाता था। दास-प्रथा फैली थी। महावीर की अवस्था जैसे बढ़ती गयी, उनका बुद्धि-वैभव भी बढ़ने लगा। समाज की दुर्दशा देखकर वह चिन्तित रहने लगे। प्रभुता और ऐश्वर्य में उनका दम घुटने लगा और धीरे-धीरे उनमें वैराग्यभाव उत्पन्न होने लगा। कहते हैं, माता-पिता ने उनकी यह अवस्था देखकर कलिंग नरेश की परम सुंदरी कन्या यशोदा से विवाह कर दिया, दूसरी परम्परा उन्हें अविवाहित मानती है। माता-पिता के निधनोपरांत वह भाई नन्दिवर्धन से आज्ञा लेकर प्रव्रजित हो गए, जिन-दीक्षा ले ली। ३० वर्ष की भरी जवानी में ईसापूर्व ५६९ में वह दीक्षित हुए। दीक्षार्थ जाते हुए महावीर के चरणों पर हरिकेशी चांडाल गिर पड़ा, जिसे सस्नेह अपने गले लगाकर महावीर ने मानव-एकता का अपना मिशन शुरू किया, नहीं तो उस युग में अछूत चाण्डाल की छाया से भी लोग दूर रहते थे।

महावीर ने साढ़े बारह वर्ष तक घोर तप और एकांत चिंतन किया। इस अवधि में कई-एक घटनाएं उनके जीवन में घटित हुई।

प्रथम देशना

महावीर ने अपनी प्रथम देशना में कहा—उप्पणेइ वा विणस्सेइ वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धुवेइ वा। अर्थात, प्रत्येक वस्तु में तीन गुण होते हैं—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। उत्पन्न होना, क्षीण होना, स्थिर रहना, यही वस्तु-तत्त्व है। इस त्रिपदी द्वारा महावीर ने उस समय के सर्वविद्याओं के पारगामी विद्वान् इन्द्रभूति गौतम के ज्ञान-अहंकार की दीवारें धराशायी कर दीं। इन्द्रभूति के पांच सौ शिष्य थे, वे सब इन्द्रभूति के साथ महावीर धर्म में दीक्षित हो गए। वही महावीर के गणधरों में प्रमुख हैं। महावीर के ११ गणधरों के नाम हैं—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, आर्य-व्यक्त, सुधर्मा, मंडित, मौर्यपुत्र, अकंपित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास। महावीर ने वैशाली, कौशाम्बी, श्रावस्ती, राजगृह, चंपा, वाराणसी, मिथिला, कौशल, पांचाल आदि स्थानों में विहार करते हुए जनभाषा, अर्द्धमागधी में उपदेश दिए। अनेक राजा-महाराजा, स्त्री-पुरुष उनके धर्मशासन में सम्मिलित हुए। उन्होंने चतुर्विध संघ की स्थापना की—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। ईसापूर्व ५२७ में महावीर पावापुरी (बिहार) में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

मोक्ष प्राप्ति का एक सूत्र

महावीर ने मोक्षमार्ग पर चलने का अधिकार प्रत्येक प्राणी को दिया है। उन्होंने संसार का कर्त्ता ईश्वर को नहीं माना। वह तो प्राणी में ही—मनुष्य में ही ईश्वरत्व की प्राप्ति संभव बताते थे, प्रत्येक मनुष्य कर्मक्षय कर परमात्मा बन सकता है। यहां पुरुषार्थ को, कर्मशीलता को अधिक महत्ता दी गयी है। व्यक्ति अपने कर्मों का स्वयं कर्त्ता है और अपने किए कर्मों का परिणाम भोगनेवाला भी वही है। वह कर्म-प्रयत्न करके स्वतन्त्र या बंधनमुक्त हो सकता है।

महावीर ने कहा कि कर्मबन्धन से मुक्त होने पर प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकता है। उनका कर्मसिद्धांत नौ तत्त्वों पर आधारित है—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

पांच अणुव्रत

महावीर ने पांच अणुव्रतों के अनुपालन पर सर्वाधिक बल दिया। आज संसार में अशान्ति का कारण जहां परिग्रह और हिंसा है, वहां शारीरिक हिंसा और धन-संघर्ष या अर्थसंघर्ष से अधिक वैचारिक हिंसा संसार में अशान्ति का प्रमुख कारण है। वैसे तो महावीर के अणुव्रतों का मूलाधार 'संयम' है और संयम ही धर्म है—संयमी खलु धम्मो!

परन्तु हमारे व्यवहार में संयम और सहिष्णुता नहीं। महावीर ने इसके लिए हमें 'अनेकान्तवाद' का दर्शन दिया। अनेकान्तदृष्टि हमें सहिष्णु बनाती है, 'जीओ और जीने दो' या 'सह-अस्तित्व' का उदारभाव प्रदान करती है। महावीर ने मताग्रह छोड़ने और विचारों में समता तथा सहिष्णुता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पैदा करने पर बल दिया। महावीर ने कहा—'वस्तु के अनन्त धर्मों और पर्यायों को अनन्त चक्षुओं से देखो, उन्हें किसी एक चक्षु से मत देखो। जो व्यक्ति वस्तु-सत्य को एक चक्षु से देखता है, वह अपने स्वीकृत सिद्धांत का समर्थन और दूसरों की स्वीकृतियों का खण्डन करता है। अनेकांत का सिद्धांत पारस्परिक सौहार्द को बढ़ाता है, मनमुटाव, द्वेष-जलन को दूर करता है।

आज आणविक महायुद्ध हमारा द्वार खटखटा रहा है, उससे बचने के लिए हमें वैचारिक सहिष्णुता अहिंसा, अपरिग्रह के अस्त्र-शस्त्र उठाने पड़ेंगे, तभी मानवता का कल्याण होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा की परम्परा और महावीर

भारत प्राग्वैदिक काल से अहिंसा का प्रचारक रहा है। वैदिक काल में यज्ञों का प्राबल्य था, पशुबलि को उनमें प्राथमिकता दी जाती थी परन्तु अहिंसा की लौ तब भी अकंप थी। जन-मानस अहिंसा प्रेमी था। उपनिषद्-काल में वैराग्य को, इन्द्रिय-निग्रह को महत्व दिया गया। ब्राह्मण ग्रन्थों में दोनों धारणाएं प्राप्य हैं; सर्वमेध में सबको हनन किया जा सकता है, तथा किसी भी प्राणी की हिंसा न करो—"मा हिंस्यात् सर्वभूतानि।" वैदिक ब्राह्मण ऐसे यज्ञ का समर्थक था जिसमें जीव-हिंसा हो, यह हिंसोन्मुख यज्ञ धर्म का अंग समझा जाता था। बुद्ध और महावीर के युग में अहिंसा धर्म का अधिक प्रचार किया जाने लगा। वैसे इस अहिंसा क्रांति का बीजारोपण काफी पहले हो गया था। बहुत पहले न जाकर शबरी-प्रसंग को देखिए। 'बाल्मीकि रामायण' तथा 'रामचरित मानस' की शबरी एक अविस्मरणीय नारी पात्र है। उसे रामस्वरूप का अनुभव हो गया था अतः मुक्ति भी मिल गई। श्रीराम कहते हैं—

भक्तौ संजातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा।
ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि॥

अर्थात् भक्ति के उत्पन्न होने मात्र से मेरे स्वरूप का अनुभव हो जाता है और जिसे मेरा अनुभव हो जाता है उसकी उसी जन्म में मुक्ति हो जाती है। शबरी भील-कन्या होकर भी संस्कारों से अहिंसा-प्रेमी थी। जब वह पशु-बलि देखती तो आहत हो जाती, अधीर और अशांत हो जाती। और जिस समय उसके विवाह का सुखद अवसर आया तो उसने पशु-हिंसा से पीड़ित होकर विवाह-पूर्व ही घर-बार जोड़ दिया और आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत की पथिक बनकर, भयानक मार्ग तय करते हुए पम्पासर पहुंच गई जहां मतंग ऋषि ने उसे शरण प्रदान की।

अब इस युग के बाद आइए बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के युग पर। वह वासुदेव कृष्ण के चचेरे भाई थे। नेमिनाथ का विवाह जूनागढ़ के अधिपति उग्रसेन की कन्या राजुलमति से होना तय पाया था। उनकी बारात जूनागढ़ में जिस रास्ते से जा रही थी वहां एक स्थान पर पशु क्रन्दन सुनाई पड़ा। वहां अतिथियों के लिए मांस की व्यवस्था की गई थी। नेमिनाथ का रथ रुक गया और उनका हृदय स्वयं करुणा से चीत्कार कर उठा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्याय, अत्याचार, अविवेक और हिंसा को वह नहीं अपना सकते थे, अतः वैवाहिक वेष-भूषा उतार फेंकी, चारों ओर हलचल मच गई और बिना किसी के उपदेश सुने उन्होंने गिरिनार पर्वत पर जाकर दीक्षा प्राप्त की तथा ५४ दिन की तपश्चर्या के उपरान्त केवलज्ञान प्राप्त किया।

कृष्ण ने अहिंसा को यज्ञ में महत्त्वपूर्ण माना और कहा कि उत्तम यज्ञ वह है जहां मनुष्य परोपकार पर ध्यान दे, अपने जीवन को परोपकार में लगाये और यज्ञ में कभी जीव-हत्या न करे। अहिंसा उस यज्ञ की दक्षिणा है, ऋजु-भाव उस यज्ञ की दक्षिणा है, दान-सत्य उस यज्ञ की दक्षिणा है। श्री कृष्ण ने द्रव्य यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ को अधिक महत्त्व दिया है, क्योंकि सब प्रकार के कर्मों का पर्यवसान ज्ञान में होता है। ज्ञान रूपी अग्नि सब कर्मों को जला डालती है, जैसे अग्नि सकल ईंधन को जला देती है। इस संसार में सचमुच ज्ञान से श्रेष्ठ कुछ नहीं—"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" (गीता ४,३८)। बुद्धदेव ने यज्ञ में जीवों की हिंसा को कभी अच्छा नहीं समझा। एक स्थान पर उन्होंने कहा, "जिस यज्ञ में प्राणियों की हिंसा नहीं होती, भेड़, बकरे, गाय, बैल आदि प्राणी मारे नहीं जाते और जो सर्वदा लोगों को अच्छा लगता है, उसमें सन्त-महर्षि जाया करते हैं। इसलिए सुज्ञ पुरुष को ऐसा यज्ञ करना चाहिए।" बुद्ध से ढाई सौ वर्ष पूर्व तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ने अपने चातुर्याम में अहिंसा को महत्त्व दिया। 'स्थानांगसूत्र' में चातुर्याम का निम्न रूप में वर्णन प्राप्त होता है :—

(१) अहिंसा—सभी प्रकार के प्राणघात से विरति।
(२) सत्य—सभी प्रकार के असत्य से विरति।
(३) अचौर्य—सभी प्रकार के अदत्तादान (चोरी) से विरति।
(४) अपरिग्रह—सभी प्रकार के बहिर्धा-आदान से विरति।

यज्ञों में पशु-हिंसा कब से शुरू हुई, अभी इस पर अन्तिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सका लेकिन यह कहा जाता है कि 'अजैर्यष्टव्यम्' सूत्र में 'अज' के अर्थ को लेकर नारद और पर्वत में मतभेद हो गया। एक कहता था 'पुराना जो', दूसरा कहता था 'बकरा'। अन्त में झगड़ा समाप्त करते हुए राजा वसु ने अपना मत 'बकरा' के पक्ष में दिया तभी से यज्ञों में—पशु बलि और बाद में नर बलि (नरमेघ) तक दी जाने लगी। पार्श्वनाथ का युग हिंसा का युग था। सुन्दरतम पशुओं की बलि अच्छी समझी जाती थी। महात्मा बुद्ध और भगवान महावीर दोनों समकालीन थे। दोनों ने अहिंसा को सर्वाधिक महत्त्व दिया। उनके 'चार आर्य सत्य' और 'अष्टांगिक मार्ग' में अहिंसा का प्रतिपादन हुआ है। 'सम्यक् कर्मांत' में जोर दिया गया है कि प्राणि-हिंसा न करना, जो दिया न गया हो उसे नहीं लेना, दुराचार से बचना और अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को भोग के अतिचार से दूर रखना। बुद्ध देव अन्य अवतारों के समान विष्णु भगवान अवतार हैं—"केशव धृत बुद्धशरीर" ताकि पशु-हिंसा को रोक सकें।

महावीर ने अहिंसा को व्यापकता प्रदान की। उसे जीवन में प्रत्येक व्यवहार से जोड़कर एक बहुआयामी रूप प्रदान किया। उनकी दृष्टि में किसी का बध करना ही हिंसा नहीं, वरन् दूसरों को सताना, पीड़ा पहुंचाना, मानसिक या शारीरिक रूप से कष्ट पहुंचाना हिंसा के ही रूप हैं। महावीर कहते हैं :—

सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा।
पियजीविणो जिविउकामा, सव्वेसि जीवियं पियं॥

अर्थात् किसी को दूसरे के प्राण लेने का अधिकार नहीं, सबको अपने प्राण प्रिय हैं, फिर कोई किसी की हत्या क्यों करे? अहिंसा द्वारा हृदय में समता का भाव उत्पन्न होता है। समता आने पर राग-द्वेष समाप्त हो जाता है, विषमता नष्ट हो जाती है। प्रेम और मैत्री के दरवाजे खुल जाते हैं। 'सह-अस्तित्व', या 'परस्परोपग्रहोजीवानाम्' के उदार भाव-स्रोत यहां फूटते हैं। 'जीवो और जीने दो' का झरना बहता है। 'तत्त्वार्थ सूत्र' में हिंसा का लक्षण इस प्रकार व्यक्त किया गया है—'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा' (७,१३) अर्थात् प्रमादीपन से प्राणों के घात करने को हिंसा कहते हैं। हिंसा दो प्रकार की मानी गई है; (१) द्रव्य हिंसा (२) भाव हिंसा। स्वाभाविक रूप से प्राणी मृत्यु को प्राप्त होता है तो वहां हिंसा नहीं। या पूर्ण सावधानी बरतने पर यदि कीड़े-मकोड़े कुचले जाते हैं, मर जाते हैं तो भी यह हिंसा नहीं, या जो सूक्ष्म जीव हैं उनकी हिंसा नहीं मानी जा सकती, लेकिन स्थूल जीव की रक्षा करना मनुष्य का परम धर्म है यही 'अहिंसा परमो धर्मः' है। यदि हम किसी को अपनी बात से कष्ट देते हैं, बुरा कहते हैं या लड़ाई-झगड़ा खड़ा करते हैं तो यह भी हिंसा है। मानसिक पीड़ा या हिंसा की रोकथाम के लिए महावीर ने 'अनेकांत' का मंत्र देकर एक वैचारिक सहिष्णुता की मंदाकिनी प्रवाहित की। 'समणसुत्तं' के अहिंसा सूत्र में कहा गया है कि ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। इतना जानना ही पर्याप्त है कि अहिंसा मूलक समता ही धर्म है अथवा यही अहिंसा का विज्ञान है। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं। इसलिए प्राणबध को भयानक जानकर निर्ग्रन्थ उसका वर्जन करे। जैसे तुम्हें दुख प्रिय नहीं है, वैसे ही सब जीवों को दुख प्रिय नहीं है—ऐसा जानकर, पूर्ण आदर और सावधानी-पूर्वक आत्मौपम्य दृष्टि से सब पर दया करो।

याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी को ब्रह्मविद्या के विषय में उपदेश देते हुए कहते हैं कि पति पत्नी को इसलिए प्रेम करना चाहता है कि वह उसमें अपना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'स्व' देखता है। यही 'स्व' हमें अपने परिजनों से प्रेम करने को बाध्य करता है, इसी 'स्व' का प्रसार अहिंसा है। आत्मौपम्य दृष्टि भी यही है। महावीर इसी आत्मौपम्य दृष्टि के धनी हैं। जैनधर्म का निचोड़ अहिंसा है, अहिंसा ही उसकी आत्मा है, प्राण है। भगवान् महावीर 'आचारांग सूत्र' में कहते हैं —"जब तुम किसी को मारने, सताने अथवा अन्य प्रकार से कष्ट देना चाहते हो तो उसकी जगह अपने को रखकर सोचो। यदि वही व्यवहार तुम्हारे साथ किया जाय तो कैसा लगता? यदि मानते हो कि तुम्हें अप्रिय लगता तो समझ लो, दूसरे को भी अप्रिय लगेगा। यदि नहीं चाहते कि तुम्हारे साथ कोई ऐसा व्यवहार करे तो तुम भी वैसा मत करो।" इस युग में गांधीजी ने अहिंसा को एक महान् शस्त्र के रूप में प्रयोग कर हमें स्वतन्त्रता का अमृत प्रदान किया। उन्होंने इसे कायर का नहीं वीरता का आभूषण कहा है। अहिंसा के पालन में तलवार चलाने से कहीं अधिक वीरता की जरूरत है। महावीर की अहिंसा महावीरत्व है। अहिंसा की ज्योति उनमें इतनी अधिक थी कि सर्वप्राणियों में अपनी ही आत्मा दिखाई देती थी, सब का दुख उनका अपना दुख बन गया था। उनकी यह अहिंसा शुद्ध शाश्वत धर्म है—

"एस धम्मे सुद्धे णितिए सासए समेच्च लोयं खेतण्णेहि पवेदिते।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर और विश्व-शांति

भगवान महावीर आत्मदर्शी और आत्मजयी थे, क्षमावीर और धैर्यवान थे, समदर्शी और सहिष्णु थे, सत्य के प्रेमी थे, करुणा की मूर्ति थे। उनके समवसरण में सभी धर्मों, मतों, सम्प्रदायों के लोग एक साथ उठते-बैठते थे, प्रवचनों की अमृतवर्षा से अपने शुष्क हृदय को सिक्त करते थे, अपनी कठोर क्रूर, मन की भूमि को कोमल और मृदु बनाते थे। उन्होंने लोगों को समझाया कि कर्म से व्यक्ति ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य या शुद्र होता है, जन्म से कोई ब्राह्मण या शूद्र नहीं होता, जन्म से कोई बड़ा या छोटा नहीं होता। आज सारा समाज धर्म और सम्प्रदाय को लेकर अशांत है, हिंसक बना हुआ है। विश्व के मानचित्र को देखें तो वहां भी वर्गसंघर्ष है, विकसित और विकासशील देशों में रस्साकशी है। विषमता बढ़ती जा रही है। मनुष्य न्यूट्रोन बम जैसे भयानक/सर्वनाशक हथियार बना रहा है। वह स्वयं अपनी जाति के सर्वनाश पर तुला है, साथ ही समस्त प्राणिजगत् को भी अपने साथ नष्ट करना चाहता है। मनुष्य का मनुष्य की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं, वह जब चाहे उसके प्राण ले सकता है। कैसा भयानक स्थिति है? भगवान् महावीर ने हमें समता का आदर्श सिखाया। यह समता का आदर्श आज के विषमता और वर्ग-संघर्ष की अग्नि में धू-धू करके जलने वाले संसार को बचाने में समर्थ है, यह शीतल जल का काम कर उस धधकती ज्वाला को बुझा सकता है। समता का अर्थ है न राग, न घृणा, न द्वेष, न आकर्षण, न विकर्षण, न मोह, न ममता।

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित पांच महाव्रत—एक ऐसे ज्योतिपुंज है जो विश्व को हिंसा के, विषमता के, अशांति के घोर अन्धकार से निकालने का मार्ग दर्शाते हैं। ये ही पांच महाव्रत सह-अस्तित्व की भावना को साकार करने में सफल हैं, ये ही मनुष्यता की, मानवता की रक्षा करने वाले हैं। "परस्परोग्रहोजीवानाम्" का संदेश हमें महावीर ने दिया, इस संदेश में सभी जीवों के साथ उपकार करने की—एक साथ जीवन-यापन करने की बात कही गई है, इसी को "सह-अस्तित्व" कहेंगे। जब अहिंसा की भावना सामने आती है, तब उसमें भी सह-अस्तित्व है। यदि संसार में सभी देश अहिंसा के महाणुव्रत का पालन करें तो वे आपस में सुखपूर्वक रहेंगे और दूसरों को भी सुखपूर्वक रहने देंगे। यहां मनमुटाव और शत्रुता का स्वतः विनाश हो जाएगा। सत्य की खोज में सह-अस्तित्व है, अस्तेय में सह-अस्तित्व है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि हम चोरी न करें, अनुचित साधनों से वस्तु ग्रहण न करें—सबके समान, सामने ग्रहण करें तो शान्ति स्थापित होगी ही। यही बात ब्रह्मचर्य में, संयम के व्यवहार में देखी जा सकती है। महावीर ने कहा ही नहीं, करके दिखाया। उन्होंने अपने चरित्र में इन महाव्रतों को ढाला है। आज का विश्व, मनुष्य घोर "सेक्सी" होता जा रहा है। संयम और मर्यादाएं उसके सामने कोई महत्त्व/मूल्य नहीं रखतीं। वह वासना और भोगविलास के लिए नारी का भोग करता है, उसे भोग की सामग्री के कुछ नहीं समझता। यह नारी का परिग्रह है। कामुकता और वासना की पंक से निकलने के लिए महावीर का ब्रह्मचर्य सहायक है। यह एक पवित्र, स्वच्छ निर्झर के समान है जो मनुष्य के समस्त वासना-पंक को धोकर साफ कर सकता है। ब्रह्मचर्य संयम सिखाता है। यहां अनुशासन, आत्मानुशासन का दीप मनुष्य के अन्दर प्रज्वलित होता है।

अनुशासन, आत्मसंयम भगवान् महावीर का परम आदर्श था। संसार में अनुशासनहीनता कितनी है, यह हम सभी को मालूम है, हम कितने उन्मुक्त, स्वच्छंद, मर्यादाहीन हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। संसार में अशांति का एक बड़ा कारण यही अनुशासनहीनता है। भगवान् महावीर ने हमें अनेकान्तवाद का आदर्श दिखाया जहां पक्षपात के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। वस्तु का स्वभाव ही धर्म है, प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मा होती है, अनेक गुण सम्पन्ना होती है। वस्तु के सभी गुणों को समझना चाहिए, उन्हें महत्त्व देना चाहिए। दुराग्रह त्याग कर दूसरों के तर्कों का, विचारों का आदर करना चाहिए, लेकिन हमें दूसरों के मतों को, विचारों को, भावना को ठेसें पहुंचाने में सुख मिलता है। यह हीन दृष्टि है, असमानता, विषमता, संघर्ष और कलह की जननी है, विश्व में अशान्ति का बीज इसी धरती पर जमता है।

अनेकान्तवाद द्वारा हम सह-अस्तित्व को, विश्व-शान्ति को, विश्व बंधुत्व की, सर्वधर्मसमभाव और सहिष्णुता की ओर अग्रसर होते हैं और पहुंचते हैं मानव-एकता के महान आदर्श की ओर "अनेक अन्ताः धर्माः यस्मिन स अनेकान्त" अर्थात् अनेक धर्मों के कारण प्रत्येक वस्तु अनेकान्त रूप में विद्यमान है। यह एक सापेक्ष सिद्धान्त है, यहां मताग्रह के लिए कोई जगह नहीं है। महावीर ने अनेकान्तवाद द्वारा व्यक्ति और समाज की भौतिक, व्यावहारिक, आर्थिक, सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान खोज निकाला। इस सिद्धान्त के द्वारा हम सहिष्णु बनते हैं, दूसरों के मतों/भावनाओं का आदर करते हैं, और जाहिर है फिर दूसरे भी हमारे मतों/भावनाओं का आदर करते हैं। यहां सभी प्रकार के विरोधों का उन्मूलन होता है। विश्व में अशान्ति है, संघर्ष है, हिंसा है और मालूम नहीं कब तृतीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महायुद्ध/आण्विक युद्ध भड़क उठे। इससे बचने के लिए महावीर का सिद्धान्त "अनेकान्तवाद" हमें बहुत सहायता दे सकता है, त्राण दिला सकता है।

आज विश्व में अशान्ति का प्रमुख कारण "परिग्रह" है। 'परिग्रह-प्रवृत्ति' हमें अन्धा बनाती है। हम स्वार्थी बनकर केवल अपने लिए धन-संग्रह करते हैं, वस्तुओं की जमाखोरी करते हैं, काला धन बनाते हैं। इन सभी से वस्तुओं के मूल्य बढ़ते हैं, वस्तुओं का अभाव हो जाता है। धनी लोग अधिक मूल्य देकर चीजें खरीद लेते हैं। संसार इसीलिए मुद्रास्फीति "इन्फलेशन" की समस्या से जूझ रहा है। गरीब देशों का अमीर देश शोषण कर रहे हैं। ये ही अशान्ति के कारण हैं। भगवान महावीर ने हजारों वर्ष पूर्व लोगों को "अपरिग्रह" का सिद्धान्त सिखाया ताकि वे किसी भी वस्तु का अनावश्यक रूप में संग्रह या परिग्रह न करें। परिग्रह धन का ही नहीं, मनुष्य का देखने में आता है, दासता के रूप में, नारी का परिग्रह भी देखने में आता है भोग और दहेज के रूप में। नारियों को तो आज भी बेचा जाता है। दहेज कम लाने पर उसे जीवित जलाया जाता है। ऐसे मामले हम रोजाना समाचार पत्रों में पढ़ते भी हैं और देखते भी हैं। "रेप केस" भी इसीलिए होते हैं। किसी की अभाव में डालकर सुखी बनना क्या मानवता है? किसी को बन्धुआ मजदूर बनाना क्या अमानुषिक कार्य नहीं है? महावीर के युग में भी क्रीतदासप्रथा थी, "चंदनबाला" इसका ज्वलंत उदाहरण है, उसे सरे बाजार बोली बोल-कर बेचा गया था। हमारी सरकार ने बन्धुआ मजदूरों को मुक्त कराकर एक महान मानवीय काम किया, परन्तु विश्व में परिग्रह की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, इसलिए हिंसा का वातावरण भी बढ़ता है। बड़े धनी-सम्पन्न देश छोटे देशों को अपने चंगुल में फंसाये हैं, उन्हें आजादी से सांस लेने, बात करने का अधिकार नहीं। शोषण की इस प्रवृत्ति को, परिग्रह की इस दुर्भावना को भगवान् महावीर की अहिंसा और अपरिग्रह से नष्ट किया जा सकता है और संसार में विश्व व्यापी शान्ति स्थापित की जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर की लोकतांत्रिक दृष्टि

प्रजातन्त्र की सफलता स्वतन्त्रता, समानता, वैचारिक उदारता, सहिष्णुता, सापेक्षता और दूसरे को निकट से समझने की मनोवृत्ति के विकास पर अवलम्बित है, इनके अभाव में गणतन्त्र का अस्तित्व संदिग्ध रहेगा। महावीर गणतन्त्र के प्रबल समर्थक हैं, उनके उपदेशों में व्यक्ति स्वातन्त्र्य, सामाजिक साम्य, आर्थिक साम्य, धार्मिक साम्य आदि पर विशेष बल दिया गया है और यही गणतन्त्र के सुदृढ़ स्तम्भ है, यदि इनमें से कोई एक दुर्बल हो गया तो समझिए गणतंत्र की आधारशिला डगमगा जायेगी। महावीर का युग गणतन्त्रीय तो था लेकिन वहां व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का सर्वथा लोप था, दास-प्रथा इतनी व्यापक और दयनीय थी कि मनुष्य, मनुष्य का क्रीतदास बना हुआ था। मनुष्य, मनुष्य के सर्वथा अधीनस्थ था, स्वामी का सेवक पर संपूर्ण अधिकार था। दास-दासी तथा नारी सभी का परिग्रह किया जाता था। महावीर के युग में जातीय भेदभाव की खाई बहुत चौड़ी थी। सामाजिक तथा आर्थिक वैषम्य के कारण शांतिमय वातावरण नहीं था, मताग्रह की प्रचण्ड आंधी ने सम्यग्ज्ञान व सम्यक्दृष्टि का मार्ग धुंधला कर दिया था। यही सब महावीर ने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और प्राणी-साम्य का उद्घोष किया।

स्वतन्त्रता की सिद्धि के लिए अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य की त्रिवेणी में अवगाहन करना पड़ता है। अहिंसा के द्वारा हम सभी के साथ मैत्री भाव स्थापित करते हैं और मैत्री भाव में समानता की मनोवृत्ति विद्यमान है। महावीर ने सभी प्राणियों से मैत्री भाव स्थापित करने और किसी को मारने का, किसी भी प्रकार के कष्ट देने का निषेध किया है। यहां हम अपनी आत्मा के समान दूसरे की आत्मा को महत्त्व देते हैं, अपने दुःख के समान दूसरे के दुःख अनुभव करते हैं यानी 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का चिरादर्श प्रस्तुत करते हैं। प्रजातन्त्र में भी अपने समान दूसरे की स्वतन्त्रता को महत्त्वपूर्ण समझा जाता है, 'स्व' की सीमित परिधि को—'स्व' की संकीर्णता को त्यागे बिना हम किसी भी तरह पर-महत्त्व को, दूसरे की स्वतन्त्रता को समादर प्रदान नहीं कर सकते। आज यदि बन्धकों को विमुक्त किया गया है, भूमिहीनों को भूमि प्रदान की गई है, बेरोजगारों को रोजगार की समुचित सुविधाएं प्रदान करने के लिए सरकार की ओर से कम, आसान शर्तों पर ऋण देने की व्यवस्था की गई है तो यहां भी दूसरों की स्वतन्त्रता की स्वीकृति ही है।

यह माना कि पराधीनता में सुख-सुविधाओं का मार्ग खुला रहता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन ऐसी सुख-सुविधाएं अधिकतर शारीरिक आवश्यकताओं—भोजन, वस्त्र की उपलब्धियों तक ही परिसीमित रहती हैं जबकि स्वतन्त्रता का मार्ग कष्ट और असुविधाओं का मार्ग होता है। कष्ट और असुविधाओं के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलकर ही स्वतन्त्रता का, मुक्ति की परम सुख-सुविधाओं का गंतव्य हाथ आता है। परतन्त्रता में हमें घर मिलता है—आवास मिलता है जबकि स्वतन्त्रता में हम घर से मुक्ति पाते हैं। घर व्यक्ति को सीमा में—बन्धन में बांधकर रखता है, स्वतन्त्रता में हम घर से बाहर आकर चौराहे पर खड़े होते हैं—दूसरों के साथ रहते हैं या दूसरों को अपने साथ रखते हैं। जब हम स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहे थे तब घरों से बाहर आ गये—नौकरी, आफिस सभी की दीवारें ढह गईं। घर से बाहर आना—घर और परिवार के प्रति ममत्व का विसर्जन कर सभी प्राणियों को अपने परिवार में शामिल कर लेते हैं—"वसुधैव कुटुम्बकम्" के उच्चादर्श का संस्पर्श करने लगते हैं। महावीर की अहिंसा इसी स्वतन्त्रता—प्राणीजगत् की स्वतन्त्रता का ही तो आदर्श प्रस्तुत करती है। महावीर ने कहा है—

'अहिंसा निउणं दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो।'

अर्थात् प्राणिमात्र के प्रति जो संयम है, वही पूर्ण अहिंसा है। और जब तक जीवन में संयम की कलियां प्रस्फुटित नहीं होंगी तब तक न अहिंसा होगी, न स्वतन्त्रता। संयम की आवश्यकता से विमुख नहीं रहा जा सकता। महावीर ने ब्रह्मचर्य-व्रत में संयम को जीवन के लिए स्पृहणीय माना है। ब्रह्मचर्य अस्वाद का ही शाश्वत अभ्यास है। अच्छा-बुरा, खट्टा-मीठा, नीरस-सरस, आकर्षक-विकर्षक के बीच समत्व स्थापित करना ही ब्रह्मचर्य है। यहां शरीर का ममत्व स्वतः विसर्जित हो जाता है। इसके द्वारा हम शरीर के प्रति ममत्व का परित्याग कर अपरिग्रह या परिमाण-परिग्रह की ओर उद्ग्रीव होते हैं। जब तक वैभव का प्रदर्शन किया जाएगा तब तक समाज में ऊंच-नीच की दीवारें ऊंची ही रहेंगी। अगर वैभव की दीवारों को नीचा करेंगे- उन्हें धराशायी करेंगे तो समाज में सभी समानता के धरातल पर खड़े हो सकते हैं। जहां वैभव होगा वहां एक व्यक्ति दूसरे से पृथक् रहेगा, अपने आपको दूसरे से परिसम्पन्न समझने के कारण समाज में विसंगतियां और विद्रूपताएं वातावरण को प्रदूषित करती रहेंगी। वैभव का विसर्जन समाज में एकता की भावना उद्बुद्ध करने वाला है। प्रजातन्त्र में इस प्रकार के विसर्जन को प्राथमिकता देना आवश्यक है। जब तक विसर्जन नहीं होगा—त्याग-वृत्ति नहीं होती तब तक तो हम दूसरों को अपने साथ कैसे ले चलेंगे? त्याग ही तो हमारे अन्दर वह अनुभूति और चेतना उदित करता है जिसके द्वारा हम दूसरों में जा मिलते हैं; परिग्रह में हम दूसरों से अपने आपको पृथक् रखते हैं, अपरिग्रह में या त्याग-वृत्ति में हम दूसरों के साथ मिलकर उनसे तादात्म्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थापित कर लेते हैं। अतः प्रजातन्त्र के लिए व्यक्तियों को संग्रह-वृत्ति के स्थान पर त्याग-वृत्ति का महत्त्व दिया जाता है। संग्रह-वृत्ति, वैभव-प्रदर्शन, अहंकार या ममकार का ही प्रतिरूप—साक्षात् रूप है, प्रजातन्त्र में यदि अहंकार की भावना ने डेरा जमा लिया तो यह प्रजातन्त्र तानाशाही का भयावह रूप धारण कर लेता है। जहां ममत्व है, आसक्ति है, अहंकार है, मूर्च्छा है वहीं अधर्म है, वहीं तानाशाही है।

प्रजातन्त्र में सामाजिक ऐक्य को प्राथमिकता दी जाती है. मानव जाति में ऐक्य की प्रतिष्ठापना प्रजातन्त्र है। यहां स्वामी-सेवक, स्त्री-पुरुष को पृथक्-पृथक् कर्त्तव्य का अधिकार नहीं दिये जाते। भेददृष्टि का निराकरण प्रजातन्त्र का मूल है, इसी भेददृष्टि का निराकरण महावीर के उपदेशों का मेरुदण्ड है। महावीर ने जब यह फरमाया—"जिसे तू मारना चाहता है वह तू ही है" (आचारांग १,५,५), तो यहां समत्व का ही उच्च दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है—आत्मा के एकत्व पर ही बल दिया गया है। प्रजातन्त्र में जातीय भेद या वर्ण भेद के लिए कोई स्थान नहीं, रंग व नस्ल की वरिष्ठता के लिए कोई अवकाश नहीं। रंग व नस्ल की निरर्थक वरिष्ठता ने जिस समाज या देश में अपना विष बीज बोया वह कभी नहीं उबरा। सांप्रदायिकता की आकाश बेल जिस देशजाति के विटप पर फैलने लगती है उसकी प्रगति अवरुद्ध हो जाती है, वह दूसरों की दृष्टि में हीन-अनादृत और सावद्य समझी जाती है। महावीर ने अपने समवसरण में किसी जाति, समाज या धर्मावलम्बी पर कभी पाबन्दी नहीं लगाई। उनका धर्म मानवजाति का धर्म है, किसी सम्प्रदाय या जाति विशेष का धर्म नहीं। वह आत्मा की पवित्र गंगा है जिसमें सब साथ मिलकर निमज्जन कर सकते हैं – वह सभी के पापों-कलुषों का शमन करने वाला धर्म है। महावीर सम्प्रदायातीत हैं, प्रजातन्त्र भी सम्प्रदायातीत होता है, यहां सभी को अपने मतों को, विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता रहती है, सभी को अपनी योग्यतानुसार प्रगति करने की सुविधाएं प्राप्त करने के समान अवसर तथा अधिकार प्रदान किये जाते हैं। व्यक्ति में इस प्रकार की आत्मस्वातन्त्र्य की भावना महावीर ने हजारों वर्ष पूर्व जागृत की थी।

प्रजातन्त्र में हम अपने मत को, मान्यता को जितना महत्त्व देते हैं उतना ही दूसरों के मत व मान्यता को महत्त्व देने का वैचारिक औदार्य प्रकट करते हैं। यदि इसके विपरीत करेंगे तो प्रजातन्त्र का गला घुट जाएगा, उसकी हत्या हो जायेगी। यहां तो सभी को अपने विचार प्रस्तुत करने का समान अधिकार है, सभी को अपनी निष्ठानुसार धर्माचरण करने की स्वतंत्रता है। इसी को हम महावीर के अनेकांतवाद के परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं। सत्य किसी एक व्यक्ति या सम्प्रदाय की बपौती नहीं, वह तो सबका है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी के पास सत्यांश हो सकता है। हमें दुराग्रह का त्याग कर, सम्यक् दृष्टि अपनाकर सत्य का रूप जहां भी प्राप्य हो अंगीकृत करना चाहिए। मताग्रही सत्य के द्वार तक नहीं पहुंच सकता, सत्य का मार्ग प्रशस्त है, उसमें संकीर्णता नहीं, विस्तार और व्यापकत्व है। हमें जितना अपना मत प्रिय है दूसरे को भी उतना ही अपना मत प्रिय है। हमें क्या अधिकार है कि दूसरे के मत का खण्डन कर उस पर अपने मत का प्रतिपादन करने का अनैतिक आचरण करें। महावीर ने अनेकांत के द्वारा एक वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न की। उन्होंने वैचारिक सहिष्णुता का परचम बुलन्द करके सभी को उसके नीचे खड़े होने का, अपना अभिमत व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की। उन्होंने बतलाया—वस्तु या पदार्थ अनेक धर्म अथवा गुण विशेषता सम्पन्न होता है। उसमें एक ही गुण या विशेषता का प्राधान्य नहीं रहता। पत्नी केवल पत्नी नहीं होती, वह पत्नी के साथ एक ममतामयी मां, प्यारी सखी, विश्वसनीय मित्र, लाड़ली बेटी, प्रिय भाभी आदि भी होती है अर्थात् वह विविधरूपा होती हैं। इस प्रकार अनेक धर्मों के कारण प्रत्येक वस्तु अनेकांत रूप में विद्यमान है, उसके रूप नानाविध होते हैं। उपाध्याय यशोविजय ने कहा है—'सच्चा अनेकांतवादी किसी दर्शन से द्वेष नहीं करता। वह सम्पूर्ण दृष्टिकोण को इसी प्रकार वात्सल्य दृष्टि से देखता है जैसे कोई पिता अपने पुत्रों को। माध्यस्थ भाव ही शास्त्रों का गूढ रहस्य है, यही धर्मवाद है।' जब विचारों में इस प्रकार माध्यस्थ भाव रहेगा या हम दूसरों के विचारों/मतों को सहिष्णुता से सुनेंगे, समझेंगे, हृदयंगम करेंगे तो सभी प्रकार के वैचारिक संघर्ष नष्ट हो जाएंगे। फिर राजनैतिक मानचित्र पर बड़े-बड़े मतवाद, युद्धोन्मुखी संघर्षों को जन्म न दे सकेंगे, वियतनाम या इस्राईल-अरब की रक्तरंजित समस्याएं करोड़ों की जान लेकर समाप्त न होंगी; वह बिना रक्तपात के भी सुलझाई जा सकती है। प्रजातन्त्र में वाद-विवाद के द्वारा एक बहुमान्य सत्य की ही खोज तो की जाती है। संसद में विपक्षी दल के मत को भी सत्ताधारी दल मान देता है। विपक्ष की धारणाओं में भी सत्यता का कोई न कोई अंश विद्यमान रहता है। आचार्य मणिभद्र का विचार है—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य, यस्य कार्यः परिग्रहः॥

अर्थात् मुझे न तो महावीर के प्रति पक्षपात है और न कपिलादि मुनिगणों के प्रति ईर्ष्या-द्वेष है। जो भी वचन तर्कसंगत हो उसे ग्रहण करना चाहिए। महावीर ने 'यही है' को मान्यता नहीं दी, उन्होंने 'यह भी है' को मान्यता देकर पारस्परिक विरोधों तथा मताग्रहों की लौह-शृंखला को एक ही झटके में तोड़ डाला। उन्होंने सत्य को सापेक्षता में देखा और उसे अभिव्यक्ति दी स्याद्वाद की शैली में। प्रजातंत्र की पूर्ण सफलता अनेकांतदृष्टि में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्निहित है। आज का युग मताग्रह का नहीं, वैचारिक सहिष्णुता एवं उदारता का है, संकीर्णता का नहीं विशाल-हृदयता का है और यह विशाल हृदयता या उदारता अनेकांतवाद का मूल है।

प्रजातन्त्र में लोकव्यवहृत भाषा को महत्त्व दिया जाता है। किसी एक सीमित विशिष्ट वर्ग या सम्प्रदाय की भाषा को बहुसंख्यक भाषा-भाषी स्वीकार नहीं करेंगे। संस्कृत में उपदेश या भाषण यदि कोई देने लगे तो उससे चंद मुट्ठी भर लोगों को ही लाभ मिल सकता है। महावीर ने अपने उपदेशों को पंडितों की भाषा में व्यक्त नहीं किया वरन् लोकभाषा अर्धमागधी में व्यक्त किया तभी उनका प्रचार-प्रसार अधिक हुआ और अधिकाधिक लोग उनसे लाभान्वित हुए। जहां कहीं भी प्रजातन्त्र है वहां का शासन-कार्य बहुसंख्यक लोगों की भाषा में ही चलता है। ढाई हजार वर्ष पूर्व महावीर ने भाषा की समस्या का प्रजातांत्रिक अनुकरणीय निदान प्रस्तुत कर दिया था।

स्त्रियों को दीक्षा देकर उन्होंने एक समानता का प्रजातांत्रिक आदर्श पेश किया था, उनके शोषण व परिग्रह को नष्ट कर बहुमान और आदर प्रदान किया था। शोषित वर्ग को समाज में समान अधिकार दिलाए, स्वामी-सेवक के, शोषक-शोषित के भेदभाव को नष्ट किया, अपरिग्रह के सिद्धान्त द्वारा आर्थिक समानता का वह आदर्श प्रस्तुत किया जो सभी प्रजातांत्रिक देशों में समाजवाद के नाम से अभिहित है। महावीर की विचारधारा प्रजातंत्र की बहुमुखी विशेषताओं का अनुपम और सर्वहितकारी संगम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी–उत्थान के प्रति महावीर की संवेदना

समर्पण लो सेवा का सार,
सजल संसृति का यह पतवार।
आज से यह जीवन उत्सर्ग,
इसी पद तल में विगत विकार।
दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ,
तुम्हारे लिए खुला है पास।
× × ×
नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।

(कामायनी)

वस्तुतः समाज की 'स्थिति', उसकी धुरी नारी है और पुरुष में पौरुष है वह वह उसकी 'गति' है। 'स्थिति' और 'गति' दोनों के सन्तुलन की समाज की प्रगति के लिए अपेक्षा रहती है। भारतीय धर्म और संस्कृति में नारी की महिमा-गरिमा की चर्चा काफी की गई है। 'महाभारत' (१३।४६।५९-६१)में कहा गया है कि जहां स्त्री की पूजा की जाती है, उसका आदर-सत्कार किया जाता है, वहां देवता निवास करते हैं, जहां उसे आदर नहीं दिया जाता, वहां धार्मिक क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं। घर तो गृहिणी से है, गृहिणी नहीं तो घर जंगल है।

सीता, त्रिशला, चंदना, जयप्रभा आदि नारियां हमारी संस्कृति की अकंप वृत्तिकाएं हैं। वाल्मीकि ने सीता को स्त्रियों में उत्तम माना है—'नारीणामुत्तमा वधूः।' नीतिकार नारी में छः गुणों का समावेश देखता है—

कार्येषु मंत्री वचनेषु दासी, भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री, षड्भिर्गुणैः स्त्रीकुलतारिणी स्यात्॥

नारी को पति के कार्यों में सलाह-मशवरा देना चाहिए। वाणी में दासी के समान मृदु-भाषिणी हो, पति को भोजन कराते समय माता के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान हो, शय्या पर पति के लिए रम्भा की तरह हो, धर्मानुकूल आचरण करने वाली हो, और क्षमाशील ऐसी हो जैसी पृथ्वी। ऐसी सन्नारी घर वालों का, कुल का उद्धार करने वाली होती है। 'माता' शब्द निर्माण-वाची धातु से बना है। माता निर्मात्री होती है और जन्म देने के कारण 'जननी' है। स्त्री ही तीर्थंकरों को, महापुरुषों को जन्म देने के कारण पूज्य है।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि, सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशु जालम्॥

सौ-सौ माताएं सौ-सौ पुत्रों को जन्म देती हैं, किन्तु क्या कोई माता तुम जैसा (वर्धमान महावीर) पुत्र अब तक जन्म दे पायी है? सत्य है नक्षत्रों को सारी दिशाएं धारण करती हैं लेकिन दैदीप्यमान किरणों से पूर्ण सूर्य की जननी तो पूर्व दिशा ही है। माता त्रिशला ने महावीर स्वामी को प्रसूत कर स्त्रियों में अपना नाम सर्वोपरि कर लिया। महावीर के समय नारी जाति को सामान्यतः उपभोग्या माना जाता था, उसका क्रय-विक्रय होता था, वह दासी बनाई जाती थी। नारी का स्वतंत्र होना बुरा समझा जाता था।

जिस समय महावीर का आविर्भाव हुआ, वह समय नारी-परतन्त्रता का समय था, उसके पतन का समय था। उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व न था। वह पुरुष के पराधीन थी—"अस्वतंत्र स्त्री, पुरुष-प्रधाना"। वह वेश्या, शूद्रा समझी जाती थी। महावीर ने नारी की खोई प्रतिष्ठा को बहाल किया। उसे समाज में एक गौरवान्वित स्थान दिलाया। उसकी प्रतिष्ठा को लौटाया और उसे धर्म की सहायिका बनाया—'धम्म सहाया।' उन्होंने नारी को धर्म सभा, धार्मिक पर्व, समवसरण में सब जगह जाने की अनुमति दी। वह भी अपनी शंका का समाधान कर सकती थी, वह भी अपनी तार्किक शक्ति का उपयोग कर सकती थी। इस प्रकार उन्होंने नारी वर्ग का पुनरुत्थान किया और उसको घर और बाहर पूर्ण मान-सम्मान दिलाया। उन्होंने पति-पत्नी के लिए भी ब्रह्मचर्य का एक विशिष्ट विधान रखा, पति-पत्नी को पृथक् शय्या के साथ, पृथक् कमरे में सोना चाहिए। इस युग में महात्मा गांधी ने (अपने आयु के मध्य चरण में) इसी प्रकार के ब्रह्मचर्य का अनुपालन किया था।

महावीर ने नारी को दीक्षा देकर उसके अभ्युदय के लिए नूतन क्षितिजों को उद्घाटित किया। यह कदम बड़ा ही क्रान्तिकारी था, वह लोकनायक थे, जिधर उनके पग पड़ते उधर ही हजारों लोग चल पड़ते थे। उन्होंने सर्वप्रथम चंदनबाला को दीक्षित किया। साध्वी संघ का नेतृत्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंदनबाला के हाथ में सौंपा। उस समय ३६००० साध्वियां थीं और एक लाख नव्वे हजार श्रावक थे, तीन लाख अट्ठारह हजार श्राविकाएं थीं। उनके संघ में चौदह हजार साधु थे, जिनका नेतृत्व इन्द्रभूति गौतम करते थे।

महावीर ने नारी-जागृति को नया मोड़ दिया। उस समय क्षत्रिय कन्या, राज कन्या, ब्राह्मण कन्या सभी संघ में शामिल हो गईं। उनके युग की महान् धर्मनिष्ठ नारियों में मृगावती, चेलना, भद्रा, नन्दा, रेवती, पुष्पा, अग्निमित्रा आदि उल्लेखनीय हैं। यदि हम आदिनाथ ऋषभदेव के समय से दृष्टि डालें तो मालूम पड़ेगा उनके समय भी चतुर्विध संघ था। नारियां दीक्षा ग्रहण करती थीं। ब्राह्मी और सुन्दरी तीन लाख साध्वियों का नेतृत्व करती थीं। तीर्थंकर मल्लिनाथ के समय बन्धुमती ने ५५ हजार साध्वियों का नेतृत्व सम्भाल रखा था। तीर्थंकर अरिष्टनेमि के समय में दक्षिणी ने ४८ हजार साध्वियों को अपने संघ में शामिल किया था और २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय में पुष्पचूला ३८ हजार साध्वियों का नेतृत्व सम्भाले थी। आज हम महावीर के नारी-जागरण के चेतना के फूलों को महकता हुआ देख सकते हैं।

महावीर ने स्त्री-पुरुष को दैहिक सम्बन्ध से ऊपर उठाकर, सांसारिक अभिलाषाओं तथा काम-वासना से ऊपर करके धार्मिक स्तर पर जीने की प्रेरणा दी। उन्होंने उस पुरुष को 'सत्पुरुष' का अभिधान दिया जो गृहस्थाश्रम में पत्नी का मान-सम्मान करता है और शीलवती पत्नी की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखता है। महावीर के समय विधवा नारी की स्थिति बड़ी दयनीय थी, उन्होंने उनके प्रति भी पूर्ण संवेदना व्यक्त की। अब वह पहले की भांति सिर नहीं मुड़ाती थी। महावीर के समय में सती प्रथा प्रचलित थी। यह बहुत प्राचीन प्रथा थी। बाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख मिलता है। आज भी इसकी घटनाएं इधर-उधर देखने को मिलती हैं। १९८८ में देवराला ग्राम (राजस्थान) में घटी सती की घटना ने सारे देश की चेतना को हिला दिया और फिर केन्द्रीय सरकार को सती प्रथा विरुद्ध कानून पास करना पड़ा। महावीर के सद्वचनों के प्रभाव से यह कुप्रथा हजारों साल पूर्व समाप्त कर दी गई थी। महावीर के धर्म-उपदेशों से नारी की दासता का अन्त हुआ, उसे समाज में मान प्रतिष्ठा मिली। सती प्रथा बन्द हो गई। नारी विधवा रूप में समाज द्वारा सम्मानित हुई, उसे पति की संपत्ति का अधिकार मिला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर की चेतना-ज्योति

भारतवर्ष काफी समय तक अंग्रेजों के शासन में रहा। उन्होंने 'डिवाइड एण्ड रूल' की पालिसी पर अमल करते हुए, हिन्दू-मुसलमानों की साम्प्रदायिक भावना को भड़काते हुए काफी दंगे-फसाद, खून-खराबा कराया। परन्तु आज हम आजाद हैं, देश आजाद है, हमारी अपनी सरकार है, हमारा अपना शासन है फिर आये दिन साम्प्रदायिक दंगे क्यों होते हैं ? क्यों रक्तपात होता है ? क्यों एक वर्ग या सम्प्रदाय के लोग एक दूसरे वर्ग या सम्प्रदाय के लोगों के साथ अमानुषिक व्यवहार करते हैं, एकदूसरे का नरसंहार करते हैं ? हमारे देश में कभी मुरादाबाद, कभी अलीगढ़, कभी मेरठ, कभी कहीं और कभी कहीं हिन्दू-मुस्लिम दंगे भड़क उठते हैं। अब भी क्या अंग्रेज लड़ाने आते हैं ? हरिजनों के घरों में आग हम भारतवासी ही तो लगाते हैं ? सिख सम्प्रदाय या अन्य कोई सम्प्रदाय जब आपस में लड़ते हैं तो हम खुद कमजोर होते हैं। साम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए सरकार ने 'राष्ट्रीय एकता समिति' का गठन किया था, वैसे भी इस समिति को कई बार नया रूप दिया मगर जब दंगे होते हैं तो इस समिति का नाम कम ही सुनने में आता है। सरकार समितियों द्वारा, शक्ति प्रयोग के द्वारा दंगों पर काबू पाने की कोशिश करती है मगर जब तक जनता में, जनसाधारण में नई चेतना-ज्योति नहीं जलाई जायेगी तो साम्प्रदायिक दंगों का, आर्थिक पिछड़ेपन का, वर्ग-संघर्ष का, धार्मिक-साम्प्रदायिक मतभेदों का बढ़ता अन्धकार दूर नहीं किया जा सकता। इस बढ़ते अन्धकार को दूर करने के लिये उस अकंप लौ को साथ लेकर आगे बढ़ना होगा जो ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने प्रज्वलित की थी, जन-मानस को आलोकित किया था।

भगवान महावीर जैन धर्म के अन्तिम और २४ वें तीर्थङ्कर माने जाते हैं। 'तीर्थङ्कर' का शाब्दिक अर्थ है 'मोक्षमार्ग का प्रवर्तक युग पुरुष'। 'तीर्थङ्कर' एक व्यंजनात्मक शब्द है, यह आत्मविकास का, व्यक्तित्व के विकास का चरम शिखर है, आत्माकाश में उड़ान भरना, आत्मान्वेषण करना 'तीर्थङ्कर' है। "रत्नत्रय—सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से परिसम्पन्न जीव ही उत्तमतीर्थ है क्योंकि वह रत्नत्रयी रूपी नौका द्वारा संसार सागर से पार करता है।" (समण सुत्तम ५१४) तीर्थङ्कर सर्वहित के संकल्प को लेकर साधना मार्ग पर चलता है, आध्यात्मिक विकास की चरमसीमा पर पहुंचकर लोकहित में सरत हो जाता है। वह आत्म विकास या आध्यात्मिक विकास को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकहित में लगाने के लिए क्रियारत रहता है, साधनारत रहता है। सर्वहित, सर्वोदय और सर्वलोक का कल्याण ही तीर्थङ्कर के जीवन का लक्ष्य होता है (योग बिन्दु २८५-२८८)। महावीर का जीवन आत्महित या लोकहित तक सीमित नहीं रहा, उन्होंने लोकहित व लोककल्याण का अमृत सबको बिना किसी पक्षपात के वितरित किया। आज किसी भी सम्प्रदाय या धर्म का अनुयायी हो वह भी महावीर की जीवन-ज्योति से प्रकाश ग्रहण करता है। वह केवल जैन लोगों के युगपुरुष नहीं, उनका ही एकमात्र इजारा उन पर नहीं है। महानात्मा युगपुरुष किसी जाति की बपौती नहीं होते। वह सकल मानवता की सांझी पूंजी होते हैं, अक्षयपूंजी। इन्हीं महानात्माओं के बल से समाज में धर्म की प्रतिष्ठा बनी रहती है, मस्जिद व मन्दिर आबाद रहते हैं, समाज में शान्ति की व्यवस्था बनी रहती है, लोगों में परस्पर सहयोग, भाईचारा, सहानुभूति प्रेम, दया, करुणा बढ़ती है, जीवन के शाश्वत मूल्यों की वर्षा होती रहती है और हमारे सम्यक् आचरण से शून्य सम्यक् ज्ञान और दर्शन से सूखे हृदय पुनः लहलहा उठते हैं।

जैनदर्शन का गंतव्य है 'व्यक्तिगत जीवन में निवृत्ति और सामाजिक जीवन में प्रवृत्ति। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर लोकसेवा और जनसेवा की ओर बढ़ना जैनधर्म का गंतव्य है। हमें भोगविलास को मर्यादाहीनता तक न भोगकर, उसे तिलांजलि देकर अपनी आंकाक्षाओं से ऊपर उठकर समाज कल्याण की ओर प्रवृत्त होना चाहिये। महावीर चाहते तो भोगविलास में रातदिन आकंठ डूबे रह सकते थे, मनचाहा सुख वैभव अर्जित कर सकते थे, मगर इन सबको उन्होंने ठुकरा दिया अपने स्वार्थ के लिए नहीं, लोकहित के लिए, लोककल्याण के लिए। व्यक्तिगत सुधार के बिना सामाजिकसुधार की दुहाई देना ऐसा है कि आप अपने मुख की कालिमा न पोछें और दूसरे की कालिमा की निंदा करें। पहले हमें अपने को टटोलना चाहिये, अपने को खंगालना चाहिये, अपने को धोना चाहिये, अर्थात् आत्मशोधन करना चाहिये, आत्मविकास करना चाहिये जो सम्यक् आचरण, ज्ञान और दर्शन से ही संभव है। आत्मशोधन करने के उपरान्त परशोधन में लग जाना चाहिये। यहां हमारे सामने जाति विशेष या व्यक्ति विशेष की बात नहीं रहती, जन-साधारण की बात रहती है। यही महावीर का आत्मोदय से लोकोदय की ओर जाना है। हम इसके अनुकूल आचरण नहीं कर पा रहे हैं। हम आत्मोदय को ही देखते हैं, लोकोदय तक हमारी तंग नजर नहीं जाती। जैनदर्शन लोकसाधना को लेकर आगे बढ़ता है, महाव्रतों के प्रतिपादन से भगवान महावीर ने लोकहित की भावना को ही महत्त्व प्रदान किया है। अहिंसा के विवेचन में कहा गया है कि साधना के प्रथम स्थान पर स्थित अहिंसा सभी प्राणियों का कल्याण करे। यह भगवती अहिंसा भूखे को भोजन खिलाने में है, प्यासे को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पानी पिलाने में है, नंगे को कपड़ा देने में है, बीमार को औषधि देने में है। यहां परकल्याण की वाटिका चारों ओर पुष्पित दिखाई देती है, अपने लिए कुछ नहीं है। अहिंसा से चलकर सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की पांच मंजिलें तय करने के बाद हम हर प्रकार से लोकहित कर सकते हैं। ये मंजिलें ही समाज व लोककल्याण के लिये महावीर ने निर्दिष्ट की हैं। आज का सारा समाज स्वार्थ के ज्वालामुखी पर खड़ा है, सारा विश्व वैचारिक असहिष्णुता और विषमता के कगार पर खड़ा है। उसको विनाश से बचाने के लिए महावीर की अनेकान्त और अपरिग्रह की ज्योति काफी है। जैसे अमावस्या के सघन तिमिर को नष्ट करने के लिए दीपमालाएं जगमगा उठती हैं उसी प्रकार आज विश्व को हिंसा, संघर्ष, विषमता से बचाने के लिए महावीर की ज्ञान-ज्योति—'अनेकान्तवाद', 'अपरिग्रहवाद', के रूप में फैली हुई है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि उधर हमारी दृष्टि नहीं जाती; क्योंकि वह स्वार्थ-बद्ध है, संकीर्ण है, धुन्धली है, ममत्व व रोग में फंसी हुई है। हमें रोग व ममत्व से ऊपर उठना पड़ेगा।

युवाचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं—"परिवार के प्रति ममत्व का सघन रूप जैसे जाति या राष्ट्र के प्रति बरती जाने वाली अनैतिकता का नियमन नहीं करता, वैसे ही जाति या राष्ट्र के प्रति ममत्व अन्तर्राष्ट्रीय अनैतिकता का नियामक नहीं होता। मुझे लगता है कि राष्ट्रीय अनैतिकता की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय अनैतिकता कहीं अधिक है। जिन राष्ट्रों में व्यावहारिक सच्चाई है, प्रामाणिकता है, वे भी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सत्यनिष्ठ एवं प्रामाणिक नहीं हैं।" (नैतिकता का गुरुत्वाकर्षण, पूर्व कथित) सच्चा नैतिक जीवन राग, ममत्व से ऊपर है, यही वीतराग अवस्था है। महावीर कहते हैं "परिग्रह मूर्च्छा है", यह मूर्च्छा ही ममत्व है—"मूर्छा परिग्रह" (तत्वार्थ सूत्र, ७,१७)। आज जितना भी संघर्षाकुल वातावरण है उसके पीछे परिग्रह है, अधिकाधिक संग्रह की प्रवृत्ति है। धनार्जन करना बुरा नहीं परन्तु लोकहितार्थ हो, देशहितार्थ हो, 'स्वहितार्थ' तक सीमित न रहे। श्री श्रेयांसप्रसादजी को 'समाज रत्न" की उपाधि से पश्चिमी चैम्बर ऑफ कामर्स ने जो विभूषित किया उसके पीछे सर्वाहित की, लोककल्याण की, देशकल्याण की भावना सन्निहित है, ठीक वैसे ही जैसे "भारत रत्न" के पीछे भारत की, देश की अधिकतम सेवा की भावना छिपी है। गरीबी कोई ऐसी समस्या नहीं जिसका हल न हो। हल तो हमारे पास है वह है महावीर का अपरिग्रह। अपरिग्रहवाद सबके हित को लेकर चलता है इसमें आर्थिक या। धन का पहलू तो है ही यह अन्य दूसरी तरह के परिग्रहों को—मत या धर्म का परिग्रह, धर्मग्रंथ या मन्दिरों का परिग्रह, सभी को समेटकर चलने वाला है। महावीर कहते हैं कि पक्षपात या वैर किसी से मत करो, सबकी आत्मा समान है, सबको आत्मविकास का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान अधिकार है। "असंविभागी णहु तस्स मोक्खो" यह उनका उद्घोष है। हर प्रकार की विषमता का निराकरण महावीर की अपरिग्रह-चेतना में शामिल है।

भगवान महावीर ने भिक्षुओं से कहा—"तुम परिव्रजन करो तथा अभिजात और निम्नवर्ग को एक ही धर्म की शिक्षा दो। जो धर्म अभिजात वर्ग के लिये है वही निम्न वर्ग के लिये है और जो निम्न वर्ग के लिए वही अभिजात वर्ग के लिए है। अभिजात और निम्न—दोनों के लिए मैंने एक धर्म का प्रतिपादन किया है।" यही तो सामाजिक तथा साम्प्रदायिक एकता है। यहां न कोई अमीर है, न कोई गरीब, न कोई छोटा है न कोई बड़ा। महावीर जन-जन को उद्बुद्ध करते हैं, बस्ती-बस्ती, गांव-गांव जाते हैं और सभी को समान रूप से अपने 'समवसरण' में अमृत वचनों से अभिसिक्त करते हैं। वह चंदना का आहार करते हैं, बन्दी चंदना का, साधारण आहार—'उबले हुए उड़द' का आहार। यही उनकी एकता का, समता का आदर्श है। उन्होंने कहा—

न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बम्भणो।
न मुणी रण्ण वासेणं, कुसचीरेण न तावसो॥
समयाए समणो होई, बम्भचेरेण बम्भणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेणं होइ तावसो॥

अर्थात् सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता। ओम् का जप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। अरण्यवास करने से कोई मुनि नहीं होता। वल्कर चीवर पहनने से कोई तापस नहीं होता।

'अथर्वेद' में ऋषि सृष्टा की वाणी में कहलाता है—सहृदयं सांमनस्यमविद्वेष कणोमिवः अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जाम्ल मिवाघ्न्या।

अर्थात् मैं तुम सबको एक हृदय वाला और एक मन वाला और आपस में द्वेष न रखने वाला सिरजता हूं। तुम एक दूसरे से मिलने के लिए प्रेम से खिचकर चले आओ, जैसे अपने बछड़े की तरफ गाय दौड़ी हुई आती है। और सृष्टा के मुख से यहां तक कहलाया गया है—"समानी प्रपा सह वोन्नभागः, समानेयोक्त्रे सहवो युनिज्म।" तुम्हारा पानी पीने का स्थान एक हो, तुम्हारा सबका परस्पर में एक साथ भोजन हो, तुमको मैं एक ही बन्धन में बांध रहा हूं। ईश्वर ने मानव जाति को जिस बन्धन में बांधने की बात कही है वह एकता का बन्धन है, ममता का बन्धन है, प्रेम का बन्धन है, भाई-चारे का बन्धन है, सहिष्णुता का बन्धन है, अहिंसा का बन्धन है, अपरिग्रह और अनेकान्तवाद का बन्धन है।

महावीर अहिंसा की गहराई में अन्त तक उतर गये थे। उन्होंने आत्मौपम्य दृष्टि प्राप्त कर सर्वत्र देखा। उन्होंने ५५७ ई० पू० "कैवल्य"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त किया, वह सर्वत्र हो गये, सर्वदर्शी हो गये। उनके सामने सब प्राणी समान थे, वे समदर्शी थे, वह मानव से जीव-जगत् में प्रविष्ट हुए, उनकी अहिंसा मानव तक सीमित नहीं थी, उसकी सव्यापकता जीवों तक थी—कीट-पतंगों, कीड़े-मकोड़ों तक थी। अहिंसा का यह कैसा अदभुत रूप है, संसार में अनोखा। महावीर को ई० पू० ५५७ में निर्वाण-प्राप्ति हुई। उन्होंने जिस मैत्री की, अहिंसा की लौ जगाई, वह आज भी अकंप है, और शाश्वत ज्योति विकीर्ण करती रहेगी। आज हमें उनकी इसी अहिंसा और मैत्री की, अनेकांत-वाद में समाहित साम्प्रदायिक तथा वैचारिक सहिष्णुता की आवश्यकता है। उन्होंने ठीक कहा है—"श्रमण होने का अर्थ है शान्ति। श्रमण होने का अर्थ है मैत्री। तुम अपनी मैत्री को जगाओ। जो मैत्री जगाता है वह श्रमण होता है, जो मैत्री को नहीं जगाता वह श्रमण नहीं होता।" हमें उनकी इसी मैत्री की चेतना को जन-मानस में जगाना है तो देश का, मानव जाति का कल्याण सम्भव है, यही संघर्ष व विषमता की दुनिया छोड़कर अहिंसा व मैत्री की दुनिया में जाना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्मवादी संत की सामाजिक चेतना

आचार्यश्री तुलसी एक अध्यात्मवादी संत हैं। वे तेरापंथ के प्रवर्तक हैं। उन्होंने अपने संघ को नई दिशा दी, नई चेतना प्रदान की, नूतन प्रेरणा का संचार किया, एक नई शक्ति का संबल दिया, एक नये अनुशासन-मर्यादा की आभा प्रदान की। लेकिन उनकी दृष्टि में समाज भी रहता है, देश भी रहता है, विश्व को भी वे देखते हैं। मानवतावादी आचार्यश्री तुलसी अपने को पहले मानव मानते हैं, बाद में कुछ और। उन्होंने स्वयं कहा है—"मैं सबसे पहले मनुष्य हूं, फिर धार्मिक हूं, फिर जैन हूं, और फिर तेरापंथ का आचार्य हूं।"

यहां आचार्यश्री के विचार ध्यान देने योग्य हैं। मनुष्य सर्वप्रथम मनुष्य है; उनका रहन-सहन, व्यवहार, विचार-दर्शन, कर्मक्षेत्र सब मनुष्य की परिधि में होता है। हम ही उसे बाद में नाना नाम-गुण देकर कुछ-से-कुछ बनाते हैं, संवारने की कला हमारे हाथ में है। संतों का धर्म मानवता का धर्म होता है, मानवता के हितार्थ वे सब कुछ करते हैं, अपने निजी लाभ-हानि की उन्हें रत्ती भर प्रवाह नहीं होती। वे प्रभु का प्रसाद भी स्वयं नहीं खाते, वह भी बांट कर खाते हैं। सबके सुख-दुःख का अनुभव जैसा संत करते हैं वैसा कोई नहीं करता। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने एक स्थान पर लिखा है—

यह संसार है उस प्रभु का परिवार, सबसे रखना चाहिए, प्रेमपूर्ण व्यवहार। यही ईश्वरोपासना, यही धर्म का मर्म, एक दूसरे के लिए करें यहां हम कर्म। मनुष्य मात्र के अर्थ जो करते हैं उद्योग, सच्चे जन भगवान के हैं बस वे ही लोग।

आचार्यश्री तुलसी "भगवान के सच्चे जन" हैं। वह सभी से प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं। उन्होंने जो हजारों मील की पैदल यात्राएं कीं, डगर-डगर, गांव-गांव, नगर-नगर धूप में, बरसात में, जाड़े में फिरते रहे उसका उद्देश्य मानवता का उद्धार था, लोगों को समता, एकता, सहनशीलता, प्रेम, सद्भाव का सन्देश दिया। समाज में फैले भ्रष्टाचार और अश्लीलता को देखकर उन्होंने लोगों को सन्मार्ग दर्शाया। सितम्बर १९६६ में बीदासर में आचार्य तुलसी के सान्निध्य में अश्लीलता विरोधी सम्मेलन हुआ जिसमें काका कालेलकर, जैनेन्द्र कुमार ने भाग लिया। उस समय आचार्यश्री तुलसी ने जनसभा को सम्बोधित करते हुए कहा था—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"धीर वे हैं जो प्रलोभन के रहते हुए भी लोलुप नहीं बनते, इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि जनमानस में विवेक जागृत किया जाए, ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाए कि चलते-चलते हम गिर न जाएं। हमारे ऋषि-मुनियों ने कहा था कि सम्पूर्ण परिग्रह के लिए निर्ग्रन्थ रहना चाहिए, किन्तु निर्ग्रन्थ होकर एकान्त में रहना चाहिए। समाज में रहने वाले साधुओं को समाज की लज्जा का निर्वाह करने के लिए वस्त्र धारण करना चाहिए। दर्द का अनुमान करने से काम नहीं चलेगा, दर्द को मिटाना होगा। यह तो ठीक है कि इस कार्य में अधिक सहायता नहीं मिल सकेगी किन्तु सरकार इतना तो कर ही सकती है कि अश्लीलता को प्रोत्साहन न दे।"

आज हमारे समाज में अश्लीलता की दुर्गन्ध चारों ओर फैली है। हमारा युवा, किशोर समुदाय तरह-तरह की रंगीन पत्रिकाओं, फिल्मों में कामुक और अश्लील चित्र देखते हैं। क्या पत्रिकाओं के मुख पृष्ठ पर नारी के कामुक चित्र देना उचित है? इससे हम कौनसा कर्तव्य पूरा कर रहे हैं समाज के प्रति? टी. वी. पर "वाशिंग पाउडर" का एक विज्ञापन बहुत कामुक है जिसमें नृत्य करती सुन्दरी को एक पुरुष बार-बार भुजाओं में कसता है। इस ओर समाज का ध्यान जाना चाहिए, नेताओं का ध्यान जाना चाहिए। वातावरण बाहर से साफ-निर्मल रखना जरूरी है।

हमारे समाज में द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, हिंसा क्या नहीं! ये भी अश्लीलता की कोटि में आते हैं। हम अपनों की सेवा करते हैं, अपनी जाति के लोगों की सहायता करते हैं। आचार्य तुलसी का कहना है कि सेवा और मैत्री में आत्मौपम्य दृष्टि का समावेश होना चाहिए। लेकिन वे उस सेवा को अच्छा नहीं समझते जो सेवा के नाम पर दूसरों को अकर्मण्य या पौरुष-हीन बनाए—"जो लोग सेवा के नाम पर समाज के लोगों को अकर्मण्य, पुरुषार्थहीन और आलसी बनाते हैं, उनमें हीनता और निराशा का संक्रमण करते हैं।" आचार्यवर का कहना है कि अहिंसा का मूल सिद्धांत हृदय-परिवर्तन है। आज का वातावरण हिंसात्मक है। चारों ओर भय और असुरक्षा का अनुभव करता है मनुष्य। फिर इस भय, असुरक्षा, हिंसा से कैसे छुटकारा पाया जाए। आचार्य तुलसी ने अहिंसा के तीन बिन्दु माने हैं—(१) अभय (२) सद्भावना (३) सहिष्णुता। इसी प्रकार अहिंसा के तीन आधार निश्चित किये हैं—(१) सह अस्तित्व (२) समन्वय (३) स्वतन्त्रता।

वस्तुतः हमारे अन्दर कमी है सद्भाव या सहिष्णुता की। यदि हम मैत्री भाव से सब के भावों—विचारों को समझें और फिर समन्वयात्मक बुद्धि से, संतुलित मन से उन पर विचार करें तो कोई कारण नहीं कि हिंसा पर विजय प्राप्त न कर सकें। स्वतंत्रता सबको प्रिय है, लेकिन उसकी भी मर्यादा होनी चाहिए; एक सीमा तक ही स्वतंत्रता ग्राह्य है, मान्य है। तट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बन्धन तोड़ने पर तो नदी भी प्रलय मचाती है, विनाश-लीला दिखाती है। इसलिए सह-अस्तित्व मैत्री की और समन्वय की आवश्यकता है। आचार्य श्री तुलसी समन्वय तथा सद्भावना बनाने में सक्रिय है। वे समाज को एक नया मोड़ देने में प्रयत्नशील हैं।

उन्होंने देश को, समाज को एक जीवन-पद्धति दी—"अणुव्रत-आंदोलन" के रूप में जो १९४८ से चल रहा है। अणुव्रत के स्वरूप को यों व्याख्यायित किया—"अणुव्रती बनने का अर्थ है—अच्छा मनुष्य बनना। अणुव्रती बनने का अर्थ है प्रायोगिक जीवन जीना। जो व्यक्ति अणुव्रत का निष्ठा से पालन करता है वह अपने परिवार, पड़ोस और समाज को भी प्रभावित कर सकता है।" हमारे यहां धर्म की आभा घट रही है, सम्प्रदाय की आभा बढ़ रही है। अणुव्रत द्वारा सम्प्रदाय गौण होगा, धर्म प्रधान बनेगा। धर्म आज नैतिकता से विहीन होता जा रहा है, इसलिए उसकी ऊर्जा में कमी आ रही है। आचार्यश्री ने धर्म को नैतिकता से जोड़ा है, सम्प्रदाय के पृथक् किया है। धर्म को उन्होंने चरित्र से जोड़ा है, उसे जाति-वाद से पृथक् किया है। तभी तो अहमद बख्श सिंधो (भूतपूर्व विधिमन्त्री, राज०) ने कहा था—"आपका कार्यक्रम जाति, वर्ग और सम्प्रदाय की भावनाओं से ऊपर उठकर किए जा रहे हैं। समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने के लिए आपने बहुत श्रम किया है।" १९८३ में बालोतरा में चातुर्मास सम्पन्न होने पर आचार्यश्री वहां से प्रस्थान करने वाले थे तो मुसलमानों ने उन्हें अपने मदरसे में सादर आमंत्रित किया। वहां के मौलाना अनीसुर्रहमान ने उनके विषय में कहा था—"आचार्य जी की तालीम इन्सान को इन्सानियत तक पहुंचाने वाली है।" बात बिल्कुल सच्ची है। आचार्यश्री तुलसी इन्सानियत का पैगाम देने वाले सन्त हैं। हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, सिख, जाट, हरिजन सामने देखकर बात नहीं करते। वे बात करते हैं सबको इन्सान समझकर। इन्सानियत की दृष्टि से देखते हैं सबको और चाहते हैं यह दृष्टि सब लोग प्राप्त करें। सब में मानवता का भाव जाग उठे। सन्तात्मा के सामने सब समान होते हैं और सन्त सबके होते हैं। उन पर किसी एक जाति या सम्प्रदाय का इजारा नहीं होता। वे तो रोशनी का मीनार होते हैं। आचार्यश्री तुलसी रोशनी के मीनार हैं; ज्ञान की रोशनी के मीनार, एकता-समानता की भावना के मीनार, इन्सानियत के मीनार, त्याग-तप के मीनार, अहिंसा के मीनार, चरित्र के मीनार, सम्यक् दृष्टि के मीनार। उससे हम वह रोशनी प्राप्त कर सकते हैं जिससे मानवता का रास्ता आलोकित हो उठेगा। आचार्यश्री एक सम्प्रदाय की सीमा में बन्धकर नहीं चलते। सीमा तो उनके सामने है अनुशासन की। वे सम्प्रदाय के लिए पदयात्राएं नहीं करते; मानवता के प्रसार के लिए पदयात्राएं करते हैं, देश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और समाज को नैतिकतापूर्ण जीवन जीने की कला सिखाने के लिए पदयात्रा करते हैं और जाहिर है इन यात्राओं के बीच वे राष्ट्र की समस्याओं को भी देखते-समझते हैं और उनका समीचीन समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। एक बार व्यापारी वर्ग से उन्होंने कहा—"आपकी कथनी और करनी में जो दूरी है वह मिटनी चाहिए।" नैतिकता और चरित्र मे विश्वास रखना है तो उसकी पहल खुद से करें। पहले अपने दोष दूर करें तब दूसरों के भी कर सकते हैं। आचार्यश्री ऐसा भारत देखना चाहते हैं जहां गरीबी-अमीरी का भेदभाव न हो, धार्मिक दंगे न हों, कोई अस्पृश्य न हो, शोषण न हो, मिलावट का धंधा न हो, दहेज की कुरीति न हो, मादक पदार्थ का सेवन न हो। क्या हम ऐसा भारत नहीं बनाना चाहेंगे ? क्या यह राम-राज्य नहीं होगा !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक ज्योतिर्मय युगद्रष्टा

धवलकेश, गौर वर्ण, सत्य तेज से प्रदीप्त विशाल नेत्र, भव्य प्रशस्त मस्तक, प्रसन्न स्मितवदन, आत्मीयता के सागर, समभाव के साधक, सहजता की मूर्ति, युग के तत्ववेत्ता, मानवता के मसीहा, राष्ट्रीय चेतना के प्रहरी, अणुव्रत के प्रवर्तक, मृदुभाषी, अनुशासन में डूबा व्यक्तित्व, अध्यात्मज्योति—यह है प्रथम-दर्शन में आचार्यश्री तुलसी का आकर्षक, भव्य व्यक्तित्व। बात दिसम्बर, ८७ के प्रथम सप्ताह की है। भिलाई में जैन-परिषद के एक अधिवेशन से लौट कर आ रहा था। दिल्ली रुका आचार्यश्री तुलसी के दर्शन करने। २१० दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली पर स्थित "अणुव्रत भवन", वहां विशाल बिल्डिंग बनी है। आधुनिक टेक्नोलोजी द्वारा लिफ्ट है। सभी प्रकार की सुविधाएं हैं। मैंने उन्हें कोई पूर्व सूचना नहीं दी थी। पहले कभी उनके दर्शन भी नहीं किए थे। दर्शन लाभ प्राप्त करने की इच्छा बहुत दिनों से हृदय में संजोए था। उन्होंने देश की ज्वलन्त समस्या—पंजाब की समस्या को सुलझाने में सन्त लोंगोवाल से बातचीत की और उन्हें सरकार से बातचीत करने को तैयार किया। इससे ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री तुलसी राष्ट्रीय चेतना के एक महान प्रहरी हैं, जो सदा सजग-सचेत रहते हैं। दूसरी बात उनके व्यक्तित्व की यह है कि वे जैन धर्म के एक प्रमुख आचार्य हैं परन्तु वे जैन सम्प्रदाय की तंग विचारधारा को पसन्द नहीं करते। उनका हृदय विशाल है, उदार है, दृष्टिकोण प्रगतिशील है। वे धर्म-सम्प्रदाय की जीर्ण रूढ़ियों में बंधे रहने वाले नहीं हैं। ऐसी रूढ़ियों को विच्छिन्न करने वाले हैं। वे पहले अपने आपको मनुष्य मानते हैं, फिर जैन धर्म के आचार्य हैं।

मैंने एक व्यक्ति—साधु जी से निवेदन किया—"मैं आचार्यजी से मिलना चाहता हूं। मेरा नाम निजामुद्दीन है, मैं श्रीनगर से—कश्मीर से आया हूं।" थोड़ी ही देर में वे साधुजी लौटकर आए तथा मुझे अपने साथ यह कह कर ले चले कि आचार्य जी याद कर रहे हैं। मैं एक विशाल कक्ष में पहुंचा और अकस्मात् आचार्यजी पर मेरी नजर पड़ी। मैंने उन्हें सश्रद्धा अभिवादन किया, उन्होंने बड़ी स्नेहसिक्त दृष्टि से उसे स्वीकार किया। कुछ क्षण मैं उन्हें देखकर विस्मयीभूत हो गया—यही वह विराट व्यक्तित्व है जिसने भारत का चप्पा-चप्पा पैदल नाप कर जनमानस को धर्म भावना से आंदोलित किया है। यही वह अणुव्रत अनुशास्ता है जो धर्म को नैतिकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का सरचश्मा मानते हैं। नैतिकताविहीन धर्म को वह ग्राह्य नहीं मानते। यही उस क्रांति के सूत्रधार हैं जिसने हरिजनों को भी व्रत दीक्षा देने का संकल्प लिया। लोगों ने उनके इस निर्णय का विरोध भी किया, लेकिन उन्होंने स्पष्ट कहा कि यदि कोई हरिजन व्रत दीक्षा लेने को तैयार है, योग्य है, तो वे उसे व्रत दीक्षा देने को तैयार हैं। यही नहीं बल्कि यह भी कह डाला कि यदि उनके यहां (हरिजनों) शुद्ध भोजन मिलेगा तो वे उसे ग्रहण करेंगे। कितना आधुनिक और प्रगतिशील दृष्टिकोण है। यहां उन्हें हम गांधीजी की विचारधारा का संवाहक कह सकते हैं। आचार्यजी ने पहले मेरी कुशलता पूछी, इसके बाद उन्होंने परमविदुषी साध्वी कनकप्रभाजी से मेरा परिचय कराया। वह आचार्यश्री से उस समय डिक्टेशन या नोट्स आदि ले रही थी। यह वह सरस्वती की वरदपुत्री है जिन्होंने अपनी कुशल लेखनी से आचार्यश्री के यात्रा साहित्य का अत्यन्त सजीव, मोहक, चित्ताकर्षक शैली में चित्रण किया है। एक-एक प्रसंग, एक-एक चित्र भावुकता के रंग में डूबा है। कहीं-कहीं दार्शनिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ किसी स्थान आदि का वर्णन अपने में अनूठा है, ज्ञानवर्धक है। उनके द्वारा सम्पादित पुस्तकें—"जब महक उठी मरुधर की माटी", "बहता पानी निरमला" आदि को पढ़ते हुए पाठक को ऐसा भान होता है जैसे वह आचार्यश्री के साथ-साथ पद यात्रा कर रहा है। साध्वी कनकप्रभाजी की पकड़ भूगोल, इतिहास, दर्शन, लोक-संस्कृति पर गहरी है। साध्वीजी ने मुझे वह पुस्तक दिखाई जो आचार्यश्री की दक्षिण भारत की यात्रा पर आधारित है। जी में आया था कि उस पुस्तक को उनसे मांग लूं, मगर संकोच के कारण कह नहीं सका। आचार्यश्री ने अपने साधु-साध्वियों द्वारा हस्त-शिल्पकला की नयनाभिराम तथा रोजाना के इस्तेमाल की चीजें भी बनवाई हैं। इन्हें देख कर हरेक को विस्मय होगा।

आचार्यश्री के खाने-पीने के बर्तन यही हैं। उन्हें साफ भी सरलता से—कपड़े से किया जा सकता है। इन बर्तनों पर आगम की गाथाएं, सूत्र इस बारीकी से चित्रित हैं कि देखते ही बनता है। यह बर्तन बहुधा सूखे फलों को साफ करके बनाए गए हैं। मुझे उन बर्तनों को देख कर कश्मीर की "पेपरमाशी" का भ्रम हुआ। करोड़ों रुपये की पेपरमाशी की अतिसुन्दर नक्शीन वस्तुएं प्रति वर्ष निर्यात की जाती हैं और इनके द्वारा लाखों व्यक्तियों को रोजी-रोटी मिलती है। "सर्फरिंग मोसिस", "एशिया क्राफ्ट" आदि इस दिशा में लीडिंग व्यापारी हैं। विदेशी पर्यटक "बण्ड" पर स्थित इन दूकानों पर शोपिंग करते मिलेंगे। पेपरमाशी की कला कश्मीर के अति लोकप्रिय महान शासक जैनुल-आबिदीन (१४२०-१४७०) द्वारा ईरान मध्य एशिया से कारीगर बुलाकर यहां विकसित की गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यश्री ने "टुथस्टिक" दिखलाते हुए कहा कि वह राजस्थान की कीकर का कांटा है। इसे देखने पर फिर गांधीजी की याद आई जो लघु हस्तशिल्प कला को बढ़ावा देने के पक्षधर थे और छोटी से छोटी वस्तु को उपयोग में लाते थे। आचार्यश्री ने जब मुझे पास बुलाकर अपनी धवल चादर दिखलाई, जो उनके शरीर पर परिवेष्टित थी, तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह शुद्ध बारीक खादी और उसके दो पटों को हाथ से ऐसे कौशल से सिया गया था मानो वह मशीन की सिलाई हो। इसके पश्चात् उन्होंने मेरे अध्ययन-शोध के विषय में पूछताछ की। उन्होंने मुझसे इस बात की शिकायत की कि मैं अक्तूबर ८७ में आयोजित सेमिनार में शरीक न हो सका, जिसके लिए मैंने आचार्यश्री से समयाभाव के कारण क्षमायाचना की। आचार्यश्री ने मुझे निर्देश दिया कि आप २.३० बजे आकर आगम-चर्चा देखें। उनसे आज्ञा लेकर मैं युवाचार्यजी से मिलने गया। एक युवा मुनि मेरे साथ थे। युवाचार्य को मैंने चौकी पर विराजमान देखा और वे एक मुनि को नोट्स लिखा रहे थे। ज्ञान-तारल्य में डूबी आंखें, लम्बा छरहरा शरीर, खादी के श्वेत वस्त्र में परिवेष्टित, बीसवीं शताब्दी के जैन दर्शन के मूर्धन्य विद्वान, जैनागमों के कुशल, सिद्धहस्त सम्पादक, धर्म विज्ञान अध्यात्म की त्रिवेणी अपनी रचनाओं द्वारा प्रवाहित करने वाले, प्रेक्षाध्यान के प्रयोगधर्मी मनीषी तेरापंथ के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। तेरापंथ के गौरव आचार्यश्री तुलसी के वे गौरवान्वित उत्तराधिकारी हैं। इस मेधावी शिष्य पर, योग्य उत्तराधिकारी पर आचार्य जी कितना गर्व करते होंगे, कितना विश्वास करते होंगे, यह कोई उनके दिल से पूछे। एक सौ से अधिक मौलिक ग्रन्थों के रचयिता सचमुच "महाप्रज्ञ" हैं -- महान् प्रज्ञाशील हैं। उन पर साहित्य जगत् मान कर सकता है। उनकी रचनाधर्मिता को गहनता से परखने की, उसे विश्लेषित करने की आवश्यकता है। मैंने उनसे अपने शोध-विषय की चर्चा की, भारतीय धर्म दर्शन व ध्यान के विषय में जानना चाहा। उनके ज्ञानसागर में अभी अनेक अनछुए मोती छिपे हैं।

आचार्यश्री और युवाचार्य से मिलने के उपरान्त मैं श्री ललित गर्ग से मिला जो "अणुव्रत भवन" में कार्यालय सचिव के रूप में कार्य करते हैं। उनसे कुछ पुस्तकें भी देखने को मिलीं और वे मुझे बाद में प्राप्त भी हो गईं। कुछ अभी आनी शेष हैं। २.३० बजे मैं जैनागम विचार-विमर्श की बैठक में सम्मिलित हुआ। आचार्यश्री बड़ी सी चौकी पर विराजमान थे, युवाचार्य और अन्य साधु-साध्वियां अपने-अपने आसन पर, कलम-कागज सहित उपस्थित थे। युवाचार्य आगम के सम्पादन-कार्य में लीन हैं। दिशा निर्देशन मिल रहा है आचार्यश्री से। एक-एक शब्द पर चर्चा होती है, व्याख्या नोट की जाती है। शब्दार्थ पर, मूलोत्पत्ति पर विचार किया जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आवश्यकतानुसार शब्दकोष पर भी दृष्टि डाली जाती है। आगम चर्चा में सभी मुनियों को बोलने, अपनी बात कहने, अपनी जिज्ञासा व्यक्त करने, शंका समाधान करने की छूट है। युवाचार्य नोट्स लिखाते हैं। यह कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। आचार्यश्री लोगों से भी मिलते रहते हैं, उनकी कुशल पूछते हैं। शान्त वातावरण में लोग दूर-दूर से आकर उनके दर्शन करते हैं। बिना रोक टोक के कोई भी वहां आ सकता है। आचार्यश्री का स्नेह शुभाशीष सबके लिए समान है। समताभाव में लीन रहने वाला यह कर्मयोगी, वीतरागी सन्त भारत का गौरव है।

आचार्यश्री की महानता इस बात में भी छिपी है कि वह एक सम्प्रदाय के न होकर सभी सम्प्रदाय के लोगों के हैं। तेरापन्थ के आचार्य होकर भी वे देश के आचार्य हैं, सभी जातियों के लोग उनका मान-सम्मान करते हैं। तेरापन्थ के नवम आचार्य श्री तुलसी द्वारा चलाया जा रहा 'अणुव्रत आन्दोलन' सर्वथा असाम्प्रदायिक है। उसने धर्म को वेशातीत तथा सम्प्रदायातीत रूप प्रदान किया है। यह एक आचार संहिता है जो पूर्णतः सार्वकालिक है, सार्वदेशिक है। यह हृदयपरिवर्तन या वैचारिक परिवर्तन का सिद्धान्त प्रस्तुत करने वाला आन्दोलन है। आचार्य भिक्षु ने जिस तेरापंथ का प्रवर्तन किया था उसके मूलाधार थे

(१) निष्कर्म
(२) हृदय-परिवर्तन
(३) सापेक्षता

आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत आन्दोलन मूलाधारों को अपने में आत्मसात किए है। यह आन्दोलन चरित्र-विकास का आन्दोलन है, जीवन-मूल्य की पुनर्स्थापना का आन्दोलन है, फिर साम्प्रदायिक कैसे होगा? आचार्य श्री ने अपने मुनियों को हरिजन-बस्ती में व्याख्यान देने भेजा। हरिजनों ने आचार्यश्री का चरण स्पर्शन किया। वे अणुव्रत आंदोलन से प्रभावित हुए और मांस-मदिरा का त्याग कर बैठे। एक बार उन्होंने कहा—"जातिवाद की तात्त्विकता को स्वीकारना मनुष्य के लिए लज्जा की बात है।" हरिजनों के मनोबल को बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—"आप में जो स्वयं को हीन समझने की भावना घर कर गई है, यही आपके लिए अभिशाप है। जहां एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के लिए अस्पृश्य या घृणा का पात्र माना जाये, वहां मानवता का नाश है। अपनी आदतों को बदलें। मद्य-मांस आदि बुरी वृत्तियों को छोड़ दें। जीवन में सात्त्विकता लायें।" वस्तुतः अणुव्रत आंदोलन सात्त्विक आचरण के विकास का आंदोलन है, इसका सम्प्रदाय, धर्म, राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। आचार्यजी एक सम्प्रदाय के नायक हैं, लेकिन साम्प्रदायिकता से वे बहुत ऊपर हैं। वे सच्चे-पक्के अर्थों में लोकनायक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यश्री तुलसी आचार्यत्व की गरिमा से आपूर्ण हैं। "आचार्य" शब्द आचार से बना है। आचार शब्द की व्युत्पत्ति है—आङ्+चर्+घञ्। इसका अर्थ है चरित्र, शील, विचार, व्रत, व्यवहाराचरण। जो शास्त्र के अर्थों का चयन करता है, उन्हें आचार या आचरण में ढालता है, उसे "आचार्य" कहते हैं—

आचिनोति हि शास्त्रार्थान् आचरते स्थापयत्यपि। स्वयं आचरते यस्तु आचार्यः स उच्यते॥

"उत्तराध्ययन" (पन्द्रहवां अध्याय) में साधु/आचार्य की विशद चर्चा की गई। साधु, श्रमण या आचार्य क्षमाशील, सहिष्णु होता है। उसमें "मूर्च्छा" नहीं होती, वह रस, रूप, गंध आदि से विमुख रहता है। यह ठीक है कि जो शिक्षा देता है हम उसे आचार्य कहते हैं। आचार्य में क्या-क्या गुण हों, शास्त्रों में उसका अच्छा, विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। आचार्य में ३६ गुणों का समाहार स्वीकार किया गया है—

तप १२

अन्तरंग—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान।

बहिरंग—अनशन, ऊनोदरी, व्रतप्रत्याख्यान, रस परित्याग, विविक्त शैयासन, काय-क्लेश।

१० धर्म—क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य।

६ आवश्यक—समता, वन्दना, स्तवन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, स्वाध्याय।

५ आचार—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य।

३ गुप्तियां—मन, वचन, काय।

आचार्यश्री इन गुणों से सम्पन्न आचार्य हैं। आचार्य का सर्वप्रमुख कर्त्तव्य आचरण है। आचार को उच्च करना है, दोषमुक्त करना है। आचार से ही धर्म निकलता है—"आचार प्रभवो धर्मः" आचार्यश्री का धर्म आचार भूत है। संघ को अनुशासित कर सबको साथ लेकर चलते हैं। आचार्य कुंदकुंद (प्रवचनसार में) ने आचार गुप्तियों को प्रधानता देकर आचार्य के लिए कुलीन (गुणवान), संस्कारशील, सुशील होना आवश्यक माना है, साथ ही उसे सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व वाला भी होना चाहिए, ऐसा भी स्वीकार किया है। आचार्यश्री तुलसी सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व के धनी हैं, वे कुलीन हैं, संस्कारशील हैं, सुशील हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य तुलसी की धर्मशासना : आधुनिक संदर्भ में

'छांदोग्योपनिषद्' में कहा गया है कि मनुष्य की स्थिति ऐसी है जैसे डाकू उसकी आंखों पर पट्टी बांधकर कहीं दूर देश ले जाकर छोड़ दे। ऐसे निरीह और असहाय व्यक्ति को उस समय एक ऐसे व्यक्ति की, गुरु की, मार्ग-दर्शक की आवश्यकता होती है जो उस मनुष्य की आंखों पर से पट्टी खोलकर उसे उचित मार्ग दर्शाए। आज हिंसा, स्वार्थ, लोभ, मोह, अर्थ-लिप्सा, राग-द्वेष के जंगल में मनुष्य भौतिकता की पट्टी बांधे भटक रहा है और तेरापंथ के ९वें आचार्य श्री तुलसी इसी भटके हुए मनुष्य को सम्यक् मार्ग दर्शाने में गतिशील हैं। वे मानवतावादी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तमिल संत तिरुवल्लूवर के समान आचार्य तुलसी के सामने जो मनुष्य है वह उनका भाई है, जो देश-प्रेम उनके सामने है वह उनका अपना देश-प्रदेश है। अपनी दक्षिण-यात्रा में उन्होंने कहा था—"मैं सबसे पहले मानव हूं, उसके बाद धार्मिक हूं, उसके बाद जैन और उसके बाद तेरापंथ धर्मसंघ का आचार्य।" आचार्य तुलसी मानव धर्म के प्रतिष्ठापक हैं, वह जाति एवं सम्प्रदाय की दुर्बल, संकीर्ण परिधि में बंधकर नहीं रहते। उनके सामने मानवता का विशाल सागर लहरा रहा है, वह उसमें अवगाहन करते हैं। सबके दुःख-दर्द सुनते हैं, उनके घावों पर मरहम रखते हैं, उन्हें हिंसा से अहिंसा की ओर ले जाते हैं, उन्हें संग्रह से अपरिग्रह की ओर बढ़ने की शिक्षा देते हैं, दुराग्रह या मताग्रह के संघर्षमय पथ से हटाकर अनेकान्त के मैत्रीमय चौराहे पर लाकर खड़ा करते हैं। अब तक उन्होंने भारत में पचास हजार कि० मी० की पैदल यात्रा करके एक अनुपम दृष्टान्त व कीर्तिमान प्रस्तुत किया है। लगता है सूर्य तिमिर के पास पहुंचा है, या गंगा प्यासे के पास गई है, या मंजिल मुसाफिर के चरणों से लिपट गई है, या संजीविनी रोगी के पास स्वतः पहुंच गई है। ऐसे संत प्रवर की दृष्टि में रखकर तुलसी ने उन्हें चलता-फिरता तीर्थराज कहा है—

"मुद मंगलमय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथराजू।"

आचार्यश्री तुलसी की धर्म-यात्रा मैत्री-यात्रा है, प्रेम-यात्रा है, समता-यात्रा है, सेवा-यात्रा है। यहां अपने पराये का कोई भेद नहीं, स्वार्थ की कोई चाहत नहीं, यश की कोई कामना नहीं। उनकी दृष्टि में समता और आत्मौपम्य भाव की निर्झरिणी है जो सभी को समान रूप से अभिसिंचित तथा शीतल करती है। उनके सामने सदा महावीर की यह वाणी साकारित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—"मित्ती मे सव्व भूएसु"। महावीर ने सभी के प्रति अहिंसा और मैत्री का, सेवा और करुणा का व्यवहार किया। वह समन्वय के सूत्रधार थे और आचार्यश्री तुलसी उसी समन्वय की परम्परा को आज साकार रूप दे रहे हैं। आज चारों ओर जो संघर्ष और घृणा का दूषित वातावरण है उसको स्वच्छ करने के लिए मैत्री-भाव की आवश्यकता है। मैत्री भाव को शत्रु तक पहुंचाना चाहिए, अपने विरोधियों को भी मैत्री भाव से जीता जा सकता है, उनके हृदय को बदला जा सकता है, उनके विकारों को दूर किया जा सकता है। हमें चाहिए कि अपने हृदय को विशाल बनाएं, भावों को, बुद्धि को परिष्कृत करें, मन को खुला रखें तो अनेक समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। आचार्यश्री तुलसी ने यह बहुत अच्छी बात कही है—सेवा और मैत्री के सम्बन्ध में आज भी बहुत लोगों की अवधारणाएं स्पष्ट नहीं हैं। वे मैत्री-भाव बढ़ाते हैं समान-धर्मा लोगों के साथ। उनका अभिमत है—समानकुल, समान बल, समानवय और समान वैभव वालों के साथ ही मैत्री होती है। वास्तव में ये सब मैत्री की सही कसौटियां नहीं। हमें सभी प्राणियों से मैत्रीभाव रखना चाहिए। "जो व्यक्ति जितना अधिक उदार, सेवाभावी और तत्वज्ञ होता है उसकी मित्रता का दायरा उतना ही विस्तृत होता है। संकीर्ण विचारों के पौधे पर मित्रता के फूल नहीं खिल सकते।" स्वार्थ मैत्री की भावना को कलंकित तथा प्रदूषित कर देता है। इसी प्रकार सेवाभाव हमें सभी के प्रति अपनाना चाहिए। यहां भी स्वार्थ को, अपनी जाति या धर्म को, पास नहीं फटकने देना चाहिए। हमें मानव को मानव समझकर सेवा करनी चाहिए, समान जाति या समान धर्म का समझकर नहीं करनी चाहिए। सेवा "स्व" और "पर" से ऊपर उठकर, अपने को समर्पित करके की जानी चाहिए। आचार्यश्री तुलसी ने "पंचसूत्र" में यही भाव व्यक्त किया है—

सेवा शाश्वतिको धर्मः, सेवा भेदविसर्जनम्।
सेवा समर्पणं स्वस्य, सेवा ज्ञानफलं महत्॥

लेकिन सेवा करने का मतलब यह नहीं कि किसी को कर्महीन बनाया जाए, उसे प्रमादी या पौरुष विहीन बना दिया जाए। सेवा द्वारा किसी को निराशा तथा हीनता का शिकार नहीं होने देना चाहिए। श्री तुलसीजी कहते हैं, "पुरुषार्थ कर्म का जनक है और कर्म पुरुषार्थ का जन्य है।" मनुष्य पुरुषार्थ का प्रयोग कर भाग्य को बदल सकता है, कर्म-फल में परिवर्तन ला सकता है। उन्होंने कर्म के साथ चित्त की निर्मलता पर भी बल दिया है। कर्म के साथ मन का मिलना "विकर्म" है, "भावकर्म" है, यही वास्तविक कर्म है, यही सच्ची साधना है। कर्म के साथ चित्त का मिलना अद्भुत आनंद प्रदान करता है—यही कर्म उपासना बन जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर जो हिंसा, रक्तपात, उपद्रव, अग्नि-काण्ड नरकाण्ड होते हैं वे मानवता के लिए शर्मनाक हैं। हमें संकीर्णता से ऊपर उठना चाहिए; वह संकीर्णता चाहे धर्म की हो, जाति या सम्प्रदाय की हो या भाषा अथवा प्रान्तीय हो। आचार्य तुलसी के मतानुसार सम्प्रदाय नहीं, साम्प्रदायिकता बुरी होती है। सम्प्रदाय एक गतिशील परम्परा है, उसका रूढ़ होना साम्प्रदायिकता है। यही साम्प्रदायिकता वैमनस्य और संघर्ष का रूप लेकर महान् अनिष्ट करती है। वह नहीं चाहते कि धर्म के नाम पर घृणा या हिंसा फैले। वह चाहते हैं कि मनुष्य में "सर्वधर्मसद्भाव" की भावना उत्पन्न हो। उन्होंने "सर्वधर्मसद्भाव" को समझाते हुए कहा कि "मेरे अभिमत से सर्वधर्मसद्भाव का अर्थ इतना ही है कि अपने द्वारा स्वीकृत सही सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ विश्वास और दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णुता। किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय के सिद्धान्तों पर आक्षेप करना, किसी के प्रति घृणा व तिरस्कार के भाव फैलाना, किसी के साथ अवांछनीय व्यवहार करना, सद्भावना में बाधाएं हैं। वैचारिक सहिष्णुता के विकास और धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को लोक जीवन में उतारने का सामूहिक प्रयत्न—ये दो बातें ऐसी हैं, जो धार्मिक सद्भावना की निष्पत्ति हो सकती हैं।" आचार्यश्री यहां अनेकान्त दृष्टि की ज्योति विकीर्ण करते हैं। महावीर का अनेकान्तवाद ही आज विश्व को वैचारिक संघर्षों से दूर रख सकता है। यह जो "स्टार वार" की बात बड़ी गर्म है, उसे ठण्डा किया जा सकता है—इसी वैचारिक दृष्टि से यानि अनेकान्तवाद से। यही सह-अस्तित्व है, अहिंसाभाव है, यही सर्वधर्मों के प्रति सहिष्णु बनना है। एक देश के दूसरे देश से जो भी मतभेद हैं वे सब अनेकान्त-दृष्टि से दूर किये जा सकते हैं। यदि हम वैचारिक सहिष्णुता से काम लें, सर्वधर्मसद्भाव को अपनाएं तो मानवता को सुख-शांतिमय वातावरण प्रदान कर सकते हैं और तृतीय महा-युद्ध की विभीषिका से बचा सकते हैं।

आचार्यश्री तुलसी की दृष्टि बहुमुखी है, उनका व्यक्तित्व बहुआयामी है। वे धर्म के साथ देश और समाज पर गहरी दृष्टि रखते हैं। जब देश हिंसात्मक घटनाओं से दो-चार था तो उन्होंने एक कुशल तथा व्यापक दृष्टि-सम्पन्न महान् लोकनायक के रूप में पंजाब की समस्या का अहिंसात्मक समाधान खोजने में स्व० संत लोंगोवाल को प्रेरित किया, उन्हें सहयोग दिया। लगभग दो घण्टों तक उनसे बातचीत की और अन्त में आचार्यजी ने कहा—आपकी बात से ज्ञात हुआ कि आप देश की अखण्डता चाहते हैं। आतंकवाद और अलगाववाद की मांग आपकी नहीं है। आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई। हमारी पौने दो घण्टे की बात में एक क्षण के लिए भी आपके चेहरे या वाणी में आक्रोश और उत्तेजना की झलक नहीं मिली।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्ति और सौम्यता को देखकर ही ऐसी प्रतीति होगी कि सचमुच संत-मिलन हुआ है।"

हमारे समाज में अनेक कुरीतियां हैं जो कुरोग बन गई हैं। उनको समूल उच्छेदित करने में भी श्री तुलसी पूर्णतः सक्रिय हैं। अस्पृश्यता तो हमारे समाज में एक अभिशाप बना है। उन्होंने इस दिशा में रचनात्मक कार्य किये, केवल जुबानी जमा-खर्च नहीं किया। उनके संघ के साधु-साध्वियां अछूतों की बस्तियों में गये, शिविरों का आयोजन किया और उन्होंने इस दिशा में दो कार्य किये (१) उच्चवर्ग से अहम् भाव नष्ट करना (२) अस्पृश्य जाति, दलित लोगों के मन से हीनता का भाव मिटाना। उन्होंने अपने "अमृत-महोत्सव" के अवसर पर अमृत-कलश-यात्रा के पांच संकल्पों में अस्पृश्यता-निवारण को भी शामिल किया था। उन्होंने सही फरमाया— "मेरे अभिमत से जातीयता का गर्व जितना बुरा है, हीन भावना भी उससे कम बुरी नहीं है। अपने आपको हीन, दीन और अस्तित्वहीन मानने वाले अनचाहे ही जातीयता की भावना को प्रोत्साहन देते हैं। ऐसे लोगों को विश्वास में लेकर समझाने से ही उन्हें अपने अस्तित्व का बोध हो सकेगा।" अस्पृश्यता के निवारण में योग देकर आचार्यश्री ने महावीर के मिशन को साकारित किया है। महावीर जातिवाद के विरुद्ध थे, उन्होंने जाति से तप को श्रेष्ठ माना—

"सक्खं खु दीसई तवो विसेसो,
न दीसई जाइविसेस कोई।"

जहां तक परिग्रह तथा अन्य व्यसनों की बात है आचार्यश्री तुलसी की दृष्टि उन पर भी रहती है। उन्होंने देखा कि हमारा समाज — विशेषकर युवा वर्ग मादक द्रव्यों के सेवन में प्रवृत्त होता जा रहा है, इसलिए इस दुर्व्यसन की रोकथाम आवश्यक है। इससे छुटकारा पाने के लिए उन्होंने कानून के साथ-साथ हृदय-परिवर्तन की भी बात कही है। वास्तव में कानून का पालन तो मनुष्य भय के कारण अस्थायी रूप में ही कर पाता है, मगर हृदय-परिवर्तन के द्वारा तो मनुष्य के आचार-विचार में स्थायी परिवर्तन हो जाता है। आजकल हीरोइन, हशीश, मद्यपान आदि का शिकार है हमारा युवा-समाज, निम्न जातियां। मादक द्रव्यों से मनुष्य की विवेक-वृत्ति नष्ट हो जाती है, उसमें अपराध-चेतना का उदय होता है और फिर वही अपराध, हिंसा, आतंक लूटमार का रास्ता उसके सामने रह जाता है। उनके विचार में हमें महावीर तथा गांधी द्वारा निर्दिष्ट साधन-शुद्धि के मार्ग को अपना कर, उसे कार्यान्वित कर, ध्यान और अनुप्रेक्षा द्वारा ऐसी बुराइयों, रोगों की रोकथाम की जा सकती है।

आचार्यश्री तुलसी के बहुआयामी व्यक्तित्व की एक झांकी हमें डा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राधाकृष्णन् की अंग्रेजी पुस्तक 'Living with Purpose" में भी मिलती है जहां उन्होंने गुरु नानक, दयानन्द सरस्वती, तिलक, गोखले, राजा राममोहन राय, पटेल, आजाद, मोतीलाल नेहरू आदि के साथ आचार्यजी की चर्चा भी की है और कहा है कि उन्होंने अपना जीवन दलित और पिछड़े लोगों के सुधार में, उनके आचार-व्यवहार की शुद्धि में समर्पित किया है। अनैतिकता तथा सामाजिक कुरीतियों से जूझने का उन्होंने संकल्प लिया है। उन्होंने हमारे विद्वानों, शिक्षा-शास्त्रियों, राजनीतिज्ञों सभी को प्रभावित किया है। राजगोपालाचार्य, राजेन्द्र बाबू, पंडित जवाहरलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टंडन, इन्दिरा गांधी, काका कालेलकर, विनोबा भावे, मुरारजी देसाई, जयप्रकाश नारायण, जाकिर हुसैन आदि उनके सम्पर्क से प्रभावित हुए। १९६२ में गंगाशहर (राज०) में एक भव्य समारोह में डा० राधाकृष्णन् ने उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया था। आचार्यश्री १९७१ में "युगप्रधान आचार्य" के रूप में सम्मानित हुए। वह १९३६ से आचार्य पद का विधिवत् उत्तरदायित्व वहन करते आ रहे हैं।

वि० संवत् १९७१ को लाडनूं में जन्मे बालक तुलसी अल्पायु में ही तेरापंथ के आठवें आचार्यश्री कालूगणीजी द्वारा दीक्षित हुए और ११ वर्षों तक मेधावी छात्र के रूप में अध्ययन-मनन कर गुरु कालूगणीजी द्वारा २२ वर्ष की उभरती जवानी में आचार्य पद को प्राप्त हुए। कहते हैं उन्होंने अपने ग्यारह वर्षीय मुनि साधना के समय २० हजार पद्य कण्ठस्थ कर लिये थे। उन्हें श्री कालूगणी ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। इसी प्रकार आचार्य तुलसी ने अपने जीवन काल में ही अपने योग्यतम शिष्य श्री नथमलजी को अपना उत्तराधिकारी फरवरी, १९७९ में मनोनीत किया। मुनिश्री नथमलजी को आचार्यश्री तुलसी ने "महाप्रज्ञ" की उपाधि १९७८ में प्रदान की। यह आचार्यजी की महानता, उदारता के साथ उनके गुणों की परख का अनुपम कौशल है। आचार्य श्री तुलसी को पूर्णतः समर्पित हैं श्री युवाचार्यजी। उन्हीं की विद्वत्ता तथा पाडित्य के द्वारा आचार्यजी जैनागमों का सम्पादन-कार्य कराकर एक अविस्मरणीय तथा चिरवंद्य सेवा कर रहे हैं। ऐसा लगता है जैसे आचार्यश्री तुलसी सूर्य हैं और "युवाचार्य महाप्रज्ञ" उनकी किरणें; आचार्यश्री तुलसी कमल हैं और युवाचार्य महाप्रज्ञ उसका सौरभ, आचार्यश्री तुलसी चिनार हैं और उसकी शीतल छाया युवाचार्य महाप्रज्ञ। दोनों का अविनाभाव सम्बन्ध है, यह तेरापंथ संघ की गंगा-जमना हैं। वस्तुतः युवाचार्य के निर्माण में उनका अपना ही समर्पण भाव प्रमुख है, ऐसा आचार्यजी मानते हैं।

आचार्यश्री तुलसी ने १९४९ में 'अणुव्रत आन्दोलन को प्रारम्भ किया। उसे व्यावहारिक दृष्टि प्रदान करने में युवाचार्य का भी हाथ रहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य भिक्षु के मौलिक चिंतन को युगीन संदर्भ में प्रस्तुत करने का कार्य युवाचार्य का है। "प्रेक्षाध्यान" नाम से एक स्वतन्त्र साधना-पद्धति जैन समाज को प्रदान करने में उन्होंने सहयोग दिया और इन सबके पीछे आचार्यश्री तुलसी का प्रेरक व्यक्तित्व ही सक्रिय था। आचार्यश्री तुलसी ने ठीक ही फरमाया "ये मुझसे भिन्न कोई व्यक्ति नहीं।" इससे बढ़कर एक शिष्य की प्रशंसा क्या होगी? यह गुरु की भी अपनी गुरुता है, बड़प्पन है। वे आचार्यजी के चिंतन के सफल, मौलिक, प्रभावशील भाष्यकार हैं। "जब से मैंने इनमें अपना उत्तराधिकार नियोजित किया है, मैं इनमें अपना ही रूप देखता हूं।" यह है स्नेह का उद्वेलित सागर। एक सौ पुस्तकों से अधिक पुस्तकों के रचयिता युवाचार्यजी प्रकाण्ड विद्वान्, कुशल वक्ता, मौलिक चिंतक, महान् दार्शनिक, कुशाग्र सम्पादक, गहन तत्वान्वेषी, मेधावी भाष्यकार हैं। उनका चिंतन प्रवाह युग की धारा के साथ प्रवहमान है। इसका श्रेय आचार्य श्री तुलसी को है। आचार्यजी का धर्मसंघ, उसकी व्यवस्था या अनुशासन प्रशंस्य है।

एक स्थान पर आचार्य तुलसी ने कहा है—"हमारे देश में केवल धर्म या नैतिक मूल्यों की समस्या नहीं है। एक ज्वलंत और सार्वभौम समस्या है अर्थ की। अर्थ का अतिभाव विलासिता बढ़ाता है और अर्थ का अभाव व्यक्ति को क्रूर एवं अपराधी बनाता है। इन दोनों वर्गों के लोग कभी स्वस्थ और सुखी नहीं हो सकते। इस समस्या के सन्दर्भ में अणुव्रत दर्शन ने दो सूत्र दिये—विसर्जन और संविभाग। विसर्जन का अर्थ है अपने स्वामित्व और ममत्व को छोड़ना। इससे संग्रह और शोषण की मनोवृत्ति में बदलाव आता है। संविभाग का अर्थ है "सबका श्रम और सबका स्वामित्व।" यहां स्वामी और सेवक न होकर दोनों भागीदार होते हैं। यह दृष्टिकोण बड़ा ही उपयोगी है—विशेषकर उद्योग के क्षेत्र में। उद्योगपति का अहंभाव, उसका स्वामित्व कम होता है, उधर श्रमिकों में आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान बढ़ता है, उनकी हीनता कम होती है। अणुव्रत द्वारा निर्दिष्ट तथा प्रचारित यह संविभाग आज के सन्दर्भ में उपयोगी तथा अनुकरणीय है। भगवान महावीर ने जिस अपरिग्रहवाद का दर्शन दिया था—अणुव्रत में उसे आचार्यश्री ने "विसर्जन" तथा "संविभाग" के रूप में प्रस्तुत किया है। आचार्य उमास्वामी ने परिग्रह को 'मूर्च्छा' या ममत्व कहा है। आज यही ममत्व या लोभवृत्ति हमारे समाज को घुण की भांति अन्दर ही अन्दर खाये जा रही है और उसे खोखला कर रही है। वह भ्रष्टाचार, उत्कोच, शोषण, मिलावट, जमाखोरी, दहेज न जाने किस-किस रूप में परिलक्षित होती है। आचार्यजी ने अणुव्रत आन्दोलन को नैतिकता से जोड़कर उसे धर्मक्रान्ति का वाहक और मानव-जाति के लिए सार्वदेशिक रूप उपयोगी बनाया। यह आन्दोलन न जाति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष का है, न धर्मविशेष का है और न देश विशेष का है। यह मानवधर्म का आन्दोलन है। इसके प्रमुखतः तीन उद्देश्य हैं :—(क) जनसाधारण में नैतिकता का भाव उत्पन्न करना (ख) धार्मिक जीवन से धर्मस्थान और कर्मस्थान की विषमता व विसंगति को दूर करना (ग) सामाजिक समस्याओं का समाधान व्रत द्वारा करना। वस्तुतः इस आन्दोलन का काम संस्कारों का परिष्कार तथा निर्माण करना है, व्यक्ति को नैतिक आदर्शों या मूल्यों के प्रति निष्ठाशील बनाना है। उन्होंने कहा है—"जो व्यक्ति अपना हित साधने के लिए दूसरों के हितों का विघटन नहीं करता, दूसरों के प्रति क्रूर व्यवहार और विश्वासघात नहीं करता, उसे मैं नैतिक आदमी मानता हूं।" व्यक्ति को नैतिक बनने से कुछ बाधाएं रोकती हैं और ये बाधाएं हैं—निर्धनता या दरिद्रता, अनैतिक तरीकों द्वारा लाभ या धनार्जन, अपने को बड़ा समझने का अहं, कुकर्म का फल बुरा है, इसमें विश्वास न रखना। इस आन्दोलन के द्वारा वे त्याग और नैतिक चेतना का सुखद आलोक चारों दिशाओं में विकीर्ण करना चाहते हैं। उन्होंने इस आन्दोलन के द्वारा हमारी समस्याओं के समाधान का एक सम्यक् उपाय सुझाया है, हमारे हृदय में नैतिक चेतना की लौ जलाई है। यह हमारा उत्तरदायित्व है कि हम सदैव उसे प्रज्ज्वलित तथा अकम्प रखें। आचार्यजी ने ठीक कहा है—"मैं समस्या के स्थायी समाधान में कभी विश्वास नहीं करता। सूर्य प्रतिदिन प्रकाश देता है और अन्धकार को हरता है। मनुष्य का मनुष्यत्व इसी में है कि वह समस्याओं के सामने समाधान की लौ जलाता रहे।"

आचार्यश्री तुलसी ने १७,९२४ दिनों की पैदल यात्रा का कीर्तिमान स्थापित किया और जनमानस को आन्दोलित किया। नैतिक मूल्यों के आधार पर मानवीय एकता का मार्ग प्रशस्त किया। अणुव्रत तथा प्रेक्षाध्यान को देशव्यापी रूप प्रदान किया। अपना एक योग्यतम उत्तराधिकारी 'युवाचार्य म प्रज्ञ' नियुक्त किया। धर्मसंघ को वर्तमान युग के परिवेश में ढाला। धर्मसम्प्रदायों में मैत्री तथा समन्वय की जोत जलाई। आज सात सौ साधु-साध्वियां उनके धर्मसंघ में सम्मिलित हैं, असंख्य श्रावकों की श्रद्धा और सद्भावना के सुवासित पुष्पों से उनका आंचल भरा है। उन्होंने कहा है—"साम्प्रदायिक एकता की बात तब तक पूरी नहीं हो सकती जब तक एक दूसरे सम्प्रदाय के प्रति आदर के भाव न हों। हमने इसका प्रयोग किया। जैन सम्प्रदायों के आचार्यों तथा मनुष्यों के मिलन का रास्ता खुला। जैन शासन की प्रभावना के सम्बन्ध में चर्चाएं चलीं और एक मंच से कार्यक्रम होने लगे। भगवान महावीर की पच्चीस सौवीं निर्वाण शताब्दी का आयोजन भी एकता के लिए एक निमित्त बना। उस प्रसंग में जैन समाज ने एक ध्वज, एक प्रतीक और एक ग्रन्थ को मान्यता देकर शताब्दियों से बढ़ती जा रही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूरी को पाट दिया।" इस प्रकार आचार्यश्री तुलसी एक समन्वयवादी हैं, मानव को मानव से, सम्प्रदाय को सम्प्रदाय से, धर्म को धर्म से जोड़ने वाले हैं। उन्होंने जैन समाज से यह अनुरोध किया कि जहां कहीं हिंसा या आतंक का वातावरण हो वहां वह जायें और सद्भावना का वातावरण बनायें। देश का, आने वाली पीढ़ी का भविष्य अनुशासन का पालन करने में है। उन्होंने लोगों से अनुरोध किया कि वे प्रण करें कि दहेज नहीं लेंगे, विवाह-शादी पर दिखावा-धन-मान-प्रदर्शन नहीं करेंगे, खाद्य सामग्री तथा औषधियों आदि में मिलावट नहीं करेंगे, साम्प्रदायिक भेदभाव तथा अस्पृश्यता को समूल नष्ट कर भावात्मक एकता और राष्ट्रीय अखण्डता को बढ़ावा देंगे।

आचार्यश्री तुलसी ने किरणें ढूंढी तो उन्हें उजालों की कमी नहीं रही। उन्होंने अपनी मान्यताओं को, तेरापंथ के सिद्धान्त को युग के परिवेश में प्रस्तुत किया। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व विविध आयामों के रंगों से अनुरंजित है। अपने प्रगतिशील व्यक्तित्व द्वारा उन्होंने जनमानस को, युग चेतना को नवीन स्फूर्ति, नया आत्मबल और नयी दिशा प्रदान की। वे हमारे सामने एक युगपुरुष के रूप में वंदनीय हैं। लाखों लोग उनके अनुयायी हैं, लाखों लोगों के हृदय में वे घर किये हुए हैं—

मैं अकेला ही चला था जानिबे मंजिल मगर,
लोग साथ होते गये और कारवां बनता गया।

वह मनुष्य को मनुष्य से और हृदय को हृदय से मिलाने का काम कर रहे हैं—

तू बराए वस्ल करदन आदमी,
न बसए फस्ल करदन आदमी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस्लाम की रोशनी में अणुव्रत आन्दोलन

योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि वायु विकार रहित स्थान पर जलता हुआ दीपक जैसे निश्चल होकर जलता है वैसी ही स्थिति संयत ज्ञानयोगी की होती है।[1] एक और स्थान पर वहां श्रीकृष्णजी कहते हैं कि मैं उन योगीजनों के अन्तःकरण में तेजस्वी दीपक जला दिया करता हूं जिससे अज्ञानजनित अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञान-दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूं।[2] अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसीजी भी एक कर्मयोगी के सदृश समाज के अज्ञानांधकार को दूर कर रहे हैं। अणुव्रत का अकंपित दीप जलाकर उन्होंने ५० हजार कि० मी० की पैदल यात्रा कर गांव-गांव, नगर-नगर जाकर लोगों को ज्ञानालोक प्रदान किया, उनकी अज्ञानजनित रूढ़ियों को नष्ट किया और एक स्वस्थ समाज की संरचना में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनका यह अणुव्रत आन्दोलन साम्प्रदायातीत है, सम्प्रदाय से ऊपर है, शुद्ध मानव-स्तर पर आरूढ़ है, उसमें साम्प्रदायिक या धार्मिक आग्रह नहीं है। कहने का मतलब यह है कि वह संकीर्ण और परिसीमित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शुरू नहीं किया गया है। उसका उद्देश्य महान है, सर्वहितकारी है, मानवीय धरातल पर है। वह मनुष्य को व्यसन-मुक्त करता है और ऐसे चरित्र का निर्माण करता है जो समाज के बहुमुखी विकास में सहायक होता है, समाज की ऐसी संरचना करता है जो जीवन-मूल्यों का संरक्षण-परिवर्धन करती है। आचार्यश्री तुलसी का यह आन्दोलन मनुष्य को शीलवान बनने का मार्गदर्शन है, उसके अन्धकार का हरण करता है। अन्धकार दो प्रकार का होता है :

(१) भाव अन्धकार : यानी मिथ्यात्व, अज्ञान

(२) द्रव्य अन्धकार : यानी प्रकाश का अभाव

यहां प्रथम प्रकार के अन्धकार से अभिप्रेत है जो मनुष्य मिथ्यात्व

---

१. यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥
—गीता (६,१९)

२. तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥
—गीता (१०,११)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या अज्ञान में रहता है वह विवेकहीन होता है और विवेकहीन मनुष्य उस अंधे व्यक्ति की भांति होता है जो दूसरे को भी गड्ढे में गिरा देता है—'अन्धे अंधा ठेलिया दोनों कूप पडंत' (कबीर)। तुलसीदास ने दीपक को देहली पर रखने की बात कही है—

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुं जौं चाहसि उजिआर॥
(दोहावली ६)

यदि मनुष्य भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश (लौकिक और पारमार्थिक ज्ञान) चाहता है तो मुखरूपी दरवाजे की देहली पर रामनामरूपी (हवा के झोंके और तेल की कमी के कारण भी न बुझने वाला, नित्यप्रकाश-मान) मणिदीप रख दो। यानी मनुष्य जिह्वा द्वारा निरन्तर रामनाम का जप करता रहे। आचार्य तुलसी का अणुव्रत आन्दोलन सच्चरित्र का निर्माण करने वाला है। उसके नियमों का अनुवर्तन करने पर मनुष्य लौकिक और पारमार्थिक लाभ अर्जित कर सकता है। उनका अणुव्रत आन्दोलन कई दशकों से चलाया जा रहा है और उसका लोगों पर देशव्यापी प्रभाव पड़ा है। इस आन्दोलन का सूत्रपात निम्न व्रतों/संकल्पों से हुआ जो आज भी न केवल अपनी प्रासंगिकता बनाए है बल्कि अपने प्रभाव को भी अक्षुण्ण रखे हुए है। ये ग्यारह सूत्री नियम/संकल्प वे हैं जिनका २ मार्च १९४९ में अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन करते समय राष्ट्रसंत आचार्यश्री तुलसी ने आचार-संहिता के रूप में प्रतिपादन किया—

(१) निरपराध प्राणी की हत्या न करना।
(२) किसी पर आक्रमण न करना, आक्रामक नीति का समर्थन न करना और विश्व-शान्ति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्नशील रहना।
(३) हिंसात्मक उपद्रवों, तोहफोड़मूलक प्रवृत्तियों में भाग न लेना।
(४) मानवीय एकता में विश्वास करते हुए जातीय रंगभेद की, ऊंच-नीच की भावना को न मानना और किसी को अस्पृश्य न समझना।
(५) धार्मिक सहिष्णुता का भाव रखते हुए साम्प्रदायिक उत्तेजना न फैलाना।
(६) व्यवहार तथा व्यवसाय में ईमानदार रहना।
(७) निर्वाचन के समय अनैतिक आचरण न करना।
(८) सामाजिक कुरीतियों, रुढ़ियों को प्रोत्साहन न देना, यानी दहेज, मृत्युभोज, बालविवाह आदि का विरोध करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) मादक यानि नशीले द्रव्यों—शराब, गांजा, चरस, हेरोइन, भांग, तम्बाकू, मांस आदि का सेवन न करना।

(१०) ब्रह्मचर्य का, इन्द्रिय-संयम का निरंतर विकास करना।

(११) व्यसन-मुक्त जीवन यापन करना और पर्यावरण की समस्या के प्रति सजग रहना।

इन नियमों, व्रतों पर ध्यान दीजिए। इन पर अमल करने से मनुष्य में चारित्रिक पवित्रता आती है, उसका जीवन अनुशासन में रहता है। यहां अनुशासन का अर्थ है अपने पर शासन, स्वयं पर नियंत्रण रखना। इन नियमों में कोई धार्मिक, साम्प्रदायिक आग्रह नहीं है। ये सभी को चारित्रिक पावनता प्रदान करने वाले हैं। स्वस्थ समाज की संरचना करने वाले हैं। इसलिए इन्हें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों के लोग अपने जीवन में क्रियान्वित कर सकते हैं और कर रहे हैं। यह सामाजिक क्रान्ति का आन्दोलन है, एक प्रकार से मानवीय आचार संहिता है, अतः मानव-धर्म है। अणुव्रत आन्दोलन मानव-धर्म का आन्दोलन है। इसका आधार है 'संयमः खलु जीवनम्'। संयम का आलोक दर्शाने वाला यह अणुव्रत आन्दोलन सभी के लिए सुलभ तथा सुगम है। क्या विद्यार्थी, क्या व्यापारी, क्या वकील, क्या अध्यापक, क्या नेता, क्या डाक्टर, क्या साधु, क्या अधिकारी, क्या मजदूर, क्या किसान सभी अणुव्रत आन्दोलन के पथिक बनकर अपने तथा समाज के उत्थान में सहायक बन सकते हैं। 'संयम ही जीवन है' यह उद्घोष है अणुव्रत आन्दोलन का। सुख की स्पृहा को सीमित करना, परिग्रह को सीमित करना, सुख-सुविधा के साधनों पर अनधिकार अधिकार प्राप्त न करना, इन्द्रिय तथा मन का दास न बनना अणुव्रत का दर्शन है। अणुव्रत की आचार-संहिता नैतिक उत्थान के लिए है, यह राष्ट्रव्यापी है, मानव-धर्म है। यह सर्वधर्म समन्वय, सहिष्णुता, हिंसामूलक प्रवृत्तियों का प्रशमन, अहिंसा, प्रलोभन से बचना, आदि के द्वारा हम सामाजिक या जातीय भेदभाव को दूर कर सकते हैं, साम्प्रदायिक भावना को समाप्त कर सकते हैं और एक उदार-चेता मनुष्य का निर्माण कर सकते हैं। अणुव्रत आन्दोलन नीति-मान्य नैतिक तकाजों की दस्तावेज है जिसमें मानवता का कल्याण सन्निहित है, एक व्यापक दृष्टि है, सबको जोड़ने की, एकसाथ लेकर चलने की क्षमता है। यही उदार-वादी दृष्टिकोण सामने देखकर सभी धर्मों-सम्प्रदायों के लोगों ने आचार्यश्री तुलसी के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण किया और करोड़ों की संख्या में अणुव्रती बन गये, बन रहे हैं और आगे भी बनेंगे। भला कौन ऐसा कुबुद्धि होगा, विवेकशून्य होगा जो गंगा जैसे पावन अणुव्रत के अभियान में डुबकी लगाना न चाहेगा?

अणुव्रत आन्दोलन सत्संस्कारों को जन्म देने वाला, उनका अभ्युत्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा विकास करने वाला व्यावहारिक आन्दोलन है जिसके प्रधानतया तीन मूल उद्देश्य हैं—

(१) मनुष्य को आत्मसंयम की ओर उत्प्रेरित करना और जाति, सम्प्रदाय, भाषा, प्रान्त आदि के भेदभाव को दूर करना।

(२) समाज में मैत्री, एकता और शान्ति की स्थापना करना।

(३) शोषणविहीन या स्वतन्त्र समाज की संरचना करना।

आज चारों तरफ हिंसा का रक्तिम ताण्डव हो रहा है। न संयम है, न उदारता है। घृणा, द्वेष, लोभ, ईर्ष्या का वातावरण है। मनुष्य मनुष्य के बीच फासले बढ़ते जा रहे हैं। उन बढ़ते फासलों को कम करने के लिए अणुव्रत सेतु का काम करता है, मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है, एक संप्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय से जोड़ता है, एक धर्म को दूसरे धर्म के करीब लाता है। जोड़ना इसका प्रमुख लक्ष्य है। यह सुई का काम करता है, कैंची का नहीं जो काटती है, दूरी बढ़ाती है, पृथक् करती है। महावीर का प्रसिद्ध सूत्र है; मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ।' आचार्यश्री तुलसी का आन्दोलन भी मैत्री का, एकता का, सद्भाव का आन्दोलन है, मानव-धर्म की प्रतिष्ठापन का आन्दोलन है। आचार्यश्री तुलसी मानव-धर्म के महान् आचार्य हैं, पुरोधा हैं।

आज का मनुष्य, समाज और देश जिन प्रमुख समस्याओं से दो-चार है वे हमारी अपनी दुर्बलता के कारण उद्भूत हैं। जिधर देखो उधर हिंसा है, आतंक है, उग्रवाद है, हत्याएं हैं। चारित्रहीनता, साम्प्रदायिकता और अन्ध-विश्वास है। एक तरफ भूख, बेरोजगारी और महंगाई है तो दूसरी ओर अस्पृश्यता, निरक्षरता और जातिवाद है। पृथक्तावाद अलग सर्प की भांति फूत्कार कर रहा है। ऐसे में कोई निर्भय मनुष्य दिखाई नहीं देता, सभी भयाकुल हैं। आचार्यश्री तुलसी अणुव्रत आन्दोलन द्वारा मनुष्य का नव निर्माण करना चाहते हैं, उसे सुसंस्कृत निर्भय व शीलवान बनाना चाहते हैं, शुद्ध आचरण वाला, अहिंसा, संयम का पालन करने वाला बनाना चाहते हैं। मानो अणुव्रत ऐसा सांचा है जिसमें ढलकर जो निकलेगा वह व्यसनमुक्त होगा, उदारचेता और सहिष्णु होगा, सब से मैत्री भाव रखने वाला होगा, एक सच्चा-पक्का, खरा मानव-धर्म का पालन करने वाला ही होगा। आज हमारा समाज और देश समस्याओं के जिस अथाह सागर में फंसा है उससे निकलने के लिए आचार्यश्री तुलसी के अणुव्रत आन्दोलन की नौका काम आ सकती है। आज भोगवादी चेतना के भंवर जाल में फंसा मनुष्य जितना उबरना चाहता है उतना ही अधिक फंसता जाता है। मनुष्य पदार्थ में जकड़ा है, वह पदार्थ को ही सब कुछ समझ बैठा है। आचार्यश्री तुलसी ने ठीक कहा है कि भोगवादी चेतना पदार्थाभिमुख होती है—अधिकाधिक पदार्थों का उत्पादन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रह और उपभोग। इसी धरती पर फलती-फूलती है भोगवादी संस्कृति। पदार्थ का भोग एक बात है और पदार्थ को ही सब कुछ मान लेना एक बात है। एक समय था, तब मनुष्य के जीवन का आधार था संयम। वह बहुत थोड़े साधनों से अपना काम चला लेता था। संयम का सिद्धांत गौण हुआ। आवश्यकताओं का विस्तार हुआ। आकांक्षाओं का जाल बिछा। उपभोग्य पदार्थों में वृद्धि हुई। मनुष्य की भोगवादी चेतना वहीं भटक गई। उसे पदार्थ की पकड़ से मुक्त होने का मौका नहीं मिला। भोगवादी चेतना ने पदार्थों को बढ़ाया और पदार्थों ने चेतना को बांध लिया। चेतना की तेजस्विता कम हो गई। भोगवादी मूल्य प्रतिष्ठित हो गए।[1]

आचार्यश्री तुलसी एक सम्प्रदाय या पंथ के संघाधीश होकर भी साम्प्रदायिक भावना से सर्वथा ऊपर उठे हुए हैं। उन्होंने सम्प्रदाय व धर्म की चर्चा करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि कुछ व्यक्ति सम्प्रदाय को व्यर्थ मान बैठे हैं, उसे धार्मिक लोगों की लड़ाई का हथियार समझते हैं, वह हिंसा का साधन है। एकान्ततः ऐसा मानना भी भूल भरा चिन्तन है। सम्प्रदाय भी बहुत काम का है, यदि उसके साथ साम्प्रदायिक अभिनिवेश न जुड़े। मनुष्य खुले आकाश में रह नहीं सकता, इसलिए अपने सिर पर छत बनाता है। धार्मिक आस्थाएं भी बिना किसी आधार के टिक नहीं पातीं। इसलिए मनुष्य सम्प्रदाय के सहारे पर खड़े रहते हैं। किन्तु जहां भी सम्प्रदायवाद का रूप धारण कर लेता है समस्याओं का स्त्रोत खुल जाता है।[2] आचार्यवर का सम्प्रदाय से जरूर सम्बन्ध है लेकिन उसे उन्होंने 'वाद' नहीं बनने दिया, इसलिए वह सहिष्णुता, मैत्री और अनुशासन की भित्तियों पर अचंचल, अटल खड़ा है हिमालयवत और उससे फूट रही है संयम की, मानवधर्म की गंगा-जमना। अणुव्रत का दर्शन नैतिकता की आधारशिला पर प्रतिष्ठित है। सुख-सुविधा की चाह को बदलना अणुव्रत है। आज अनैतिकता का साम्राज्य चतुर्दिश प्रसरित है। न कहीं संयम है, न नियंत्रण है। अपराधवृत्ति या हिंसात्मक रुझहान पर किसी का कोई नियंत्रण नहीं। संयम या नियंत्रण होगा तो कहीं भ्रष्टाचार नहीं फैलेगा। हमारे समाज और देश की वर्तमान सोचनीय, चिंतनीय दशा को देखते हुए अणुव्रत की हम सब के लिए अनिवार्यता है, इससे विमुख होना अपने आप से विमुख होना है, मानवमूल्यों का तिरस्कार करना है, मानव-धर्म को ठुकराना है। आज हमारा समाज धर्म से नहीं, राजनीति से आक्रान्त है और राजनीति भी वह जो स्वार्थबद्ध है। जहां स्व पर ही हमेशा दृष्टि रहती है, मनुष्य स्वकेन्द्रिय होकर रह जाता है। ऐसी

१. प्रेक्षाध्यान, (दिसम्बर) '९०) पृ० ५
२. प्रेक्षाध्यान, (जुलाई '९०) पृ० ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजनीति में कोई शत्रु-मित्र नहीं होता, सब कारणवश मित्र और शत्रु बनते हैं ।

न कश्चिद् कस्यचिद् मित्रं, न कश्चिद् कस्यचिद् रिपुः ।
कारणादेव जयन्ते, मित्राणि रिपवस्तथा ॥
(महाभारत)

मानव को पशु से प्रथक् करने वाला गुण धर्म ही है, नहीं तो मनुष्य और पशु में चार बातें समान हैं—आहार, निद्रा, भय और मैथुन । जिस व्यक्ति में धर्म नहीं, वह पशुवत है—धर्मेणहीनाः पशुभि समानाः (हितोपदेश) । जैन संस्कृति में मानवधर्म को परिभाषित करना हो तो कहेंगे—क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच और संयम मानवधर्म हैं । जैन धर्म की जीवंत मूर्ति आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत इन सभी धर्मांगों को अपने में समाहित किये हुए है । जहां सहिष्णुता होगी वहां क्रोधावेश नहीं होगा, मैत्री होगी । मार्दव में अहंकार का तिरोभाव होता है । निरहंकारी मनुष्य में ही दूसरे को सम्मान देने की, एकता व समानता की भावना होगी । आर्जव में छलकपट नहीं होता, किसी के साथ अविश्वास नहीं किया जाता, चीजों में मिलावट नहीं की जाती । सदा हितकर प्रिय वचन बोलना, सबके साथ दया और हमदर्दी भरा व्यवहार करना सत्य है । यहीं समस्त प्राणिजगत् के हित-सम्पादन का भाव पैदा होता है । प्रकृति और संस्कृति के संरक्षण के संस्कार आविभूत होते हैं । शौच में जीवन-सुरक्षा का भाव भरा है । समाज, राष्ट्र, प्राकृतिक-सम्पदा के संरक्षण का पाठ मनुष्य शौच द्वारा ही सीखता है । अनावश्यक या परिमाण से अधिक वस्तुओं का संग्रह समाज के लिए कठिनाइयां पैदा करने वाला होता है । संयम को तो जैन धर्म का प्रमुख आधार माना गया है । संयम धर्म का पालन करते हुए मनुष्य समाज विरुद्ध, देश विरुद्ध, संस्कृति विरुद्ध, प्रकृति विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता । उस मनुष्य को संस्कृत मनुष्य नहीं कहा जा सकता जिसमें मानवता नहीं, मानवीय गुण नहीं, मानव-धर्म नहीं । अणुव्रत आन्दोलन राष्ट्र को, समाज को, मनुष्य को संस्कृत करने वाला जीवंत और अर्थवत्तापूर्ण सक्रिय आन्दोलन है । बिना अणुव्रत का आंचल पकड़े हम व्यक्ति सुधार, समाज विकास और राष्ट्रोन्नति के मार्ग पर नहीं चल सकते । मनुष्य में आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन-विकास अणुव्रत द्वारा सरलता से किया जा सकता है । चरित्र को धर्म माना गया है और जो धर्म है वह साम्य है । ऐसा शास्त्र कहते हैं । साम्य, मोह-क्षोभरहित आत्मा का भाव है ।[1] मनुष्य में चारित्रधर्म का आलोक विकीर्ण करने वाला आन्दोलन

१. चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो समोत्तिणिछिट्ठो ।
मोहक्खोविहीणो परिणामों अप्पणो अघणोहु समो ॥
(प्रवचनसार, १७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुव्रत नाम से अभिहित किया जाता है।

अणुव्रत आन्दोलन मनुष्य में भौतिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति का विकास सोपान है। इसमें मनुष्य, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र, संपूर्ण मानवजाति के अभ्युत्थान का संबल निहित है। आचार्यश्री तुलसी मनुष्य बनाने वाले मूर्तिकार हैं, कलाकार हैं। वे कठिनाइयों पर विजयध्वज फहराने वाले ज्योतिधर सैनिक हैं। अणुव्रत उनकी उद्योगशाला है। यहां मानव की रचना की जाती है, ऐसे मानव की जो मानवता से आपूर्ण हो, जिसमें आत्मोत्थान के साथ समाज, देश और राष्ट्र के उत्थान की बलवती लालसा हो। आचार्यश्री तुलसी आध्यात्मिक संत हैं पर चमत्कारी नहीं। वह महान् मनीषी हैं पर अहंकारी नहीं। वे महान् चिन्तक हैं लेकिन चिंतित नहीं। वे क्रान्तिकारी हैं मगर राज्याधिकारी नहीं हैं। वे तेरापंथ के अधिष्ठाता हैं लेकिन स्वच्छंदवृत्ति के नहीं हैं। सर्वाधिकारी होते हुए भी वे निर्मम, कठोर नहीं, अनुशासित है। कमलवत् सदैव खिले रहते हैं। उन्हें अनुशासन तथा मर्यादा से प्रेम है। वे मर्यादापुरुष हैं। तेरापंथ की एक महान् उपलब्धि हैं। देश की अक्षय सम्पत्ति हैं। तेरापंथ का महान् आचार्य होकर भी उनमें साम्प्रदायिक संकीर्णता का लेशमात्र नहीं। उनका अणुव्रत अनाग्रही विचारधारा को लेकर चलता है। वह धर्म की शाश्वतता को लेकर चलता है। महावीर ने सम्प्रदायविहीन, वर्गविहीन, धर्म का प्रचार किया। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने ठीक कहा है, 'संप्रदाय बुरा नहीं, बुरी है साम्प्रदायिकता, साम्प्रदायिक कट्टरता। साम्प्रदायिक कट्टरता अच्छी नहीं है।' महावीर ने जिस धर्म का प्रतिपादन किया उसमें साम्प्रदायिक कट्टरता के लिए कोई स्थान नहीं है। साम्प्रदायिक कट्टरता न हो इसका आदिस्वर महावीर वाणी में खोजा सकता है। उन्होंने जिन शाश्वत सत्यों का प्रतिपादन किया वे आज भी हमारे लिए अनुकरणीय बने हुए हैं।[1] आज चारों ओर संकीर्ण साम्प्रदायिकता का बोलबाला है। सब अपने मताग्रह में आकंठ डूबे हैं, दूसरे के गुणों की ओर निहारने की फुरसत ही नहीं है। मतांधता या अहंकारदृष्टि सभी को— हमारे शाश्वत मूल्यों को लील जाने के लिए तत्पर है। महावीर ने शाश्वत धर्म का मूलभाव सामने रखते हुए कहा—किसी प्राणी की हत्या मत करो—"सव्वे पाणा न हंतव्वा"। हम मनुष्य का खून करते नहीं डरते। किसी के घर, दुकान को आग लगाते नहीं सोचते कि यह हमारी ही तरह का किसी का घर है, दुकान है, कारखाना है। हिंसात्मक क्रूर भावना ने हाल ही में न जाने कितनी जानें ली हैं। कितने ही मासूम बच्चों का प्राणांत किया है, उन्हें चलती ट्रेन से फेंका गया है, कहीं गोली का

१. अस्तित्व और अहिंसा—युवाचार्य महाप्रज्ञ, पृ० ११९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निशाना बनाया गया है। मनुष्य के इन काले करतूतों को देखकर वज्रवत प्राण भी करुणार्द्र हो जाते हैं, करुणा से पिघल जाते हैं। इस प्रकार के अमानवीय, राक्षसी दुर्व्यवहार पर मानवता न जाने कब तक सिर धुनकर पछताती रहेगी। हम यह क्यों नहीं समझते कि मन्दिर मस्जिद एक ही पूजागृह के दो नाम हैं। सब में एक ही आध्यात्मिक ज्योति विद्यमान है—

उसके फरोगे-हुस्न से झलकें हैं सब में नूर,
शम्मे-ए हरम हो या दीया सोमनाथ का।

गुरुनानक ने भी कहा है कि जितने मनुष्य हैं उनमें एक खुदा का नूर भरा हुआ है। वह मनुष्य से कहते हैं कि तू ईश्वर की ज्योति स्वरूप है, अपने को पहचान—

मन तू जोति सरूप है
अपना मूल पछान।

एक और स्थान पर गुरुनानकजी कहते हैं कि वह व्यक्ति महान् है जो सच को अपना व्रत मानता है। ज्ञान-ध्यान में स्नान कर अपने को पवित्र रखता है। दया को अपना इष्ट मानता है और क्षमा को जप करने की माला समझता है—

सच व्रत संतोखी तीर्थ ज्ञान ध्यान इसनान,
दया देवता खिमा जपमाली ते माणस प्रधान।

आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत भी क्षमा, दया, सत्य की त्रिवेणी में स्नान कराने वाला है। उसमें शाश्वत धर्म का, मानव-धर्म का सम्यक्, प्रतिपादन हुआ है। जब हम इस्लाम धर्म के परिप्रेक्ष्य में आचार्यश्री तुलसी के मानव-धर्म के प्रचारक अणुव्रत को देखते हैं तो वहां भी हमें अत्यधिक साम्य परिलक्षित होता है। कुरान शरीफ में कहा गया है कि तुम एक-दूसरे पर जियादती (अत्याचार) न करो, लोगों में सुलह कराओ, न्याय से काम लो, खुदा इन्साफ करने वालों को पसंद करता है। तुम एक-दूसरे की खिल्ली मत उड़ाओ, न किसी को ताना मारो, न अपनाम से पुकारो। (सूर : हुजुरात) और जमीन में फसाद मत फैलाओ (अल-एराफ़)। यहां साम्प्रदायिक दंगों को रोकने की ताकीद की गई है और लड़ाने के बजाय मेलजोल, भाईचारा बढ़ाने पर बल दिया है। अहंकार और तकब्बुर को खुदा ने पसंद नहीं किया। एक स्थान पर स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है—लोगों को अच्छे कामों, सत्कर्मों की नसीहत दिया करो और बुरे कामों, दुष्कर्मों से दूर रहने का मशवरा दिया करो। जमीन पर इतराकर, अहंकार में भर कर मत चलो, अपनी चाल को, एतदाल पर रखो, अपनी आवाज भी पस्त रखो यानी ऊंची आवाज में मत बोलो। (सूर : लुकमान) अल्लाह अच्छे काम करने वालों को पसंद करते हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्हें प्यार करते हैं (अल-बकर)। आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत आन्दोलन इस्लाम की रोशनी में खरा उतरता है। कुरान में 'जकात' 'सदका' देने की बात कही गई है और यह भी कहा गया है कि जब तौलो तो बराबर तौलो, चीजों में मिलावट न करो। यह कुरानादेश अपरिग्रह का ही प्रतिरूप है। आचार्यश्री तुलसी ने जिस रूप में अणुव्रत द्वारा मानव-धर्म की प्रतिष्ठापना की है वह हम सबके लिए ग्राह्य है, अनुकरणीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक मानसिकता अणुव्रत और जीवन-मूल्य

आज युवा मानसिकता को एक नयी दिशा-दृष्टि देने की आवश्यकता है। युवावर्ग में हर काम करने की पूर्ण सामर्थ्य है। वह कुछ सीमा तक धर्मविमुख दिखाई पड़ता है। उसका उत्तरदायित्व उस पर जितना है उतना ही उसके अभिभावकों तथा संरक्षकों पर है। हम कहते हैं आज की युवापीढ़ी अपने बड़ों का समादार नहीं करती, उनकी मान-प्रतिष्ठा नहीं रखती। मैं कहता हूं मान-प्रतिष्ठा, आदर-सम्मान को छोड़िए, इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता। लेकिन देखना यह है कि हमारा युवावर्ग कितना आज्ञाकारी है। मान से अधिक आज्ञापालन पर ध्यान दीजिए। यदि वह आज्ञाकारी नहीं तो खोट उसका नहीं, उसके माता-पिता का है, अभिभावकों का है। उन्होंने उसे कितना संस्कारी बनाया या वे स्वयं कितने संस्कारी हैं इस बात पर गौर कीजिए तो समस्या का सीधा-सा समाधान आपको स्वयं ही मिल जाएगा। अपने को टटोलकर देखिए। शायद अपने अन्दर ही खोट, दोष, कमी नजर आए। आचार्य तुलसीजी एक साधारण व्यक्तित्व के धनी हैं। उन्होंने अपने पौरुष से, सन्निष्ठा से वह कार्य किया है जो राजतन्त्र भी नहीं कर सकता, सरकार के बूते का भी नहीं ऐसा संव्यापक सुव्यवस्थित और प्रभावशाली कार्यक्रम चलाना। सरकार की योजनाएं तो कागज काले अधिक करती हैं। जन-साधारण तक उन योजनाओं का लाभ कम ही पहुंचता है। दिल्ली जैसे महानगर में हैजे के प्रकोप ने पूरी सरकार को हिलाकर रख दिया और स्वयं हमारे प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी को उस महामारी ग्रस्त क्षेत्रों की दुर्दशा को अपनी आंखों से देखना पड़ा। कितनी पीड़ा हुई होगी उन्हें यह शायद कम लोग ही सोच सके होंगे। आचार्य तुलसीजी तेरापन्थ के प्रधान हैं और आचार्य भिक्षु के पश्चात् एक अद्भुत कर्मयोगी, लोकनायक तेरापन्थ को मिला है। उन्होंने सकल भारत की पदयात्रा करके नया कीर्तिमान स्थापित किया और एक नया आन्दोलन देश में चलाया जिसे सब 'अणुव्रत आन्दोलन' के नाम से जानते-पहचानते हैं। यह आन्दोलन विगत लगभ चालीस वर्षों से चल रहा है। देखने से तो ऐसा लगता है जैसे यह महावीर निर्दिष्ट अणुव्रत/महाव्रत से (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) ही संबंधित है और एक धार्मिक तथा साम्प्रदायिक आन्दोलन हो, परन्तु ऐसी बात बिलकुल नहीं है। यह आन्दोलन न धार्मिक है और न साम्प्रदायिक है। यह धर्म और सम्प्रदाय की तंग, संकीर्ण भावनाओं को तोड़कर पूर्णरूप से मानवीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंदोलन है। मानवीय मूल्यों का संरक्षक और परिवर्धक है यह अणुव्रत आन्दोलन। अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्य तुलसीजी राष्ट्रीय सन्त हैं। उनके सामने सब मनुष्य समान हैं। जैन दर्शन के अनुसार अस्तित्व की अपेक्षा से सारा विश्व एक है और जैन धर्म-दर्शन के अणुव्रत के पुरोधा आचार्य तुलसी जी कहते हैं—"एक राष्ट्र में अनेक प्रान्त होते हैं। एक प्रान्त में अनेक धर्म होते हैं। एक धर्म में अनेक जाति के लोगों की अवस्था होती है। एक जाति में अनेक व्यक्ति होते हैं और एक व्यक्ति के अनेक विचार होते हैं। क्या इस अनेकता के आधार पर व्यक्ति, व्यवसाय, जाति, धर्म, प्रान्त या राष्ट्र को बांटा जाता है? जहां कहीं बंटवारे की स्थिति आती है, एकता खंडित हो जाती है। मनुष्य जाति एक है, इस सिद्धान्त की स्वीकृति के बाद किसी को मारना, सताना, कष्ट पहुंचाना, तिरस्कृत करना क्या स्वयं को मारने, सताने, कष्ट पहुंचाने और तिरस्कृत करने का प्रयत्न नहीं है? ऐसा उदारहृदय सन्त भला सम्प्रदाय की संकीर्ण सीमा में कहीं बन्ध सकता है? उसने जब देखा कि नव वधू को दहेज के लोभ में उसके ससुराल वाले नृशंसत, निर्दयता से जिन्दा आग में जला देते हैं तो उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। जैन धर्म के, महावीर के अनुयायी भी ऐसी घोर हिंसा करते हैं, उन प्राणिमात्र से प्रेम करने वाले सन्त को कितनी आत्मपीड़ा पहुंची होगी। उन्होंने जब देखा कि हमारी सामाजिक मान्यताएं टूट रही हैं, परिवार टूट रहे हैं, रिश्ते-नाते टूट रहे हैं, सम्बन्धों में निरन्तर दरार पड़ती जा रही है। व्यक्ति में प्रेम-स्नेह, ममता-सहानुभूति के मधुर धागे टूटते जा रहे हैं तो वह कैसे परांगमुख रहते, इन सबकी उपेक्षा करते। आखिर एक विवेकशील धर्मगुरु के रूप में उनका कुछ दायित्व तो था कि इन बुराइयों, कुरीतियों को नष्ट करने का बीड़ा उठाते और रसातलोन्मुखी समाज को ऊपर उठाने का प्रयत्न करते। यहां उनके सामने जैन लोग नहीं थे, सभी जातियों, सम्प्रदायों के लोग थे। और सभी के रोगों कुरीतियों, कुप्रथाओं का निदान वह करना चाहते थे। उन्होंने देखा कि हिंसा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। मनुष्य ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में न स्वयं जल रहा है, वरन् सभी मनुष्यों को, सकल मानवजाति को भस्म कर रहा है। उसका नैतिक पतन हो रहा है। शुद्ध चीजों को, खाद्य-पदार्थों को मिलावट करके बेचता है। शुद्ध न इंजेक्शन है, न दवा। भोगवादी संस्कृति ने सबका विनाश कर दिया है। उन्होंने कहा है भारत क्या, आज तो विश्व की समस्त संस्कृति में ही नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। मूल्यों का यह संकट जितना सघन होता जा रहा है, उसके कारणों को खोजने की अपेक्षा उतनी ही बढ़ रही है। कारणों को मिटाए बिना मूल्यों की समस्या का समाधान खोजना कठिन ही नहीं, असंभव-सा प्रतीत होता है।" अब देखना है कि नैतिक पतन के कारण क्या है? नैतिक पतन के अनेक कारण हैं जिसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबसे बड़ा कारण आचार्यश्री ने 'दृष्टिकोण का विपर्यास' माना है। दृष्टिकोण के विपर्यास से मतलब है मुख्य और गौण में कोई भेद न रखना; और यह गौण को मुख्य तथा मुख्य को गौण समझना। दूसरे शब्दों में महत्वपूर्ण को ठुकराना और जो महत्वहीन है उसे अंगीकार करना। 'इस दृष्टिभ्रम के कारण व्यक्ति के निजी जीवन में समाज और देश में जो विसंगतियां पनपी हैं, वे किसी से अज्ञात नहीं।' तेरापन्थ के महान मनीषी युवाचार्य महाप्रज्ञ ने नैतिकता का सम्बन्ध मानसिकता से जोड़ते हुए कहा है कि नैतिकता की समस्या मूलतः मानसिक समस्या है। मानसिकता बदलती है, आदमी नैतिक बन जाता है। मानसिकता अच्छी नहीं होती है तो आदमी अनैतिक बन जाता है। अनैतिकता का सम्बन्ध जितना मानसिकता से है उतना भौतिकता से या पदार्थ से नहीं है। अणुव्रत आन्दोलन एक प्रकार का नैतिक आन्दोलन है जो मनुष्य की मानसिकता को बदलना चाहता है, उसे राहेरास्त पर लाना चाहता है, कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लाना चाहता है। दृष्टिकोण के विपर्यास को सम्यक् बनाना चाहता है।

भारत के लिए व्रत की अवधारणा कोई नई बात नहीं। हमारे यहां व्रत-संस्कार प्राचीनकाल से विद्यमान हैं। वैदिक युग हो या महावीर एवं बौद्ध-युग हो, सभी जगह व्रतों के अनुपालन का आदेश मिलता है। लेकिन अणुव्रत शब्द जैनागम का शब्द है। इसका अर्थ है अणु=छोटा, व्रत=संकल्प छोटा व्रत या संकल्प। जैनागमानुसार श्रमण को पूर्णरूपेण व्रतों का पालन करना पड़ता है और उन व्रतों को 'महाव्रत' कहा जाता है। लेकिन साधारण मनुष्य या श्रावक श्रमण-साधु की भांति सामाजिक-पारिवारिक दायित्वों से विमुक्त नहीं होता, अतः वह इन व्रतों का पूर्णरूपेण परिपालन नहीं कर सकता। वह आंशिक रूप में ही इनका पालन कर पाता है। छोटी सीमा तक ही उसकी बिसात है। अतएव इन व्रतों को 'अणुव्रत' का अभिधान दिया गया है। हम कह सकते हैं कि अणुव्रत एक प्रकार का संकल्प है जो मनुष्य अपने चारित्रिक विकास के उद्देश्य से ग्रहण करता है, यानी अणुव्रत का प्रमुख प्रयोजन है चरित्र-विकास, आत्म-विकास, आत्मोन्नति। बुराइयों से छुटकारा पाना, चरित्र को, मन को स्वस्थ, परिष्कृत व सुसंस्कृत बनाना अणुव्रतों का खास मकसद है। फिर मनुष्य की सकल समस्याओं का निदान हो सकता, समाज-राष्ट्र सुख-शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। यह एक रचनात्मक सामाजिक आन्दोलन है। समाज की स्वस्थ संरचना के लिए अणुव्रतों के मार्ग पर चलना परम श्रेयस्कर है। आज हमारा जीवन वैयक्तिकता के घेरे में सिमटता जा रहा है। सामाजिकता लुप्त होती जा रही है। शतुमुर्ग की भांति व्यक्ति सबसे विमुख हो एकांत में मुंह छिपाए खोटा-खरा करता रहता है, एक-दूसरे से कोई सम्पर्क नहीं। पड़ोसी से कोई सम्बन्ध नहीं। न किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के दुःख-दर्द में कोई शरीक होता है न कोई किसी की सहायता करने के लिए इन्सानियत का नैतिक धर्म निभाता है। संयमहीनता इतनी बढ़ गई है कि आतंक-हिंसा-भ्रष्टाचार से जीवन का कोई क्षेत्र खाली नहीं। हमारे राष्ट्र नेताओं के विषय में भ्रष्टाचार की खबरें जनसाधारण तक पहुंच रही हैं। जब चाहे कोई नेता किसी की हत्या करा दे, जब चाहे उसके मिल-कारखाने में आग लगवा दे। उधर रंगभेद कम नहीं हुआ, बढ़ता जा रहा है। हम अफ्रीका में रंग-भेद की बात U. N. O. तक में उठाते हैं, लेकिन अपने गरेबान में मुंह डालकर कभी नहीं देखते। कि यहां नस्ली भेदभाव कितना है, अस्पृश्यता कितनी है। सरकार ने कानून बनाया अस्पृश्यता के निवारण के लिए और किसी के साथ छूत-अछूत का व्यवहार करना दण्डनीय अपराध माना गया है। लेकिन अछूत समझी जाने वाली जातियों के लोगों को, उनके परिवारों को किस निर्ममता से पीड़ित किया जाता है, उन्हें मौत के घाट उतारा जाता है यह किसी से छिपा नहीं। 'जहानाबाद' का गोलीकांड इसका ताजा उदाहरण है। दूसरी ओर इसके साथ साम्प्रदायिक दंगों की काली करतूतों से हमारा माथा अभी तक कलंकित है। कहां हम २१ वीं शताब्दी में कम्प्यूटर के सहारे पहुंचने की बात करते हैं और कहां एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की गर्दन काट रहा है, उसके पेट में छुरा घोंप रहा है। इन्सानियत जैसी कोई चीज ही दिखाई नहीं देती। जब चाहे दंगा खड़ा करके रक्तपात कर दीजिए। कोई टोकने वाला नहीं। उधर आर्थिक दृष्टिकोण ने हिंसा, शोषण, अत्याचार के जैसे सब पुराने रिकार्ड तोड़ दिए। दहेज के कम मिलने पर नववधुओं को आग की लपटों में धकेल दिया जाता है। सरकार ने इसके विरुद्ध भी कानून पास किया है, पर अपराध नहीं रुक सके। आज भी समाचार-पत्रों में दहेज के दानव द्वारा लीलती जा रही हैं सुकुमार कोमालांगी युवतियां! कहां गया भारत का वह आध्यात्मिक स्वरूप, उसकी वह नैतिक गरिमा जिसने सन्तों-सूफियों, महापुरुषों के रूप में हमें नया जीवन सन्देश दिया। आज भी महापुरुषों की कमी नहीं, लेकिन हम उनके कहे पर कान कहां धरते हैं? उनकी वाणी को थोड़ी देर धर्मसभा में बैठकर सुनते हैं, फिर वहां से निकलकर अपनी उसकी अनैतिक, भ्रष्ट, इन्सानियत से गिरी स्वार्थ-मोह-लोभ से अंधी प्रवृत्ति के अनुसार कुकृतियों में फंस जाते हैं। स्वार्थ-मोह-लोभ का अंधमार्ग पाप की ओर जाता है, इसे जानकर भी उसी पर चलते हैं जैसे कुत्ता हड्डी चबाते हुए अपने मुंह से रिसते खून को चाटते हुए हड्डी को छोड़ना पसन्द नहीं करत। हमें मानसिकता को बदलना होगा, विवेक और आस्था का मार्ग अपनाना होगा, नैतिक आचरण को व्यवहार में लाना होगा और इसके लिए अणुव्रत आन्दोलन में सहभागी बनकर जीवन-मूल्यों का संरक्षण करना होगा, उन्हें पल्लवित करना होगा। अणुव्रत से जुड़े

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो जीवन-मूल्य हैं उन पर अमल करना होगा।

मनुष्य को, समाज को उसकी वर्तमान जीवन-मूल्यों से विहीन स्थिति से उबारने के लिए आवश्यक है कि हम सच्चे दिल से, स्वेच्छा से मैदाने-कारज़ार में आएं और स्वयं सुखी, मंगलमय जीवन का प्रसंग-प्रचार करें इसके लिए इन इन जीवन मूल्यों की गुलाबी धूप घर-आंगन में उतारें—

(१) भौतिकता और आध्यात्मिकता में संतुलन बनाना।
(२) साम्प्रदायिक सद्भाव को, सहिष्णुता को विकसित करना।
(३) मानव-एकता को, समानता को बढ़ावा देना।
(४) प्रांत, भाषा के भेदभाव को समाप्त करना।
(५) आतंक, भय, हिंसा, शोषण से समाज को मुक्त करना।
(६) मन की, आत्मा की शुद्धता पर जोर देना। ईर्ष्या-द्वेष से ऊपर उठकर नैतिक मूल्यों का अनुसरण करना।
(७) शाकाहार का स्वेच्छा से नियमित रूप में व्यवहार प्रचार-प्रसार करना।
(८) संयम का जीवन जीना।
(९) भोग-संग्रह की वृत्ति का परित्याग करना।
(१०) सह-अस्तित्व की भावना का हर क्षेत्र में विकास करना।

दस सूत्री जीवन मूल्यों से पूर्ण अणुव्रत आन्दोलन को यदि हम गहराई से देखें तो इसमें कोई समस्या नहीं, कोई धर्म नहीं। इन जीवन मूल्यों में अणुव्रत की भावनाओं को ही परिभाषित किया गया है। हम देखते हैं कि भारत में जगह-जगह हिंसाएं और हत्याएं होती रहती हैं। इन हिंसाओं को, हत्याओं को रोकने के लिए मनुष्य के विचारों में परिवर्तन लाना होगा, उसकी मानसिकता को, भावना को बदलना होगा, उसे संयमी और सहिष्णु बनाना होगा। आचार्यश्री तुलसी ने कहा है—"अहिंसा का सम्बन्ध किसी जीव के मारने या न मारने के साथ नहीं है। जीव मरे या जीवित रहे, मनुष्य की प्रवृत्ति असंयत है। वह तो निश्चयनय के अनुसार हिंसा की अनिवार्यता है। प्रमाद हिंसा है, असंयम हिंसा है, आग्रह हिंसा है, असहिष्णुता हिंसा है, और दुर्भावना हिंसा है। इसका अर्थ यह है कि अभिव्यक्ति से पहले मनुष्य के विचारों में हिंसा उतरती है। इन्हीं विचारों को आज बदलने की अपेक्षा है। आज का अर्थतंत्र, सत्तातंत्र हिंसा पर चलता है, धर्म पर नहीं। धर्म ही अहिंसा है। हिंसा को हिंसा से मिटाया नहीं जा सकता है। हिंसा को मिटाने के लिए संयम का, सहिष्णुता का, सद्भावना का, नैतिकता का, आस्था और विवेक का पल्ला पकड़ना होगा। अणुव्रत अनुशास्ता का यह कहना सर्वथा उचित है कि "आज की सबसे बड़ी त्रासदी है चारित्रिक मूल्यों के प्रति अनास्था। एक पीढ़ी की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनास्था आने वाली कई पीढ़ियों में संक्रांत हो जाती है। इसी प्रकार आस्था का भी संक्रमण होता है। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जिस दिन चरित्र की आस्था संक्रमणशील हो जाएगी, चरित्रहीनता और मूल्यहीनता की खोखली दीवारें भरभरा कर गिर पड़ेंगी।" आज हमें संभलकर आगा-पीछा देखकर चलने की जरूरत है। आज का आदमी पानी की चट्टान पर बैठा है, उसके डूबने की संभावना सन्निकट है। उसे हमें पानी की इस चट्टान से उठाना होगा, एक ठोस पत्थर की चट्टान पर बिठाना होगा। उसकी मानसिकता को भी बदलने की बड़ी जरूरत है, वरना वह कोई गलत कदम उठाकर मानवजाति के विनाश का कारण भी बन सकता है, उसके किए की सजा फिर न जाने कब तक भोगनी पड़ेगी।

वह जब्र भी देखा है तारीख की नजरों ने।
लम्हे ने खता की थी, सदियों ने सजा पाई॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुव्रत आन्दोलन और विश्व-शान्ति

अणुव्रत आन्दोलन जीवन-मूल्यों का प्रवक्ता है। उसका कार्य-क्षेत्र देशकाल का अतिक्रमण कर भारत से बाहर विश्व के अन्य देशों में फैल सकता है। उसे आज के संदर्भ में जितना उपयोगी, लाभान्वित करने वाला पाते हैं आने वाले कल के संदर्भ में भी उसको उतना ही उपयोगी और सबको लाभान्वित करने वाला पायेंगे। उसके मूल्य शाश्वत हैं; वे सार्वभौमिक अर्थवत्ता लिये हैं। उसका क्षेत्र सीमित नहीं व्यापक और विस्तृत है। वह आन्दोलन किसी विशेष सम्प्रदाय या धर्म से जुड़ा हुआ नहीं, वह मानव धर्म से जुड़ा है, मानव-सम्प्रदाय से जुड़ा है। आज विश्व का वातावरण तनावग्रस्त है, हिंसोन्मुख है, प्रतिद्वन्द्वता से ग्रस्त है, अहं की तुष्टि में डूबा अन्य को हेय देखता है। दूसरों को मार कर—आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक दृष्टि से पराभूत करके हर देश अपना वर्चस्व दिखाना चाहता है, अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है; चाहे अपरोक्ष रूप में ही सही। समाज में सही मानदण्डों का विकास हो, मानवधर्म का प्रचार हो, भावनात्मक एकता का अधिकाधिक विकास हो, साम्प्रदायिक सद्भाव बढ़े, सह-अस्तित्व तथा सहनशीलता को व्यापक आयाम मिले यह अणुव्रत आन्दोलन चाहता है। अणुव्रत आन्दोलन यह भी चाहता है कि संसार भयमुक्त हो, सत्यनिष्ठ बने संयम-शक्ति का, साधनों की शुद्धता का समुचित विकास हो।

अणुव्रत आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय आयाम देने की जरूरत है। हम उसके छतनारवृक्ष को इतना आचरण का पानी दें कि उसकी शाखाएं दूर-दूर तक फैलें और मानव के झुलसते-तपते शरीर को शीतलता प्रदान करे, पशु-पक्षियों को भी वहां शरण मिले, जीव-जन्तु वहां निर्भय विहार कर सकें। हमारा बिगड़ता माहौल शुद्ध और पवित्र हो, न केवल जल-वायु ही शुद्ध हो बल्कि मन भी शुद्ध हो। हम कितने प्रकार के प्रदूषणों से आक्रान्त हैं। गली-कूचे, नगर-महानगर ही प्रदूषित नहीं उसमें रहने वाले मनुष्य भी प्रदूषित हैं। वृक्षारोपण कर माहौल को शुद्ध बनाया जा सकता है, सफाई-अभियान चलाकर, ट्रैफिक वीक मनाकर वातावरण को कुछ साफ किया जा सकता है। परन्तु ऐसा कौन-सा उपाय है जिससे हमारा माहौल न बिगड़े, वह पाक-साफ और संतुलित रहे, 'इकोलोजिकल इम्बेलेंस' का प्रश्न ही उत्पन्न न हो। विश्व में भय, तनाव, हिंसा, आतंक न रहे। एक देश में आतंक है तो दूसरे देश को उसमें घसीटा जाता है कि पड़ोसी देश उनके यहां आतंक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फैलाता है या आतंकवादियों को शरण देता है, प्रशिक्षण देता है। एक देश भारी अस्त्र-शस्त्र जमा करता है, अणुबम बनाता है तो दूसरा उससे पीछे नहीं रहना चाहता। यह सब मानव-संहार के लक्षण नहीं तो और क्या है? शस्त्रीकरण के पीछे जो भाव है वह अपनी सुरक्षा से अधिक दूसरे को हनन करने का रहता है। अब क्या कोई ऐसा उपाय है, ऐसा साधन है, ऐसी आचारसंहिता है जिसके बल पर संसार को युद्ध-भय-आतंक से मुक्त किया जाये और सभी देशों में सद्भाव पैदा हो, मैत्री भाव जन्म ले, मानवीय एकता के रास्ते पर चले? इसके लिए अणुव्रत का रास्ता अपनाना श्रेयस्कर है उसमें न मताग्रह है, न कोई धर्माग्रह है और न साम्प्रदायिकता है, न देश-जाति की सीमित परिधि में उसे बांधा जा सकता है। अरबी-अजमी, गोरा-काला, हिन्दु-मुसलमान, इस्राइली-फिलिस्तीनी, रूसी-अमरीकी, चीनी-जापानी, पाकिस्तानी, हिन्दुस्तानी, इंगलिस्तानी—दक्षिण अफ्रीकी कोई व्यक्ति भी—कोई देश भी इनको अपने लिए निर्देशक तत्त्व के रूप में स्वीकार कर सकता है। हम अणुव्रत आन्दोलन को विश्व के बुद्धिजीवियों के सामने रख सकते हैं, विश्व-नेताओं तथा विश्व के धर्म-गुरुओं के सामने रख सकते हैं। इनमें जीवनमूल्यों को अपनाने का विनम्र निवेदन है, मानवीय मूल्यों को जीवन में उतारने की विनती है।

जब हम अस्वस्थ होते हैं तो सारा शरीर व्याकुल-पीड़ित हो जाता है उस समय उसकी पीड़ा से उसके आत्मीय जन भी संपीड़ित हो उठते हैं, व्याकुल हो जाते हैं और उसके उपचार का साधन जुटाते हैं। पूरा परिवार अति चिंतित और परेशान हो उठता है तो भला अब हमारा समाज अस्वस्थ हो, देश अस्वस्थ हो, विश्व अस्वस्थ हो तो सभी को उसे स्वस्थ रखने का दायित्व निभाना है। महामारी का प्रकोप हो या भयानक बाढ़ हो या भूचाल से तबाही हो अथवा अकस्मात् विमान दुर्घटना में अनेक लोगों की जीवन-लीला समाप्त हो गई हो तो मानवता कांप उठती है। क्यों? इसलिए कि उसमें अभी कहीं करुणा छिपी है; वरना मनुष्य नर-संहार करने में अपना सानी नहीं, वैर-क्रोध के प्रदर्शन में वह पशुओं से भी आगे निकल जाता है। अणुव्रत आन्दोलन मनुष्य में मनुष्यता का संचार करता है, उसे मानवीय गुणों का उपहार देता है, उसमें अहिंसा, संयम, सहिष्णुता के बीज प्रांकुरित करता है। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने ठीक कहा है कि अहिंसा की साधना समाज के संदर्भ में होनी चाहिए, वैयक्तिक या नैश्चयिक अहिंसा आत्मोत्थान में सहायक होगी जबकि व्यावहारिक या सामाजिक अहिंसा समाज के, जाति के, राष्ट्र के, विश्व के उत्थान में सहायक होगी। अहिंसा को समाज से, देश से, मानव जाति से जोड़ने की अपेक्षा है। इसकी संप्राप्ति का मार्ग विचारों में, भावों में, आचरण में, व्यवहार में परिवर्तन करना होगा। दुखों की वर्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से सुख की फसल नहीं लहलहा सकती। असहायों की सहायता ही सुख का मूलमंत्र है।" इस धर्मसंदेश में किसी वर्ग या सम्प्रदाय का संदेश नहीं, मानव-जाति के लिए यह एक संदेश है। यह वही संदेश है जो आचार्य तुलसी पैदल चलकर जन-जन को देते हैं। उनके सामने मनुष्य होता है, न हिन्दु होता है न मुसलमान, न जैन होता है न अजैन और न ब्राह्मण होता है, न शूद्र होता है।

आज अणुबमों से पलक झपकते ही विश्व को तबाह किया जा सकता है। हिरोशिमा, नागासाकी की नरसंहारक नृशंस्य घटनाएं फिर घट सकती है। लड़ाई बड़ी आसानी से शुरू की जा सकती है, लेकिन लड़ाई रोकना बहुत कठिन होता है। हम जब शत्रु को मारकर विजयमद में झूमते हैं तो उस समय वह पाशविकता का प्रदर्शन होता है। हम अपने काम, क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, हिंसा, लोभ, मद, अहंकार को नहीं मारते उन्हें मारें तो महान विजयी हो सकते हैं। महावीर मनुष्य को लड़ने से, हिंसा से रोकना चाहते हैं—"ऐ मनुष्य ! यदि तुम्हें लड़ने में रस मिलता है, तो मैं कहता हूं, तुम अवश्य लड़ो, तब अपनी अन्तरात्मा से, काम, क्रोध, मोह, लोभ-रूपी आत्म-शत्रुओं को परास्त कर दो। इसी में तुम्हारा हित है। बाहरी लड़ाइयों से तुम्हारा जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता।" आज हम बाहरी लड़ाइयां ही तो हर मोर्चे पर लड़ रहे हैं, इसीलिए दुखी हैं, भयाकुल हैं, आतंकित हैं। हिंसा आतंक कहां से उपजते हैं ? जब मनुष्य के हृदय से करुणा के, मैत्री के, समत्व के, संयम के स्रोत सूख जाते हैं। महावीर ने तो संयम को ही अहिंसा माना है—"नियुणं दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो।" जब हम अहिंसा की, सह-अस्तित्व की बात करते हैं तो संयम का ही अनुपालन करते हैं। जब हम सह-अस्तित्व की भावना स्वीकारते हैं तो इसका अर्थ यह है कि हम दूसरे के स्वत्व को स्वीकारते हैं। सह-अस्तित्व वहां लुप्त हो जाता है जहां एक देश या राष्ट्र, एक जाति या समाज दूसरे देश के, दूसरी जाति के अस्तित्व को उसके स्वत्व को निर्मूल करना चाहता है। अणुव्रत तो महावीर की वाणी को आचरण में उतारकर उसे विश्व-स्तर पर प्रस्थापित करना चाहता है। यहीं से सह-अस्तित्व के साथ मानवीय एकता के झरने फूटेंगे, शान्ति के सुमन खिलेंगे, मित्रता के पक्षी कलरव करेंगे। हम जितना अधिक उदार, सहनशील बनेंगे उतना ही हमारा समाज सुख-शान्तिमय जीवन बितायेगा। आचार्य विनोबाभावे की वाणी सद्भाव की, उदारता की वाणी थी। उन्होंने कहा था—"सब धर्मों के विषय में उदार भावना रखो, जो सच्चा मातृभक्त है वह सभी माताओं को पूज्य मानेगा। वह अपनी माता की सेवा करेगा लेकिन दूसरे की माता का अपमान नहीं करेगा। हर एक अपनी मां के दूध पर पलता है। धर्म माता के समान है। मुझे मेरी धर्ममाता प्रिय है। मैं मातृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूजक हूं, इसलिए मैं दूसरे की माता की निन्दा हरगिज नहीं करूंगा।" अणुव्रत के माध्यम से आचार्य तुलसी सभी धर्मों के प्रति सम्मान की भावना व्यक्त करते हैं तभी तो दक्षिण भारत की यात्रा करते समय आचार्य तुलसी के प्रवचन से प्रभावित होकर एक मुसलमान ने कहा कि आप तो कुर्आन' की बात ही कह रहे हैं। और जब वह हैदराबाद एक मंदिर में गये तो स्पष्ट घोषणा की—"भारतीय संस्कृति, इतिहास और कला के प्रतीक ये मंदिर मनुष्य को संस्कृति का मूल्य सिखाते हैं। मूर्तिपूजा में मेरा विश्वास नहीं, फिर भी मैं मंदिर का आलोचक नहीं हूं। निन्दात्मक आलोचना को मैं हिंसा मानता हूं। अपने विश्वास को बलपूर्वक किसी दूसरे पर थोपने का प्रयास करना भी हिंसा है। हिंसात्मक भावना से ऊपर उठकर मानवीय एकता को पुष्ट करना एक बड़ा काम है।"

आचार्यप्रवर श्री तुलसी का अणुव्रत आन्दोलन मानवीय एकता की संपुष्टि का आन्दोलन है। यह मानवता की प्रतिष्ठा को सुरक्षित करने का आन्दोलन है। इस आन्दोलन के आधार पर मनुष्य को जीवन के ऐसे सूत्रों का ज्ञान कराया जा सकता है जिनका सार्वभौमिक महत्त्व है और जो आज के अशान्त, भय-विक्रान्त, आतंकवादग्रस्त, विनाशोन्मुख विश्व को शान्ति की डगर पर ला सकता है। सह-अस्तित्व की रोशनी दिखला सकता है। मानवीय एकता की भावधारा जन-मन में प्रवाहित करा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युवाचार्य महाप्रज्ञ की शिक्षा-विषयक दृष्टि

मेरा फक्र बेहतर है सिकन्दरी से,
यह आदमगरी है, वो आईना साजी।

—इकबाल

आचार्य तुलसी आदमगर हैं, आईनासाज नहीं। उन्होंने पचास हजार से अधिक कि. मी. की पदयात्रा करके जो धर्म की अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह की जलधारा बहाई वह अनन्तकाल तक बहती रहेगी। उन्होंने अपने ज्ञानदीपक से जो नया दीपक जलाया वह युवाचार्य महाप्रज्ञ हैं। ऐसा लगता है जैसे आचार्य तुलसी दिनेश हैं और युवाचार्य उनसे आलोक प्राप्त करने वाले राकेश हैं। दिनेश है तो राकेश भी होगा ही, जैसे दिन है तो रात भी होगी ही। युवाचार्य और तुलसी का अविनाभाव सम्बन्ध है। मैं समझता हूं यह आचार्यश्री के जीवन की एक महान् उपलब्धि है और तेरापंथ को एक अपूर्व देन है।

हजरत निजामुद्दीन औलिया (१२४३-१३२५) ने एक बार कहा था कि जब खुदा मुझसे यह पूछेगा कि मेरे लिए क्या लाया, तो कहूंगा अमीर खुसरो को लाया हूं। अमीर खुसरो उनके सर्वाधिक प्रिय शिष्य थे, बिना उनसे मिले हजरत को चैन नहीं पड़ता। हजरत ने यहां तक कह दिया था कि यदि खुदा इजाजत देता तो मैं यह चाहता कि मेरी कब्र में अमीर खुसरो को दफन किया जाए, और आज अमीर खुसरो उनकी कब्र में तो दफन नहीं लेकिन उनके चरणों में अवश्य दफन हैं। जैसा सम्बन्ध निजामउद्दीन औलिया और अमीर खुसरो का था वैसा ही सम्बन्ध आचार्य तुलसी और युवाचार्य का है। युवाचार्य के लिये आचार्य तुलसी 'ज्ञानदीपक' हैं, स्नेह-ममतामय गुरु, प्रेरणा का अजस्र स्रोत हैं। इस महान् गुरु की महिमा कबीर के इन शब्दों द्वारा व्यंजित की जा सकती है—

सतगुरु कि महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।
लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावनहार॥

निःस्वार्थ तथा निश्छल होने पर ही शिष्य गुरु की कृपा तथा ज्ञान-ज्योति प्राप्त कर सकता है। सूफी कवि जायसी ने ठीक कहा है—

चेला सिद्धि सो पावै, गुरु सौं करै अछेद।
गुरु करै जो किरिपा, पावै चेला भेद॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविवर दरिया ने सद्गुरु को संसार-सागर, का संतरण करने वाला कर्णधार माना है।

सुकृत पिरेमहि हितु करहु, सत बोहित पतवार।
खेवट सतगुरु ज्ञान है, उतरि जाव भौ पार॥

आचार्य तुलसी ऐसे ही केवट हैं जो जनगण को संसार से मुक्ति प्राप्त कराने के लिए जीवन-बोहित को खे रहे हैं। ऐसा सद्गुरु जिसे प्राप्त हो जाए तो उसे और क्या चाहिए! युवाचार्य जो हैं वह इन्हीं सद्गुरू का प्रसाद है। नत्थू से 'नथमल' और फिर 'युवाचार्य' व 'महाप्रज्ञ' बनने वाला भी कोई साधारण शिष्य नहीं, वह ज्ञान का भूखा और परम विनम्र तथा गुरु-समर्पित शिष्य रहा है। सच्चा साधक है। गीता में जो उपदेश अर्जुन को कृष्ण भगवान् ने दिया—

सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

गीता १८,६६

उसे साकारित करने वाले हैं युवाचार्य—अर्थात् वे पूर्णतः गुरु को समर्पित हैं।

युवाचार्य का चिंतन बहुआयामी है। वह जिस विषय को छूते हैं उसका विवेचन सूक्ष्मता से तथा विभिन्न पहलुओं को सामने रखकर करते हैं और एक हल, एक समाधान बिन्दु पर पहुंचते हैं। उन्होंने अपनी दो पुस्तकों में 'जीवन-विज्ञान' का एक मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया जो अत्यन्त प्रासंगिक तथा व्यावहारिक है। इन पुस्तकों में उन्होंने वर्तमान शिक्षा को नया रूप देने के लिए कुछ विचार रखे हैं। ये विचार धर्म की परिधि परम्परा से सर्वथा मुक्त हैं। वे एक धर्म-आस्था को समर्पित हैं अवश्य, लेकिन उनके दिमाग की खिड़कियां हमेशा खुली रहती हैं ताकि उनसे बाहर की ज्ञान-समीर मिलती रहे। आधुनिक शिक्षा में समय के बदलने के समय परिस्थिति, परिवेश के अनुसार परिवर्तन भी आना चाहिए। उनका कहना है—आज शिक्षा वस्तु निष्ठ बन कर रह गई है, उसे स्वनिष्ठ बनाया जाए, चरित्रनिष्ठ बनाया जाए। पुस्तकीय ज्ञान से छात्रों का नैतिक विकास नहीं हो सकता। शिक्षा एकांगी न हो, सम्पूर्ण हो। जहां इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, बायोलोजी, बोटेनी, फिजिक्स, राजनीतिशास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती है वहां जीवन-विज्ञान की शिक्षा भुला दी जाती है। जीवन-विज्ञान की शिक्षा सिद्धांत तथा प्रयोग दोनों पक्षों के आधार पर दी जानी चाहिए। पीनियल, थायराइड, पिच्यूटरी आदि ग्रन्थियां हमारे चरित्र को बनाती बिगाड़ती हैं। पीनियल ग्रन्थि बालकाल में सक्रिय रहकर जीवन को शुद्ध-पवित्र बनाती है लेकिन व्यक्ति के बड़ा होने के साथ उसका ह्रास होने लगता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। शिविर लगाकर प्रयोग द्वारा अन्तःस्राव वाली ग्रन्थियों को पुनः सक्रिय किया जा सकता है। बालक का नाड़ीतन्त्र और ग्रंथितंत्र दोनों का संतुलित रहना आवश्यक है। दो प्रकार की शिक्षा—बौद्धिक विकास की शिक्षा और धर्मशास्त्र की शिक्षा दोनों एकांगी हैं, जीवन के एक-एक पक्ष को ही उद्घाटित करती हैं। युवाचार्य ने उस धर्म को निर्बल समझा है जो विज्ञानमय वातावरण में अपना स्वरूप-अस्तित्व कायम न रख सके। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम शिक्षा को वैज्ञानिक संबल प्रदान करें, फिर चाहे वह विषयगत शिक्षा हो या धर्मगत शिक्षा हो, हमारी युवा पीढ़ी के लिए कारगर सिद्ध होगी। विज्ञान के बढ़ते प्रभाव को हम रोक नहीं सकते, उसे मोड़ अवश्य दे सकते हैं। युवा पीढ़ी वैज्ञानिक चेतना-सम्पन्न होगी तो वह २१ वीं सदी में पूर्ण आत्मविश्वास से प्रवेश करेगी। विद्यार्थी को संतुलित संवेगों वाला बनाना होगा, तभी उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होगा—फिजिकल, मेंटल तथा इमोशनल तीनों का विकास अनिवार्य है, तभी जाकर छात्रों का सम्यक् और संपूर्ण विकास होगा। युवाचार्य के मत में सर्वांगीण विकास के लिए चार बातों पर ध्यान देना होगा—(१) शरीर (२) मन (३) बुद्धि (४) भाव। हमारी शिक्षा संस्थाओं में बुद्धि के विकास पर अत्यधिक बल दिया जाता है, शेष बातें को बहुधा उपेक्षित किया जाता है। संवेगों के परिष्कार पर या भावात्मक विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता। युवाचार्य ने कहा—संवेगों के परिमार्जन के लिए जीवन-मूल्यों के परिबोध तथा प्रयोग पर ध्यान देना आवश्यक है। बोधदृष्टि के साथ प्रयोगात्मक दृष्टि भी रहनी चाहिए। बिना प्रायोगिक दृष्टि से आदर्श या मूल्य प्रभावहीन होते हैं। उन्होंने यह माना है कि पीनियल ग्लैण्ड का परिष्कार ज्योतिकेन्द्र है—यहां विज्ञान और अध्यात्म दोनों दृष्टियां मिल सकती हैं। संवेगों के परिष्कार से तन-मन दोनों स्वस्थ रहते हैं। विद्यार्थी के स्वभाव को रंग भी बहुत प्रभावित करते हैं, यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। नीले रंग से विद्यार्थी की उद्दण्डता कम हो जाती है। नीला, पीला, गुलाबी रंग संवेगों का परिष्कार कर सकते हैं। व्यक्ति पर विधायक तत्त्व का प्रभाव अच्छा पड़ता है; यदि उसके साथ निषेधात्मक व्यवहार करेंगे तो उसमें विरोध उत्तेजना उत्पन्न होगी। हम प्रयोगों की ओर ध्यान नहीं देते और शिक्षा में, विद्यार्थी में, उसके दृष्टिकोण तथा व्यक्तित्व में परिवर्तन लाना चाहते हैं तो कभी सफलता नहीं मिलेगी। धर्म के द्वारा भी कोई परिवर्तन तब तक सम्भव नहीं जब तक ध्यान, अभ्यास प्रयोग न हो। शिक्षा अभ्यासात्मक होनी चाहिए। वर्तमान शिक्षा हमें लिखना-पढ़ना सिखाती है, साक्षर बनाती है, लेकिन वह हमें शिक्षित कम बनाती है। शिक्षा साध्य नहीं है, साधन है। शिक्षा विद्यार्थी में यदि स्वतन्त्र चिन्तन, स्वतंत्र निर्णय का बोध नहीं जगा पाती तो उसे सफल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं माना जा सकता। शिक्षा विद्यार्थी में जिम्मेदारी तथा अनुशासन का ज्ञान नहीं कराती तो वह सार्थक नहीं कही जा सकती। शिक्षा द्वारा बसीरत, ज्योति, दृष्टि प्राप्त न हो तो उस शिक्षा को सारशील नहीं माना जा सकता। युवाचार्य का विचार है कि शिक्षा बदलने से समाज-व्यवस्था बदल सकती है। समाज-व्यवस्था को हम शिक्षा में देख सकते हैं। "शिक्षा बिम्ब है और समाज उसका प्रतिबिम्ब। शिक्षा का तन्त्र यदि मुहासों से भरा है तो समाज वैसा ही बनेगा, समाज को स्वच्छ नहीं बनाया जा सकता।"

शिक्षा का उद्देश्य उन्होंने 'आत्मानुशासन' माना है। आत्मानुशासन के लिए मन, विचार, बुद्धि, शरीर सभी प्रकार की शक्तियों को संतुलित करना है। विद्यार्थी के शरीर या बुद्धि को मन या विचार को परिष्कृत करने के लिए जीवन-विज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। जीवन-विज्ञान द्वारा जैविक संतुलन बनाना है, क्षमता की आस्था जागृत करना है, दृष्टिकोण, भावना और व्यवहार को परिष्कृत करना है। विद्यार्थी के पास न सम्यक्भाव है न सम्यक्ज्ञान है, न सम्यक् व्यवहार है। जीवन-विज्ञान द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा दी जा सकती है—शरीर, मन, वाणी की शिक्षा दी जा सकती है। युवाचार्य ने सही कहा है कि शिक्षा अनेक विषयों की दी जाती है "पर मन को शिक्षित करने का कोई उपक्रम नहीं आया" यह हमारी शिक्षा-पद्धति का बड़ा दोष है। मन को शिक्षित करना व्यक्ति को सही अर्थों में शिक्षित करना है। ध्यान जीवन-विज्ञान का ही एक रूप है। सहिष्णुता भी जीवन-विज्ञान की सीमा में है। यदि हम शिक्षा द्वारा चरित्र का विकास नहीं कर सकते, व्यक्ति को संयमी नहीं बना सकते, या उसमें सहनशीलता विकसित नहीं कर सकते, उसे अनुशासनप्रिय नहीं बना सकते तो ऐसी शिक्षा अधूरी है।

युवाचार्य ने स्वतन्त्र दृष्टि के विकास को भी आवश्यक माना है और स्वतन्त्र दृष्टि के लिए या स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास के लिए प्राणशक्ति, अन्तर्दृष्टि, अनुशासन तथा नियंत्रण इन सभी का विकास करना होगा। हम जीवन में संघर्षरत रहकर ही प्राणशक्ति का विकास कर सकते हैं और शक्ति अच्छे कार्यों में लगे यह होगा अन्तर्दृष्टि के विकास के द्वारा। अन्तर्दृष्टि का क्षेत्र मन और बुद्धि से काफी आगे का क्षेत्र है। युवाचार्य की दृष्टि में जीवन-विज्ञान सोद्देश्य और अभ्यासमय शिक्षा-पद्धति है, प्राणायाम, श्वास-प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा आदि इसी के अन्तर्गत प्रयोग हैं। जीवन-विज्ञान से जो लाभ अर्जित हो सकते हैं वे यह हैं :—

(१) पुस्तक-ज्ञान के साथ अच्छे जीवन की कला को सीख लिया जाता है।

(२) स्व-संवेगों पर नियन्त्र करना आ जाता है।

(३) अभ्यासों के द्वारा रासायनिक संतुलन स्थापित हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) निश्छल और मैत्रीपूर्ण व्यवहार किया जाता है।

(५) मादक और नशावर वस्तुओं के सेवन से छुटकारा मिलता है।

हमारे युवा-वर्ग को ऐसी शिक्षा पद्धति की या ऐसे जीवन-विज्ञान की अति आवश्यकता है। विद्यार्थी वर्ग जिस मानसिक तनाव में जीता है या मादक द्रव्यों के सेवन में प्रलिप्त है, उसे तनाव से, मादक-द्रव्यों से छुटकारा दिलाना बहुत बड़ा दायित्व है, जो जीवन विज्ञान की शिक्षा द्वारा पूरा किया जा सकता है। यह हम सबकी नैतिक जिम्मेदारी है।

कहा जाता है आज की शिक्षा नैतिकता से शून्य है, वह विद्यार्थी के व्यक्तित्व में नैतिकता का विकास नहीं करती। नैतिक शिक्षा या मूल्यपरक शिक्षा का अर्थ समान है। नैतिक शिक्षा या मूल्यपरक शिक्षा के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति को स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर तथा कर्त्तव्यपरायण बनाया जाए। यह सामाजिक स्तर पर किया जा सकता है। कर्त्तव्यनिष्ठा होगी तो कष्ट-सहिष्णुता भी आयेगी। कष्ट-सहिष्णुता आज के छात्र में अत्यल्प है, वह सुविधा प्रेमी है! छात्र को धर्मनिरपेक्ष बनाना होगा, उसमें सम्प्रदाय के आग्रह को कम करना होगा। जब अपने सम्प्रदाय के प्रति व्यक्ति में आग्रह होता है तो वह दूसरों के मतों के प्रति सहिष्णुता नहीं बन पाता, मताग्रही बना रहता है सदा। सहिष्णुतापूर्वक दूसरे के मत को सुनेगा, दृष्टि को समझने-जानने का प्रयत्न करेगा तो उसमें मानवता की भावना पैदा होगी, मानव-एकता का विचार उत्पन्न होगा। वह धैर्यवान बनेगा, उसमें मानसिक संतुलन आएगा और साथ में करुणा, सहानुभूति, सह-अस्तित्व की भाव-धाराएं भी उसकी हृदय गंगा से प्रवाहित होंगी। इसके पश्चात् उसमें आध्यात्मिक मूल्यों का भी उदय होगा। वह निर्भय होगा, अनासक्त होगा। उसमें आत्मानुशासन की भावना जागृत होगी। युवाचार्य ने अपने जीवन-विज्ञान की अभिव्यंजना आधुनिक शिक्षा को सामने रखकर की है। इस विचार या दृष्टिकोण में अणुव्रत आन्दोलन काफी सहयोग दे सकता है। प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोग से भी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास संभव होगा। आवश्यकता प्रयोग करने की है, शिक्षा को नया मोड़ देने की है। युवाचार्य शिक्षा द्वारा व्यक्ति को सही अर्थों में मानव, इन्सान बनाना चाहते हैं। शिक्षा आदमगर हो, आईनासाज न हो। आज की शिक्षा अईनासाज ही अधिक है, वह आदमगर नहीं बन सकी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखक की कृतियां

- स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्य (शोध प्रबन्ध) दिल्ली।
- गद्य चयनिका, आगरा।
- हिन्दी अदब में मुसलमानों का हिस्सा (उर्दू में), श्रीनगर।
- जिनेन्द्र महावीर (रामपुर)
- इक़बाल-काव्य और दर्शन (दिल्ली)
- भारतीय संस्कृति की गंगा--"मानस" (कानपुर)

अनुवाद-उर्दू से हिन्दी में

१.इस्लाम का संदेश
२. यूसुफ हुसैन खां
३. हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया
४. हसरत मोहानी

सम्प्रति : बालैनी-२५०६२६,
मेरठ (यू० पी०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ० निज़ामउद्दीन

जन्म : जनवरी 1933

स्थान : बालैनी (मेरठ)

शैक्षणिक योग्यता : - मेरठ कॉलेज, मेरठ से 1957 में एम.ए. (हिन्दी)
- पी.एच.डी. 1968 में जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

कार्यक्षेत्र : 28 वर्षों तक कश्मीर घाटी में हिन्दी-अध्यापन किया। कॉलेज में विभागाध्यक्ष रहे। अहिन्दी भाषी प्रान्त में रहकर।

विशेष : कश्मीर रेडियो श्रीनगर से हिन्दी में कार्यक्रम शुरू कराये-- कवि-गोष्ठी, वार्तायें, बातचीत, प्रश्नोत्तरी आदि।

पुरस्कार सम्मान : - मानस संगम, कानपुर (उ० प्र०)
- अ० भा० हिन्दी साहित्य परिषद्, मेरठ।
- जम्मू-कश्मीर राज्य भाषा प्रचार समिति, जम्मू।
- अ० भा० निबन्ध प्रतियोगिता, महावीर परिनिर्वाणोत्सव पर हिसार, दिल्ली, मेरठ--प्रथम पुरस्कार।
- महावीर पर व्याख्यान--इन्दौर, रामपुर, उदयपुर, अलवर आदि।
- जैनदर्शन, पर्यावरण, अहिंसा पर सेमिनारों में भाग-- दिल्ली, भिलाई, बम्बई, सतना, अलवर, उदयपुर, वाराणसी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org